इकाई 1 निर्देशन:- अर्थ , सिद्धांत , अवधारणा , समस्याऐं एवं विषय क्षेत्र

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 निर्देशन का अर्थ
1.4 निर्देशन की परिभाषा
1.5 निर्देशन के सिद्धान्त
1.6 निर्देशन की अवधारणा
1.7 निर्देशन के विचारणीय विषय एवं समस्याऐं
1.8 निर्देशन की आवश्यकता एवं महत्त्व
1.9 निर्देशन का विषय क्षेत्र
1.10 निर्देशन की उपयोगिता
1.11 सारांश
1.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.13 संदर्भ ग्रंथ
1.14 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

मनुष्य के भीतर एक ऐसी क्षमता विद्यमान है जिससे वह दूसरों से परामर्श एवं निर्देशन ले सकता है और दूसरों को परामर्श एवं निर्देशन प्रदान कर सकता है। वह अपने सामान्य एवं संकट के क्षणों में एक-दूसरे की मदद करने के लिए अपेक्षित निर्देशन देता है जिससे उसकी वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवनधारा निर्बाध रूप से चलती रहती है। निर्देशन अर्थात् दिशा दिखाने की प्रवृत्ति हर सामाजिक व्यवस्था में किसी न किसी रूप में कार्यशील रही है। इसका वर्तमान स्वरूप 20वीं शताब्दी की देन है।

वैसे तो निर्देशन का अर्थ बताने के लिए भिन्न-भिन्न मत देखने को मिलते हैं फिर भी निर्देशन को परिभाषित करते हुए कहा जा सकता है कि निर्देशन एक ऐसी क्रिया है जिसमे कुछ विशेष प्रकार के निर्देशन कर्मियो के माध्यम से व्यक्ति को उसकी समस्या तथा विकल्प बिन्दुओं से निपटने मे अपेक्षित राय एवं सहायता प्रदान की जाती है। निर्देशन एक ऐसी अवस्था है जिसमें व्यक्ति को अपने आप को

समझ पाने अपनी योग्यताओं तथा सीमाओं के अन्तर्निहित समार्थ्य को समझने एवं उसी स्तर के कार्य-कलापों को करने मे सक्षम बनाता है। निर्देशन प्रत्येक अवस्था की समस्याओ के समाधान में सहायक सिद्ध होने के अतिरिक्त आगामी समस्याओं की पूर्व तैयारी में भी विशेष सहायक होता है। निर्देशन किसी व्यक्ति की आयु या अवस्था से बँधा हुआ नहीं होता है। यह जीवन पर्यन्त विद्यमान रहने वाली आवश्यकता है। निर्देशन बच्चों, किशोर, प्रौढों एवं वृद्धों सभी के लिए महत्वपूर्ण होता है। निर्देशन की प्रक्रिया के अन्तर्गत निर्देशन प्राप्त करने वाले व्यक्ति में निहित विशेषता को तथा शैक्षिक, व्यावसायिक एवं वैयक्तिक क्षेत्र से सम्बन्धित जानकारी का समन्वित अध्ययन आवश्यक है। कुछ विद्वान् निर्देशन और शिक्षा दोनों को ही एक दूसरे के पूरक मानते हैं।

निर्देशन का महत्व मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में होता है। शिक्षा, व्यक्तिगत समस्याएँ, व्यावसायिक, स्वास्थ्य, विकास की प्रक्रिया एवं चिकित्सा के ये विभिन्न क्षेत्र हैं, इन सभी क्षेत्रों में निर्देशन की विशेष आवश्यकता होती है।

निर्देशन का व्यक्ति के जीवन में महत्व अत्यधिक बढ़ता जा रहा है। जैसा ऊपर वर्णन किया जा चुका है कि जीवन के अनेक क्षेत्रों में आज इसकी उपयोगिता बढ़ गयी है। चाहे व्यवसाय का क्षेत्र हो या सामाजिक क्षेत्र, व्यक्तिगत समास्याओं के समाधान में भी निर्देशन की आवश्यकता पड़ती है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप-

1. निर्देशन का अर्थ जान सकेंगे।
2. निर्देशन को परिभाषित कर सकेंगे।
3. निर्देशन के विभिन्न सिद्धान्तों से अवगत हो सकेंगे।
4. निर्देशन की अवधारणा से परिचित हो सकेंगे।
5. जान सकेंगे कि भारत वर्ष में निर्देशन सेवाओं के क्षेत्र में कौन-कौन सी समस्याऐं हैं।
6. निर्देशन की आवश्यकता एवं महत्त्व से परिचित हो सकेंगे।
7. जान सकेंगे कि हमारे जीवन में निर्देशन कार्य की क्या उपयोगिता है

1.3 निर्देशन का अर्थ Meaning of Guidance

मानव इस संसार में ईश्वर की श्रेष्ठतम् कृति है क्योंकि उसके पास भाषा, बुद्धि, विवेक आदि अनेक गुण हैं। लेकिन वह अपना विकास केवल अपनी बुद्धि और विवेक द्वारा ही नहीं कर सकता। इसके लिए उसे दूसरों की सहायता लेनी पड़ती है। जब मानव विकास पथ पर अग्रसर होने के लिए दूसरे के अनुभव, बुद्धि और विवेक का सहारा लेता है तो दूसरे व्यक्ति के द्वारा इस प्रकार की गयी सहायता निर्देशन कहलाती है। निर्देशन अमूर्त संकल्पना है। निर्देशन वस्तुतः पथ प्रदर्शन है। जैसे कोई व्यक्ति चौराहे पर खड़ा है; वह चलना जानता है तथा यह भी जानता है कि इन चारों रास्तों में से कोई एक रास्ता उसके

गन्तव्य तक जाता है। लेकिन; कौन सा, वह यह नहीं जानता; तब किसी अन्य व्यक्ति द्वारा उसे गन्तव्य का रास्ता बताना निर्देशन है। वस्तुत; निर्देशन प्रक्रिया में निर्देशक किसी व्यक्ति के अन्दर ज्ञान का विकास नहीं करता अपितु उस व्यक्ति के अन्दर पहले से उपस्थित ज्ञान को एक सही मार्गदर्शन देकर उसे उसके लक्ष्य तक पहुंचाता है।

बिना निर्देशन के कोई भी समाज चल ही नहीं सकता। मानव जन्म से लेकर मृत्यु तक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किसी न किसी से निर्देशन प्राप्त करता ही रहता है। बाल्यकाल में ही माँ द्वारा बच्चे को उसका हाथ पकड़कर चलना सिखाना, बड़े होने पर उसे नैतिक कहानियाँ सुनाना तथा उसी के द्वारा अपने जीवन की दिशा निर्धारित करने के लिए प्रेरित करना भी तो एक प्रकार का निर्देशन ही है।

1.4 निर्देशन की परिभाषायें Definitions of Guidance

निर्देशन के अर्थ को और अधिक स्पष्ट करने के लिए हम विभिन्न विद्वानों के द्वारा दी गयी परिभाषाओं का अध्ययन करेंगे-

चाइशोम के अनुसार "निर्देशन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य व्यक्ति में निहित सजीव तथा क्रियात्मक शक्तियों का विकास करना है; जिसकी सहायता से वह जीवन की समस्याओं को सुगमता तथा सरलतापूर्वक जीवन पर्यन्त हल करने योग्य बनाता है"

एमरी स्ट्रप्स के अनुसार- "निर्देशन सहायता प्रदान करने की एक ऐसी प्रवाहित क्रिया है जो व्यक्तिगत या सामाजिक दृष्टि से हितकारी क्षमताओं का विकास अधिकतम रूप से व्यक्ति में करती है"

डेविड वी0 टिडमैन – "निर्देशन का लक्ष्य लोगों को उद्देश्यपूर्ण बनने में न कि केवल उद्देश्यपूर्ण क्रिया में सहायता देना है"

स्ट्रप्स तथा वालक्विस्ट ने सभी परिभाषाओं का सार इस प्रकार प्रस्तुत किया है - "निर्देशन व्यक्ति के अपने लिए तथा समाज के लिए अधिकतम लाभदायक दिशा में उसकी सम्भावित अधिकतम क्षमता तक विकास में सहायता प्रदान करने वाला एवं निरन्तर चलने वाला प्रक्रम है"

गुड के अनुसार - निर्देशन व्यक्ति के दृष्टिकोणों एवं उसके बाद के व्यवहार को प्रभावित करने के उद्देश्य से स्थापित गतिशील आपसी सम्बन्धों का एक प्रक्रम है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम निर्देशन की एक सर्वमान्य परिभाषा इस प्रकार दे सकते हैं।

"निर्देशन वह प्रक्रिया है जिसमें एक व्यक्ति अपनी बौद्धिक क्षमताओं का प्रयोग करते हुए दूसरे व्यक्ति को उस उन्नत पथ पर अग्रसर करता है जिसकी क्षमता उसमें पहले से ही विद्यमान है। किन्तु, वह स्वविवेक से अपनी क्षमता को सही दिशा देने में असमर्थ है"

केवल मानव ही नहीं अपितु जीव जगत के समस्त पशु पक्षी और कीट पतंगे अपने अग्रजों के दिशा निर्देशन में काम करते हैं। निर्देशन को परिभाषित करते समय हमारे समक्ष जीव जगत की अनेक गतिविधियाँ चलचित्र की भांति घूम जाती है और हम जीवन के प्रत्येक कदम पर निर्देशन की प्रक्रिया को घटित होते हुए देखते हैं। झुंड के बीच में सुरक्षित घूमता हुआ हाथी का छोटा सा बच्चा जो अनायास ही अपने परिवार के साथ नदी की तेज धारा में उतर जाता है वह अपने पूर्वजों के निर्देशन और सहायता के परिणामस्वरूप ही इस गुरूतर कार्य को सम्पन्न कर पाता है। यदि आपने आस-पास किसी चिड़िया के बच्चे को घोंसले से गिरते हुए देखा हो जिसके पंख अभी-अभी निकले हैं तो यह निर्देशन की ही प्रक्रिया का आरम्भ है। चिड़िया का वह बच्चा अपने घोंसले से अनायास नहीं गिरा है बल्कि उड़ने का प्रशिक्षण देने के लिए चिड़िया मां ने उसे सप्रयास गिराया है। प्रशिक्षण की इस प्रक्रिया में निर्देशन सम्मिलित है।

यह (निर्देशन) किसी भटके हुए राही को रास्ता दिखाने जैसा है। मान लीजिए आप किसी अपरिचित नगर में अपने मित्र के घर जाने के लिए अनजान सड़क पर खड़े हैं। वहां से पूछते-पूछते आप अपेक्षित गली के अन्तिम चौराहे पर पहुंच जाते हैं और यहाँ पर आप अपने मित्र का घर नहीं ढूंढ पा रहे हैं, तभी सामने से आ रहे एक व्यक्ति से आप अपने मित्र राघवेन्द्र का नाम बताकर उसका आवास पूछते है और वह संकेत द्वारा आपको आपके मित्र राघवेन्द्र के आवास की वास्तविक स्थिति से अवगत कराता है। आप अपने गन्तव्य तक जिस सहयोग की प्रक्रिया से गुजरे वह प्रक्रिया निर्देशन है।

1.5 निर्देशन के सिद्धान्त Principles of Guidance

निर्देशन की प्रक्रिया बहुत महत्त्व पूर्ण प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया गलत दिशा में जाने की स्थिति में किसी भी व्यक्ति का जीवन नष्ट कर सकती है। विविधताओं वाले भारत देश में यूँ तो कोई भी व्यक्ति स्वयं को निर्देशन कार्य के योग्य समझता है। आप सामने बैठे व्यक्ति को जैसे ही अपनी समस्या बताते हैं आपको निर्देशन प्राप्त होना प्रारम्भ हो जाता है। किन्तु बिना सोच विचार के दिया गया निर्देशन कितना घातक हो सकता है इसकी कल्पना भी भयावह है। अतः निर्देशन की प्रक्रिया को आरम्भ करने से पूर्व हमें इसके सिद्धान्त समझने होंगे।

निर्देशन की प्रक्रिया हेतु भारत सहित विश्व के अनेक देशों में शोध होते रहते हैं। क्रो एण्ड क्रो, टसेल, जोन्स आदि विद्वानों द्वारा बताए गए निर्देशन के सिद्धान्तों को तो व्यापक मान्यता भी मिली है।

यहाँ हम भारतीय परिवेश में निर्देशन की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए निर्देशन के कतिपय महत्त्व पूर्ण सिद्धान्त निर्धारित करेंगे। इनमें से अनेक सिद्धान्त पश्चिमी विद्वानों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों से मिलते जुलते भी हो सकते हैं।

अनेक विद्वानों द्वारा प्रतिपादित निर्देशन के सिद्धान्तों का अध्ययन करने के बाद लेखक' इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि भारतीय परिवेश में निर्देशन के अग्रांकित सिद्धान्त हो सकते हैं -

1. **ज्ञान का सिद्धान्त (Principle of Knowledge)** -निर्देशक चाहे कोई भी हो किन्तु उसे निर्देशन कार्य आरम्भ करने से पूर्व निर्देशन प्रक्रिया का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए ज्ञान के अभाव में निर्देशक गलत निर्देशन दे बैठता है जिसका परिणाम कभी-कभी बहुत भयंकर भी हो सकता है।
2. **सार्वभौमिकता का सिद्धान्त (Principle of Universalization)**-निर्देशन प्रक्रिया आरम्भ करने से पूर्व निर्देशक को यह जान लेना चाहिए कि यह प्रक्रिया सार्वभौमिक है। अर्थात निर्देशन की प्रक्रिया सदैव एवं सर्वत्र चलती रहती है। आजीवन चलने वाली इस प्रक्रिया को कोई भी व्यक्ति (धर्म, जाति, आयु, लिंग, एवं स्वभाव आदि का विभेद किये बिना) प्राप्त कर सकता है। केवल कुसमायोजित या अपसमायोजित व्यक्ति ही नहीं।
3. **निरन्तरता का सिद्धान्त (Principle of Continuity)**-किसी समस्या विशेष के समाधान के लिए एक बार निर्देशन दे देने भर से निर्देशक का कार्य समाप्त नहीं हो जाता। उपबोध्य (निर्देशन प्राप्त करने वाला) को समस्या के समाधान के लिए जिन परिस्थितियों में निर्देशन प्राप्त हुआ था, बहुत संभव है कि भविष्य में उसे नवीन परिस्थितियों का सामना करना पड़े और पुनः निर्देशक की आवश्यकता पड़े। इतना ही नहीं नवीन क्षेत्र में भी उपबोध्य को निर्देशन की बार-बार आवश्यकता अनुभव होती है अतः यहाँ हम यह कह सकते हैं कि निर्देशन की प्रक्रिया निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है।
4. **सामाजिकता का सिद्धान्त (Principle of Sociality)**-निर्देशन कार्य महत्त्व पूर्ण और कठिन कार्य है। यह कार्य करते समय निर्देशक को ध्यान रखना चाहिए कि निर्देशन का प्रभाव केवल प्राप्तकर्ता पर नहीं पड़ता; अपितु इस प्रक्रिया के परिणामों को पूरा समाज भोगता है। चूंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है अतः उस पर समाज की तथा समाज पर उसकी गतिविधियों का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। अतः निर्देशक को केवल उन्हीं कार्यों के लिए निर्देशन देना चाहिए जो व्यक्ति की क्षमताओं में विकास करने के साथ-साथ समाज के उत्थान में भी सहायक हों। दूसरे शब्दों में समाज के लिए घातक कार्यों का निर्देशन नहीं किया जाना चाहिए।
5. **नैतिकता का सिद्धान्त (Principle of Morality)**- निर्देशन कार्य करते समय सामाजिकता के साथ निर्देशक को नैतिकता का भी पूरा ध्यान रखना चाहिए। समाज में अनेक कार्य ऐसे होते हैं जिन्हें सामाजिक होते हुए भी नैतिक नहीं कहा जा सकता। अतः निर्देशक को निर्देशन प्रक्रिया में नैतिकता का पुट अवश्य ही बना कर रखना चाहिए।
6. **विश्लेषण का सिद्धान्त (Principle of Analysis)**- निर्देशन कार्य करने से पूर्व निर्देशक को परिस्थितियों और समस्या का सम्पूर्ण विश्लेषण कर लेना चाहिए। अनेक बार ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं जिसमें निर्देशक को उपबोध्य के द्वारा उन परिस्थितियों और

व्यवहारों का वास्तविक ज्ञान नहीं कराया जाता जिनके लिए उसे निर्देशन की आवश्यकता है। परिस्थितियों और व्यवहारों के विश्लेषण द्वारा ही निर्देशक वास्तविक स्थितियों का सही आकलन कर सकता है।

7. **वैज्ञानिकता का सिद्धान्त (Principle of Scientific Method)**-निर्देशन कार्य से पूर्व परिस्थितियों और गतिविधियों का विश्लेषण करने के लिए निर्देशक को आंकड़ों का एकत्रीकरण करने से लेकर मूल्यांकन, साक्षात्कार तक वैज्ञानिक प्रक्रिया को ही अपनाना चाहिए; अन्यथा विश्लेषण के परिणामों में भारी अन्तर आ सकता है।
8. **सकारात्मकता का सिद्धान्त (Principle of Positivity)**- निर्देशक परिस्थिति विशेष में उपबोध्य का भगवान होता है। कभी-कभी वह समाज और परिस्थितियों से इतना प्रताड़ित हो चुका होता है कि उसकी सोचने समझने की क्षमता कुंठित हो जाती है। इन स्थितियों में वह अपने निर्देशक की कोई भी बात बिना सोच विचार के मानने को तैयार होता है। अतः निर्देशक का यह दायित्व बनता है कि वह अपने उपबोध्य को सदैव सकारात्मक निर्देशन ही दे और समाज में उसके समायोजन का प्रयास करे न कि अपसमायोजन का।
9. **आत्मनिर्भरता का सिद्धान्त (Principle of Self Dependence)**- निर्देशन कार्य करते समय निर्देशक को यह प्रयास करना चाहिए कि उसका उपबोध्य निर्देशक पर कम से कम निर्भर रहे। इसके लिए निर्देशक को अपने उपबोध्य में ज्ञान एवं विवेक दोनों का विकास करना होगा साथ ही साथ उसके आत्मविश्वास को भी बढ़ाना होगा।
10. **स्वतंत्रता का सिद्धान्त (Principle of Freedom)**-निर्देशक कभी-कभी उपबोध्य पर अपने निर्णय थोपने लगता है तथा उसके निर्णय न माने जाने की दशा में वह उपबोध्य के प्रति अन्यमनस्क हो जाता है। किन्तु, अच्छे निर्देशक का कार्य अपने उपबोध्य को केवल सर्वश्रेष्ठ निर्देशन देना है; उस पर अपने निर्णय थोपना नहीं। अतः निर्देशन प्राप्त करने के पश्चात उसको पूरी तरह मानने, आंशिक रूप से मानने, या न मानने की स्वतन्त्रता उपबोध्य के पास होनी चाहिए।
11. **लचीलेपन का सिद्धान्त (Principle of Flexibility)**-निर्देशन कार्य में निर्देशक को सदैव लचीला रूख अपनाना चाहिए। चूंकि निर्देशन एक सामाजिक प्रक्रिया है और समाज की परिस्थितियाँ निरन्तर बदलती रहती हैं अतः निर्देशक को किसी भी प्रकार से एक ही निष्कर्ष पर न रूककर सदैव लचीलेपन के सिद्धान्त का पालन करना चाहिए।
12. **व्यक्तिगत महत्त्व एवं समानता का सिद्धान्त (Principle of Individual Importance & Equality)** निर्देशक के लिए प्रत्येक व्यक्ति समान रूप से महत्त्व पूर्ण है चाहे वह अपसमायोजित या कुसमायोजित अथवा सामान्य व्यक्ति हो निर्देशन कार्य के लिए इस आधार पर उपबोध्य में अन्तर करना उचित नहीं है। उसे प्रत्येक व्यक्ति को समान और सम्पूर्ण महत्त्व देना चाहिए।

13. **व्यक्तिगत भिन्नता का सिद्धान्त (Principle of Individual Difference)**- प्रत्येक व्यक्ति किसी भी दूसरे व्यक्ति से भिन्न होता है अतः वह अनिवार्य नहीं है कि एक व्यक्ति को दिया गया निर्देशन दूसरे व्यक्ति के लिए समान रूप से उपयोगी सिद्ध हो। निर्देशक को चाहिए कि वह व्यक्तिगत भिन्नता का सिद्धान्त ध्यान में रखते हुए प्रत्येक व्यक्ति के लिए अलग से निर्देशन कार्य की व्यवस्था करे।
14. **सम्पूर्ण विकास का सिद्धान्त (Principle of Wholesome Development)**- निर्देशक का दायित्व उपबोध्य की समस्या विशेष का समाधान करना ही नही है अपितु उसे उपबोध्य के सम्पूर्ण विकास पर ध्यान देना चाहिए। वास्तव में व्यक्ति की समस्याएं परस्पर अर्न्तसम्बन्धित होती है' इसलिए भी निर्देशक को उपबोध्य के समग्र विकास पर ध्यान देना चाहिए।
15. **समन्वय का सिद्धान्त (Principle of Co-ordination)** -सामाजिक जटिलताओं एवं भौतिक आवश्यकताओं के बढ़ते हुए भार ने वर्तमान में प्रत्येक व्यक्ति को त्रस्त कर रखा है, अतः सामाजिक कुसमायोजन निरन्तर बढ़ता जा रहा है जिसके कारण एक ही व्यक्ति को अनेक निर्देशकों से निर्देशन प्राप्त करने की आवश्यकता अनुभव होती है। ऐसी परिस्थितियों में निर्देशकों को परस्पर समन्वय स्थापित कर लेना चाहिए एवं यदि सम्भव हो तो उसमें वरिष्ठ एवं अनुभवी व्यक्ति को महत्त्व देना चाहिए।
16. **निरपेक्षता का सिद्धान्त (Principle of Objectivity)**- निर्देशक किसी भी व्यक्ति के जीवन को नयी राह दिखाने वाला होता है अतः उसे सदैव निरपेक्ष रहकर निर्देशन करना चाहिए। निर्देशक को अपनी अभिरूचियों, क्षमताओं, विश्वासों तथा पूर्वाग्रहों से ऊपर उठकर उपबोध्य का पथ प्रदर्शन करना चाहिए। उसके अन्दर इतनी समझ होनी चाहिए कि वह उपबोध्य की परिस्थितियों, उसकी रूचियों, क्षमताओं तथा सीमाओं को ध्यान में रखकर उसे संभावित सर्वोत्तम पथ प्रदर्शन दे सके। यदि वह निरपेक्ष नहीं रहेगा तो वह अपने निर्णयों को दूसरे पर आरोपित करेगा जिससे वह अपने दायित्व मार्ग से पूर्णतः भटक जायेगा।
17. **गोपनीयता का सिद्धान्त (Principle of Confidentialness)** -निर्देशक को निरपेक्ष होने के साथ-साथ इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि वह उपबोध्य की किसी भी गोपनीय सूचना को अन्यत्र अभिव्यक्त न करे उपबोध्य की व्यक्तिगत सूचनाओं में कोई रूचि न होने पर भी उसे उन सब सूचनाओं को स्वयं तक ही सीमित रखना चाहिए। क्योंकि यदि वह ऐसा नहीं करेगा तो अपने साथ-साथ दूसरे निर्देशकों के लिए भी विश्वसनीयता की समस्या खड़ी कर देगा।
18. **समय प्रबन्धन का सिद्धान्त (Principle of Time Management)** -उपबोध्य की समस्याएं अनेक प्रकार की होती है। अनेक समस्याएं ऐसी भी होती है जिनके लिए यदि उचित समय पर निर्देशन न मिले तो वे समस्याएं गम्भीर रूप धारण कर सकती हैं। अतः निर्देशक को

समस्या के विश्लेषण आदि में अधिक समय नष्ट नहीं करना चाहिए तथा उसे यथासम्भव शीध्रतापूर्वक निर्देशन प्रदान करना चाहिए।

19. **विशिष्टता का सिद्धान्त (Principle of Specialization)-** विविधताओं से भरे इस समाज में समस्याएं भी विविध प्रकार की है' अतः कोई एक निर्देशक सभी प्रकार की समस्याओं के समाधान हेतु निर्देशन कार्य कर सके यह कदापि सम्भव नहीं है। अतः निर्देशक को भी विशिष्ट होना होगा। कार्य विशेष के लिए जैसे शैक्षिक कार्य, व्यावसायिक कार्य, व्यक्तिगत कार्य, आयु विशेष के लिए जैसे बालक, किशोर, युवा, वृद्ध आदि एवं व्यक्ति विशेष के लिए जैसे सामान्य, विशिष्ट आदि अलग-अलग निर्देशकों की आवश्यकता होती है।
20. **प्रशिक्षण का सिद्धान्त (Principle of Training)-** यदि हमने निर्देशन के उपरोक्त सिद्धान्तों का गम्भीरता पूर्वक मनन किया तो हम पायेंगे कि बिना प्रशिक्षण प्राप्त किये निर्देशन कार्य कठिन ही नहीं अपितु असम्भव है। अतः अपने कार्य में निपुणता (Perfection) के लिए प्रत्येक निर्देशक को भली भांति प्रशिक्षित होना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

1. _____निर्देशन व्यक्ति के दृष्टिकोणों एवं उसके बाद के व्यवहार को प्रभावित करने के उद्देश्य से स्थापित गतिशील आपसी सम्बन्धों का एक प्रक्रम है।
2. निर्देशन के किन्हीं पाँच सिद्धांतों के नाम को लिखिए।

1.6 निर्देशन की अवधारणा Assumption of Guidance

संसार की श्रेष्ठतम् कृति मानव है। भाषा, बुद्धि और विवेक जैसे गुणों से सम्पन्न मानव जब विकास पथ पर आगे बढ़ता है तो उसे निर्देशन की आवश्यकता होती है। निर्देशन का लक्ष्य लोगों को उद्देश्य पूर्ण बनाना है। यह किसी भटके हुए राही को रास्ता दिखाने जैसा है। निर्देशन की इस प्रक्रिया को उपयोगी बनाये रखने के लिए हमने पिछले पृष्ठों में इसके सिद्धान्तों का अध्ययन किया है अब हम निर्देशन की अवधारणाओं के विषय में चर्चा करेंगे।

विभिन्न भारतीय एवं पश्चिमी विद्वानों ने अपने-अपने मत के अनुसार निर्देशन की अवधारणायें निर्धारित की हैं यहां लेखक के मतानुसार निर्देशन की महत्त्व पूर्ण अवधारणाएं निम्नवत हैं -

1. मानव समाज में प्रत्येक व्यक्ति को निर्देशन की आवश्यकता होती है।
2. निर्देशन की दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखता है।
3. निर्देशन अधिगम (Learning) में सहायक होता हैं।
4. निर्देशन व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

5. निर्देशन का कार्य उपबोध्य (Learner) की क्षमताओं का विकास करना है।
6. निर्देशन उपबोध्य की उपलब्धि और प्रगति को बढ़ाता है।

1.7 निर्देशन के विचारणीय विषय एवं समस्याएं Issues and Problems of Guidance

1. **जागरूकता की कमी (Lack of Awareness)-** भारतीय समाज विश्व का सर्वश्रेष्ठ मस्तिष्क रखने के बाद भी अपने भोलेपन और जागरूकता के अभाव के कारण सैकड़ों वर्ष छोटे-छोटे देशों का गुलाम रहा और जागरूकता का यही अभाव उसे आज भी विश्व के अन्य देशों की अपेक्षा पिछड़ा बनाये हुए है। यह बात निर्देशन के क्षेत्र में अक्षरशः सत्य है। पीछे के पृष्ठों में हम यह बात भली भांति समझ चुके हैं कि उचित निर्देशन के बिना व्यक्ति अपने जीवन में क्षमताओं का अपेक्षित विकास नहीं कर सकता तथा उसकी सफलता का स्तर भी कम हो जाता है। तथापि अधिकांश लोग समस्याओं से जूझते हुए भी निर्देशन प्राप्त करने का प्रयास नहीं करते अथवा निर्देशक की सलाह को अपेक्षित महत्त्व नहीं देते।
2. **उपयुक्त प्रशिक्षण का अभाव (Lack of Proper Training)** - समाज में तो निर्देशन के प्रति जागरूकता की कमी है ही साथ ही निर्देशक वर्ग भी अपने इस महत्त्व पूर्ण कार्य के प्रति उदासीन नजर आता है जिसका एक प्रमुख कारण निर्देशकों को उपयुक्त प्रशिक्षण न मिलना है आज जितनी संख्या में शिक्षक प्रशिक्षित हो रहे हैं यदि उसका 10% भी निर्देशकों को प्रशिक्षण दिया गया होता तो हम प्रशिक्षित निर्देशकों की कमी का सामना न कर रहे होते।
3. **कुशल निर्देशकों का अभाव (Lack of Expert Guides)-**प्रशिक्षण की कमी के कारण विद्यालयों में तथा स्वतन्त्र रूप से कार्य करने वाले कुशल निर्देशकों का अभाव उत्पन्न हो गया है आज विद्यालयों में या तो निर्देशकों की नियुक्ति की ही नहीं गयी है और यदि कहीं नियुक्ति की भी गयी है तो उनमें बहुत कम निर्देशक ऐसे हैं जो अपने कार्य को दक्षता पूर्वक सम्पन्न कर पाते हैं। इसके अनेक कारणों में से कुछ कारण इस प्रकार हैं-जैसे प्रशिक्षण का न होना, निर्देशक की निर्देशन कार्य में रूचि न होना, निर्देशक पर कार्य भार की अधिकता, निर्देशक की व्यक्तिगत एवं सामाजिक समस्याऐं आदि।
4. **तीव्रता से बदलती सामाजिक परिस्थितियाँ (Rapidly Changing Social Senerio)-** विश्व के अनेक राष्ट्र आज बहुत तेजी से एक दूसरे के निकट आ रहे हैं जिसके कारण हम दूसरों की संस्कृति और सभ्यता की ओर तेजी से आकर्षित हो जाते हैं परिणामस्वरूप सामाजिक परिस्थितियों का चक्र तेजी से घूम जाता है। एक प्रकार की सामाजिक परिस्थिति में निर्देशन प्राप्त करके व्यक्ति जब उसको बदली हुई परिस्थिति में प्रयोग करता है तो सफलता की संभावनायें कम हो जाती है और इसका दोष निर्देशन कार्य पर मढ़ दिया जाता है।

5. **निरन्तर बढ़ती प्रतिस्पर्धा (Constantly Increasing Competition)** वैश्वीकरण ने हमारे समक्ष विचित्र परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दी हैं। एक ओर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अवसरों की भरमार हुई है तो दूसरी ओर पारस्परिक प्रतिस्पर्धा ने भी अपने पांव तेजी से पसारे हैं। बढ़ती हुई प्रतिस्पर्धा के इस युग में व्यक्ति अनुपयुक्त साधनों का भी प्रयोग करने लगता है, ऐसी स्थिति में उचित प्रकार से दिया गया निर्देशन भी काम नहीं आता।
6. **व्यक्ति सापेक्षता (Subjectivity)**- निर्देशन प्रक्रिया के अन्तर्गत निर्देशक को वस्तुनिष्ठता का पूरा ध्यान रखना चाहिए। किन्तु, मानव की स्वाभवगत विशेषताओं के कारण निर्देशक में व्यक्ति सापेक्षता आ जाती है जो निर्देशन कार्य की गुणवत्ता को नकारात्मक रूप से प्रभावित करती है। दूसरे शब्दों में निर्देशन कार्य करते समय व्यक्ति के स्वभाव, प्रतिक्रिया आदि के प्रभाव में आकर निर्देशक दो अलग-अलग प्रकार से निर्देशन देने लगता है जो निर्देशन के सिद्धान्तों के विरूद्ध है।
7. **पूर्वाग्रहों से ग्रसित होना (Prejudicousness)**- निर्देशन कार्य की प्रक्रिया में कभी-कभी निर्देशक उपबोध्य की रूचि, योग्यता, क्षमता आदि के विषय में अपनी कुछ पूर्वधारणाएं बना लेता है तथा उसकी यह धारणाएं निर्देशन प्रक्रिया को प्रभावित करती है। कभी-कभी इन पूर्वागहों के कारण निर्देशन की प्रक्रिया समुचित प्रकार से पूर्ण नहीं हो पाती तथा कभी-कभी इससे घातक परिणाम भी प्राप्त हो सकते हैं।
8. **व्यक्तिगत विचारधारा (Personal Ideology)**- प्रत्येक व्यक्ति का अपना जीवन दर्शन होता है और वह समाज, परिस्थितियों, व्यवस्थाओं एवं घटनाओं को अपने इसी दृष्टिकोण से देखता है। जब कभी निर्देशक और उपबोध्य जो विपरीत जीवन दर्शन को मानने वाले होते हैं तब निर्देशन की प्रक्रिया बहुत कठिनाई से पूर्ण हो पाती है। इसी प्रकार निर्देशक के व्यक्तिगत जीवन दर्शन का प्रभाव उसके निर्देशन कार्य पर पड़ता है जो उपबोध्य के लिए सदैव उपयोगी हो यह जरूरी नहीं।
9. **प्रोत्साहन का अभाव (Lack of Motivation)**- निर्देशन प्रक्रिया को कुशलतापूर्वक सम्पन्न कराने के लिए निर्देशकों का अत्यधिक अभाव होने के बाद भी निर्देशन कार्य को किसी भी प्रकार का प्रोत्साहन नहीं दिया जाता। न तो निर्देशकों के पास उनके उपबोध्य की सफलता का श्रेय होता है और न ही कोई अन्य लाभ। विद्यालयों में निर्देशन कार्य करने वाले शिक्षकों को यह कार्य अतिरिक्त कार्य के रूप में दिया जाता है तथा इसकी प्रतिक्रिया में न तो उनका कार्यभार ही कम होता है और न ही कोई अन्य लाभ होता है।
10. **नैतिक मूल्यों का क्षरण (Inharresment of Moral Values)**-निर्देशन कार्य करते समय निर्देशक समाज के नैतिक मूल्यों का ध्यान रखता है; किन्तु, उपबोध्य जिस समाज में इस निर्देशन का प्रयोग करता है वहाँ यदि उपबोध्य का सामना अनैतिकता का आश्रय लेने वाले

प्रतियोगी से होता है तो इस दशा में निर्देशन कार्य के अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं होते। अतः गिरता हुआ नैतिक स्तर भी इसमें बहुत बड़ी बाधा है।

11. **शिक्षा का गिरता स्तर (Decreasing Leval of Education)-**वर्तमान परिवेश में शिक्षा का स्तर निरन्तर गिरता जा रहा है विद्यार्थी में ज्ञान प्राप्ति की ललक निरन्तर कम होती जा रही है वह अनुपयुक्त (अनुचित) रास्तों को अपनाकर श्रेष्ठ परिणाम प्राप्त करने का सफल प्रयास करता है। ऐसी परिस्थितियों में कुशल से कुशल निर्देशक भी अपने निर्देशन कार्य की सफलता की गारन्टी नहीं ले सकता। क्योंकि ज्ञान के ठोस आधार के बिना यथार्थ सफलता की दीवार खड़ी नहीं हो सकती।

1.8 निर्देशन की आवश्यकता एवं महत्त्व Need and Importance of Guidance

जैसा कि हम पहले ही जान चुके हैं कि निर्देशन जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। यह एक बहु आयामी प्रक्रिया है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में चाहे वह शैक्षिक हो या राजनीतिक, व्यावसायिक हो या कलात्मक निर्देशन की आवश्यकता पड़ती है।

वर्तमान युग अपेक्षाकृत अधिक जटिल है। तकनीकी के निरन्तर विकास ने इस जटिलता को और बढ़ा दिया है। जहाँ एक ओर तकनीकी विकास ने हमारी सामर्थ्य को बढ़ाकर कार्यप्रणाली को सरल किया है वहीं इसी तकनीक के कारण नये-नये कौशलों का जन्म भी हुआ है जिससे निर्देशन की आवश्यकता और अधिक बढ़ जाती है। यद्यपि बालक को उसके जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त निर्देशन की आवश्यकता प्रत्येक युग में रही है तथापि जटिलताओं के वर्तमान युग में निर्देशन की आवश्यकता ने अपने पांव और अधिक पसार लिए हैं। अतः जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में निर्देशन जल और वायु की तरह अनिवार्य हो गया है। यहां पर हम कतिपय महत्त्व पूर्ण क्षेत्रों में निर्देशन की आवश्यकता पर चर्चा करेंगे।

व्यक्तिगत जीवन में निर्देशन की आवश्यकता Need of Guidance in Personal Life

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है समाज के बिना उसका मनुष्य अस्तित्व संभव नहीं है। वह समाज में रहते हुए जीवन के प्रत्येक पग पर दूसरों से सीखता है। अपने दैनिक जीवन में कोई भी कार्य ऐसा नहीं है जिसे वह दूसरों की सहायता से न सीखता हो। धीरे-धीरे वह इन कार्यों का अभ्यस्त हो जाता है तथा स्वयं ही इन कार्यों को करने में सक्षम हो जाता है। चूंकि जीवन की परिस्थितियाँ निरन्तर बदलती रहती हैं अतः उसे समायोजन हेतु नये-नये कार्यों को सीखना पड़ता है। अतः जीवन पर्यन्त व्यक्तिगत कार्यों को करने के लिए निर्देशन की आवश्यकता होती है। व्यक्तिगत जीवन में निर्देशन की आवश्यकता मुख्यतः निम्न कारणों से पड़ती है -

i. **व्यक्तिगत क्षमताओं के विकास हेतु (For Development of Individual Skills) -** कोई भी व्यक्ति स्वयं में पूर्ण नहीं है किन्तु पूर्ण होने के प्रयास में वह अपनी व्यक्तिगत क्षमताओं को

निरन्तर विकसित करता रहता है। संभवतः प्रकृति ने निरन्तर श्रेष्ठता प्राप्त करने के लिए प्रत्येक जीव में इस तरह की अपेक्षा को जन्म दिया होगा। किसी भी व्यक्ति की व्यक्तिगत क्षमताओं का विकास निर्देशन के बिना संभव नहीं है। यदि हमें बालपन में माता की उंगली का सहारा न मिला होता तो शायद हम अभी तक सीधे खड़े होना भी न सीख पाये होते। निर्देशन का यह पहला चरण हमारी प्रकृति और क्षमताओं को समझते हुए जिस प्रकार हमारा विकास करता है निर्देशन की वह प्रक्रिया हमारे सम्पूर्ण जीवन में हमारी व्यक्तिगत क्षमताओं को विकसित करती रहती है। इस विषय में हम भीतर के पृष्ठों में और अधिक चर्चा करेंगे।

ii. **पारिवारिक जीवन में आवश्यक (Necessary in Family Life)-** प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी परिवार का अंग अवश्य होता है। परिवार में माता पिता भाई बहन तथा अन्य सम्बन्धियों के साथ अपने सम्बन्ध बनाये रखना एवं परिवार के लिए उपयोगी होना प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक है। माता-पिता के कुशल निर्देशन में बालक परिवार की व्यवस्थाओं को ठीक से समझ जाता है। पारिवारिक जीवन में स्वंय को स्थापित करने के लिए निर्देशन की अत्यधिक आवश्यकता है।

iii. **किशोरावस्था का सामना करने के लिए (To Face Adolescen-ce Period)-** स्टेनले हाल जैसे मनोवैज्ञानिकों ने किशोरावस्था को संवेग और तूफान की अवस्था कहा है। इस अवस्था में बालक युवावस्था की ओर कदम बढ़ा रहा होता है। उसके भीतर बहुत तेजी से शारीरिक मानसिक और संवेगात्मक परिवर्तन आ रहे होते हैं। बदलती हुई सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों में बालक इन परिवर्तनों में डूब जाना चाहता है। उपयुक्त निर्देशन के अभाव में इस अवस्था का बालक अप्रत्याशित निर्णय ले सकता है जो उसके जीवन तथा समाज दोनों के लिए घातक सिद्ध हो सकता है। अतः किशोरावस्था में निर्देशन अति आवश्यक है।

अभ्यास प्रश्न

3. निर्देशन की महत्त्व पूर्ण अवधारणाएं लिखिए।

शिक्षा के क्षेत्र में निर्देशन की आवश्यकता Need of Guidance in Educational Field

शिक्षा मनुष्य को पशुओं से अलग करती है। संस्कृत में कहा गया है ''साहित्य, संगीत, कला विहीनः साक्षात् पशु पुच्छविषाणहीनः'' किन्तु न तो प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक प्रकार की विद्या प्राप्त कर सकता है और न ही ऐसा हो सकता है कि कोई भी विद्यार्थी किसी भी विषय का चयन कर ले और सफल हो जाय। आज देश में हम बेरोजगारों की जो भारी भीड़ देख रहे हैं उसका एक महत्त्व पूर्ण कारण अपनी रूचि, योग्यता और क्षमता को जाने बिना किसी भी विषय का अध्ययन कर लेना भी है। अतः शिक्षा

के क्षेत्र में विषय चयन से लेकर परीक्षा उत्तीर्ण करने तक प्रत्येक चरण में व्यक्ति को निर्देशन की आवश्यकता अनुभव होती है।

i. **उपयुक्त विषयों के चयन हेतु (For Selecting Appropriate Subject)** - शिक्षा के क्षेत्र में आज सबसे बड़ी समस्या यह है कि विद्यार्थी को यह समझ में नहीं आता कि वह किन विषयों का चयन करे जिसके द्वारा वह भविष्य में सफल हो सके। आज यद्यपि शिक्षा के क्षेत्र में विषयों की भरमार है लेकिन सबसे बड़ी समस्या उसके उपयुक्त चयन की है अतः आज विद्यार्थियों को उपयुक्त विषयों के चयन हेतु निर्देशन की आवश्यकता पड़ती है।

ii. **कक्षा कक्ष व्यवहार के लिए (For Classroom Behaviour)**- बालक जब से विद्यालय में प्रवेश लेता है तथा जब तक विद्यालय में रहता है वह विभिन्न स्तरों से गुजरता है। प्रत्येक स्तर पर उससे एक विशेष प्रकार के व्यवहार की आशा की जाती है। इस व्यवहार को बालक को सिखाना पड़ता है, तथा इसके लिए निर्देशक की आवश्यकता पड़ती है। बालक को कक्षा में किस प्रकार का आचरण करना है उसे अपने गुरूजनों, साथियों से किस प्रकार का व्यवहार करना है, तथा उसे अपनी कक्षा की भौतिक सम्पत्ति को किस प्रकार सहेज कर रखना है, यह सब वह निर्देशन से ही सीखता है।

iii. **शैक्षिक उपलब्धि बढ़ाने हेतु (For the Increasment of Educa-tional Achievenent)** - विद्यालय में अलग-अलग मानसिक स्तर के विद्यार्थी अध्ययन करते हैं कभी-कभी विद्यार्थी की शैक्षिक उपलब्धि उसके मानसिक स्तर से मेल नहीं खाती। इसके अनेक कारण हो सकते हैं। किन्तु, इसका प्रमुख कारण उचित निर्देशन का अभाव है। प्रायः निर्देशन के अभाव में विद्यार्थी प्राप्त ज्ञान को अभिव्यक्त करने में असफल रहता है, जिससे उसकी शैक्षिक उपलब्धि पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। उचित प्रकार से दिया गया निर्देशन बालक की शैक्षिक उपलब्धि को बढ़ाने में सहायक है।

iv. **विद्यालय की अन्य गतिविधियों हेतु (For Other Activities of School**)- विद्यालय केवल विद्या का मन्दिर ही नहीं है अपितु वहाँ अध्ययन-अध्यापन के अतिरिक्त अन्य प्रकार की गतिविधियाँ सम्पन्न होती हैं, किन्तु अभिभावकों तथा विद्यार्थियों की नजर में इन गतिविधियों का महत्त्व न होने के कारण विद्यालय के बहुत कम विद्यार्थी इस प्रकार की गतिविधियों में भाग लेते हैं। यदि अध्यापकों एवं विद्यार्थियों को इस प्रकार का निर्देशन प्रदान किया जाये तो न केवल विद्यार्थियों की सहभागिता बढ़ेगी अपितु उनका तीव्रतर विकास भी होगा।

व्यावसायिक क्षेत्र में निर्देशन की आवश्यकता (Need of Guidance in Vocational Field)
बालक का व्यक्तिगत एवं शैक्षिक जीवन उसके व्यावसायिक जीवन की आधारशिला है। घर और विद्यालय मिलकर बालक को भली-भाँति जीवन यापन के लिए तैयार करते हैं। तभी वह समाज के लिए उपयोगी नागरिक सिद्ध हो सकता है अतः व्यक्तिगत एवं शैक्षिक जीवन में निर्देशन की जितनी

आवश्यकता अनुभव होती है। व्यावसायिक जीवन के लिए निर्देशन की आवश्यकता उससे कहीं अधिक है। निम्नांकित बिन्दुओं के अन्तर्गत हम अपनी बात को और अधिक स्पष्ट कर सकेंगे।

i. **उपयुक्त व्यवसाय के चयन हेतु (for Selection of Appropriate Occupation)** वर्तमान युग औद्योगिकीकरण का युग है। औद्योगिकीकरण के साथ-साथ जनसंख्या वृद्धि भी हुई है, जिसके कारण बेरोजगारी की समस्या बढ़ी है। परन्तु, आज बेरोजगारी का एक कारण लोगो द्वारा उपयुक्त व्यवसाय का चयन न करना भी है। खासतौर पर आज का युवा दिग्भ्रमित है। जिस तरफ सब जा रहे हैं वह भी उसी अंधी दौड़ में शामिल है। उसे अपनी रूचि, क्षमताओं तथा योग्यताओं का तो पता ही नहीं है। भारत जैसा देश जहाँ आबादी का सबसे बड़ा हिस्सा युवाओं का है तथा जहाँ युवा बेरोजगारी की समस्या से जूझ रहे हैं वहाँ निर्देशन की आवश्यकता और भी बढ़ जाती है। आज भारत को अच्छे निर्देशकों की आवश्यकता है जो यहां के युवाओं की ऊर्जा को सकारात्मक दिशा में मोंड़ कर (लगाकर) भारत को आर्थिक रूप से सुदृढ़ बना सके।

ii. **व्यावसायिक क्षमताओं के विकास हेतु (For the Development of Vocational Skill)-** केवल उपयुक्त व्यवसाय का चयन करने में सहायता करने पर ही निर्देशन की भूमिका समाप्त नहीं हो जाती अपितु व्यवसाय चयन के बाद निर्देशन की भूमिका और अधिक महत्त्व पूर्ण हो जाती है। तकनीकी विकास के इस युग में प्रत्येक व्यवसाय विशिष्ट से विशिष्टतर होता जा रहा है। व्यवसाय आरम्भ करते ही कोई भी व्यक्ति अपने व्यवसाय का विशेषज्ञ नहीं हो सकता। कभी-कभी व्यवसाय में असफलता का भय भी बना रहता है। व्यवसाय चयन के बाद व्यवसाय विशेष की बारीकियों को समझने तथा अपने प्रिय व्यवसाय में अपनी क्षमताओं को बढ़ाते रहने के लिए सतत् निर्देशन की आवश्यकता अनुभव होती है।

iii. **तकनीकी जटिलताओं का सामना करने के लिए (To Face Technical Complication)-** आज का युग तकनीकी का युग है। आज हर कार्यक्षेत्र में नयी-नयी तकनीकों का विकास हो रहा है। आज इस क्षेत्र में इतने नवाचार हो रहे हैं कि किसी भी व्यक्ति का इन सबसे स्वयं अवगत रहना तथा इन सारी कुशलताओं का स्वंय में विकास करना लगभग असम्भव सा कार्य है। अतः आज इन सभी क्षेत्रों में हो रहे नवाचारों को समझने के लिए उसे निर्देशक की आवश्यकता पड़ती है।

सामाजिक जीवन में निर्देशन की आवश्यकता (Need of Guidance in Social Life)

परिवार को समाज की प्रथम इकाई माना जाता है तथा परिवार से प्रशिक्षित होकर ही बालक समाज में जाता है। ऐसा समझा जाता है कि जो बालक परिवार में भली-भाँति समायोजित हो जाते है वो समाज में भी भली प्रकार से समायोजन करने में समर्थ होते हैं। लेकिन कभी-कभी परिस्थितियाँ इसके विपरीत भी होती हैं। कोई-कोई परिवार बालक को अत्यन्त लाड़ प्यार देकर पालते हैं तथा बालक को

आत्मनिर्भर होने का अवसर ही प्रदान नहीं करते। ऐसा बालक जब समाज में जाता है तो वह संरक्षण के अभाव में स्वयं को असुरक्षित अनुभव करने लगता है। परिणामतः वह कुसमायोजन का शिकार हो जाता है अतः समाज में सामंजस्य हेतु निर्देशन की महती आवश्यकता है। वस्तुतः बालक को समाज में केवल अपनी विचारधाराओं, धारणाओं तथा विश्वासों के आधार पर ही नहीं अपितु सामाजिक विश्वासों, धारणाओं तथा विचारधाराओं के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए जीवन यापन करना होता है तथा इन सबके लिए उसे निर्देशन की आवश्यकता होती है।

i. **समाज के परिवर्तनशील मानदंडों में समायोजन के लिए (For the Compatibility of Changing Social Norms).** सामाजिक परिवर्तन समाज की अनिवार्य आवश्यकता है। कोई भी समाज समय-समय पर अपने मानदंडों को बदले बिना नहीं रह सकता। तकनीकी के विकास तथा वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने समाज के मानदंडों में तीव्रगामी परिवर्तन ला दिये हैं। इन बदलते सामाजिक मानदंडों में समायोजन के लिए व्यक्ति को निर्देशन की अत्यधिक आवश्यकता है।

ii. **मजबूत लोकतन्त्र के निर्माण हेतु (For the Building of Strong Democracy)-** मजबूत लोकतन्त्र के निर्माण हेतु भी निर्देशन की आवश्यकता पड़ती है। आज भारत के समक्ष क्षेत्रवाद, जातिवाद, तथा साम्प्रदायिकता जैसी अनेक समस्याऐं हैं जो भीतर ही भीतर राष्ट्र की मजबूत नींव को खोखला कर रही हैं। आज वैश्वीकरण का युग है जिसमें प्रत्येक राष्ट्र को अत्यन्त मजबूत होकर विश्व पटल पर स्वयं को प्रस्तुत करना है। अतः ऐसे में एक निर्देशक का दायित्व और भी बढ़ जाता है कि वह राष्ट्र के लोगों को इन संकीर्ण मानसिकताओं से ऊपर उठाकर उन्हें एक मजबूत राष्ट्र के निर्माण के लिए प्रेरित करे।

1.9 निर्देशन का विषय क्षेत्र Scope of Guidance

हम पिछले पृष्ठों में यह बात जान चुके हैं कि निर्देशन जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है अतः जन्म से लेकर मृत्यु तक व्यक्ति का सम्पूर्ण जीवन निर्देशन का कार्य क्षेत्र कहा जा सकता है। यद्यपि निर्देशन के कार्यक्षेत्र को बताना सप्रयास निर्देशन प्रक्रिया का सीमांकन करना है; तथापि अध्ययन को सरल बनाने की दृष्टि से हम निर्देशन के कार्य क्षेत्र को कुछ बिन्दुओं के अन्तर्गत अभिव्यक्त करने का प्रयास करेंगे।

i. **व्यक्ति का व्यक्तिगत जीवन (Personal Life of Individual)-** प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यक्तिगत जीवन में अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। जैसे शारीरिक, मानसिक, मनोवैज्ञानिक आदि। ये समस्याऐं व्यक्ति को तोड़कर रख देती हैं, किन्तु, एक कुशल निर्देशक व्यक्ति को इन समस्याओं से न केवल उबार लाता है बल्कि उसे जीवन में सफलता भी प्राप्त कराता है, अतः व्यक्ति का सम्पूर्ण वैयक्तिक जीवन निर्देशन का कार्य क्षेत्र कहा जा सकता है।

ii. **व्यक्ति का सामाजिक जीवन (Social Life of Individual)**- व्यक्ति परिवार के सम्पर्क में आते ही अपना सामाजिक जीवन जिसे हम पारिवारिक जीवन कहते हैं जीना आरम्भ कर देता है। धीरे-धीरे वह समाज के सीधे सम्पर्क में आता है और अनेक सामाजिक समस्याओं का सामना करने लगता है। इन समस्याओं के समाधान के लिए उसे निर्देशन की आवश्यकता अनुभव होती है। हम कह सकते हैं कि व्यक्ति के समस्त सामाजिक सम्बन्ध निर्देशन के कार्य क्षेत्र में आते हैं।

iii. **व्यक्ति के शैक्षिक क्रियाकलाप (Educational Activity of Individual)** विद्यालय में प्रवेश के बाद विषय चयन से लेकर विषय को समझने, उसकी कठिनाईयाँ दूर करने, विद्यार्थियों के पारस्परिक सम्बन्ध, विद्यार्थी और अयापकों के कार्य सम्बन्ध, विद्यार्थी और कार्यालय, विद्यार्थी और चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी तथा विद्यार्थी की अध्ययन से सम्बन्धित अन्य समस्याऐं सभी निर्देशन के कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत आती है, क्योंकि बिना निर्देशन के इन समस्याओं का समाधान सम्भव नहीं है।

iv. **व्यक्ति के व्यावसायिक क्रियाकलाप (Vocational Activity of Individual)** प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन यापन के लिए कोई न कोई कार्य अवश्य करता है। जीवन यापन के लिए किया जाने वाला कार्य व्यवसाय की श्रेणी में आता है। बिना उपयुक्त निर्देशन के उचित व्यवसाय का चयन नहीं किया जा सकता। व्यवसाय चयन के बाद भी उसके व्यावसायिक जीवन में अनेक समस्याऐं आती रहती हैं; इन समस्त समस्याओं का निदान करने के लिए निर्देशन की आवश्यकता होती है। अतः व्यक्ति का सम्पूर्ण व्यावसायिक जीवन निर्देशन के कार्य क्षेत्र के अन्तर्गत आता है।

1.10 निर्देशन की उपयोगिता Significance of Guidance

एक ओर कुछ दार्शनिक इस संसार को 'असार' कहते हैं तो दूसरी ओर कुछ दार्शनिकों की मान्यताये हैं कि इस संसार में कुछ भी अनुपयोगी नहीं है इस दृष्टि से किसी भी दूसरे तत्व की ही भाँति निर्देशन की भी अपनी उपयोगिता है।

प्रत्येक सम्प्रदाय के धर्म ग्रन्थ निर्देशन की उपयोगिता से भरे पड़े हैं इसीलिए जीवन जीने की कला सिखाने वाली महान विभूतियों को इन ग्रन्थों में भगवान, देवता, ईश्वर का पुत्र, गुरू और पैगम्बर आदि सम्माननीय नामों से सम्बोधित किया गया है।

यहाँ हम वर्तमान परिस्थियों में निर्देशन की उपयोगिता पर संक्षिप्त चर्चा करेंगे।

i. **आधारभूत कौशलों को सीखने में सहायक (Helpful to Learn Fundamental Skills)-** इतिहास इस बात का साक्षी है कि आज तक कोई भी व्यक्ति बिना उपयुक्त निर्देशन

के आधारभूत कौशलों को नहीं सीख पाया है जैसे - खड़े होना, चलना, बोलना, पढ़ना, लिखना, खाना-पीना इत्यादि। अतः शैक्षिक, व्यक्तिगत, व्यवसायिक एवं सामाजिक जीवन में आधारभूत कौशलों को सीखने के लिए निर्देशन की भूमिका महत्त्व पूर्ण है।

ii. **बालक का परिवार से विद्यालय में समायोजन (Adjustment of Child from Family to Home)**- अपने बाल्यकाल में बालक जब परिवार से विद्यालय का रूख करता है तब उसके सामने समायोजन की भीषण समस्या होती है निर्देशन के द्वारा ऐसी स्थिति में बालक का विद्यालय में समायोजन सरलतापूर्वक किया जा सकता है।

iii. **अध्ययन छोड़ने वाले बालकों को पुनः अध्ययन के लिए प्रेरित करने में सहायक (Helpful to Re-enrollment of Droppers)**- अपने अध्ययन कार्य को बालक अनेक कारणों से बीच में ही छोड़ देते हैं। उचित निर्देशन के द्वारा इन बच्चों को पुनः अध्ययन के लिए प्रेरित करने में पर्याप्त सहायता मिलती है।

iv. **शैक्षिक उपलब्धि एवं प्रगति में सहायक (Helpful in Academic Achievment and Development)**-विषयवस्तु का ज्ञान होना एक बात है तथा उसकी श्रेष्ठ अभिव्यक्ति दूसरी बात। अनेकशः विषय वस्तु का पर्याप्त ज्ञान होने पर भी अनेक बालकों की शैक्षिक उपलब्धि बहुत कम रह जाती हैं ऐसे बालकों की शैक्षिक उपलब्धि एवं प्रगति को उचित निर्देशन के माध्यम से बढ़ाया जा सकता है।

v. **बालक के समग्र विकास में सहायक (Helpful in Wholesome Development of Child)**- निर्देशन कार्य बालक को न केवल जीवन का अर्थ समझने में सहायता देता है अपितु उसके वैयक्तिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, व्यावसायिक एवं तकनीकी विकास में पूरी तरह से सहायता करता है।

vi. **भविष्य की योजना बनाने में सहायक (Helpful to Future Planning)**- निर्देशन की प्रक्रिया के दौरान निर्देशक बालक की दैनंदिन सामान्य समस्याओं से अवगत होता रहता है अतः वह भविष्य की शिक्षा योजना बनाते समय इन समस्याओं का विशेष ध्यान रखता है। हम कह सकते हैं कि निर्देशन का कार्य भविष्य की योजना बनाने में सहायक है।

1.11 सारांश

ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति मानव के पास स्वयं की भाषा, बुद्धि एवं विवेक आदि होते हुए भी उपयुक्त विकास के लिए उसे किसी अन्य की सहायता लेनी पड़ती है। व्यक्ति की उत्तम क्षमताओं का विकास करने से सहायता करने का कार्य निर्देशन कहलाता है। निर्देशन की प्रक्रिया प्रारम्भ करने से पूर्व हमें निर्देशन के सिद्धान्तों से अवश्य परिचित होना चाहिए। हमें यह ज्ञात होना चाहिए कि निर्देशन एक सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक प्रक्रिया है। निरन्तर चलने वाली इस प्रक्रिया में निर्देशक को सामाजिकता

एवं नैतिकता का ध्यान रखना चाहिए। निर्देशन कार्य करने से पूर्व उसे वैज्ञानिक आधारों पर परिस्थितियों का विश्लेषण कर लेना चाहिए। निर्देशक को चाहिए कि वह अपने उपबोध्य को सकारात्मक निर्देशन दे तथा उसे आत्मनिर्भर बनाने का प्रयास करे। उपबोध्य निर्देशक का निर्देशन मानने अथवा न मानने के लिए स्वतन्त्र हो निर्देशन की प्रक्रिया लचीली होनी चाहिए। व्यक्तिगत भिन्नता को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक व्यक्ति को समान महत्त्व दिया जाना चाहिए तथा उपबोध्य के सम्पूर्ण विकास का प्रयास करना चाहिए।

एक से अधिक निर्देशक होने की स्थिति में निर्देशकों को परस्पर समन्वय स्थापित करना चाहिए। निर्देशक को चाहिए कि वह निरपेक्ष रहकर निर्देशन का कार्य करे तथा विशिष्ट क्षेत्रों में निर्देशन के लिए निर्देशक को प्रशिक्षण प्राप्त कर लेना चाहिए।

निर्देशन की अत्यधिक आवश्यकता होते हुए भी भारत में इसके प्रति जागरूकता का अभाव है। निर्देशकों को उपयुक्त प्रशिक्षण नहीं मिलता फलतः समाज में कुशल निर्देशकों की कमी है। तेजी से बदलती हुई सामाजिक परिस्थितियाँ तथा बढ़ती हुई प्रतिस्पर्धा के कारण भी निर्देशन के सुपरिणाम नहीं मिल रहे। निर्देशक भी यदा कदा पूर्वाग्रहों से ग्रसित हो जाते हैं; व्यक्तिगत विचारधारा को महत्त्व देने लगते हैं तथा व्यक्ति सापेक्ष हो जाते हैं। शिक्षा का गिरता हुआ स्तर भी निर्देशन कार्य में बाधा बनता है।

हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में निर्देशन की आवश्यकता है। मुख्य रूप से व्यक्तिगत जीवन में क्षमताओं के विकास के लिए, पारिवारिक जीवन में समायोजन के लिए, तथा किशोरावस्था का सामना करने के लिए निर्देशन अति आवश्यक है। इसी प्रकार शैक्षिक क्षेत्र में उपयुक्त विषयों के चयन के लिए, कक्षा कक्ष व्यवहार के लिए तथा अपनी शैक्षिक उपलब्धियाँ बढ़ाने के लिए निर्देशन की आवश्यकता होती है। व्यावसायिक क्षेत्र में उपयुक्त व्यवसाय चयन करने के लिए, व्यवसायिक क्षमताओं का विकास करने के लिए तथा तकनीकी जटिलताओं का सामना करने के लिए निर्देशन की आवश्यकता होती है। सामाजिक जीवन में बदलते हुए मानदंड तथा मजबूत लोकतन्त्र के लिए निर्देशन की आवश्यकता अनुभव होती है। व्यक्ति का व्यक्तिगत जीवन सामाजिक जीवन, शैक्षिक क्रियाकलाप, सामाजिक क्रियाकलाप आदि निर्देशन के कार्य क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं।

1.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. गुड के अनुसार
2. निर्देशन के किन्हीं पाँच सिद्धांतों के नाम हैं-
    i. ज्ञान का सिद्धान्त
    ii. सार्वभौमिकता का सिद्धान्त
    iii. निरन्तरता का सिद्धान्त
    iv. सामाजिकता का सिद्धान्त

v. नैतिकता का सिद्धान्त

3. निर्देशन की महत्त्व पूर्ण अवधारणाएं निम्नवत हैं
   i. मानव समाज में प्रत्येक व्यक्ति को निर्देशन की आवश्यकता होती है।
   ii. निर्देशन की दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखता है।
   iii. निर्देशन अद्यिगम (Learning) में सहायक होता हैं।
   iv. निर्देशन व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।
   v. निर्देशन का कार्य उपबोध्य (Learner) की क्षमताओं का विकास करना है।
   vi. निर्देशन उपबोध्य की उपलब्धि और प्रगति को बढ़ाता है।

1.13 संदर्भ ग्रंथ

1. Agrawal Rashmi, (Education Vocational Guidance and counseling) Shipra Publications, Delhi- 11092 (2006)
2. Suri S.P., T.S. Sodhi, (Guidance and counseling), Bawa Publication Patiala (1997)
3. Sharma R.A., (Career information in career guidance) Surya Publication Meerut (2004)
4. Sharma R.A (Guidance and counseling) Vinay Rakheia c/o R. Lall book Depot Meerut (2010)
5. सिंह रामपाल राधावल्लभ उपाध्याय, (शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन) विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।
6. जायसवाल सीताराम (शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श), अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा (2009)

1.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. निर्देशन के प्रमुख सिद्धान्त कौन-कौन से हैं?
2. निर्देशन की प्रमुख अवधारणायें स्पष्ट कीजिए?
3. भारतवर्ष में निर्देशन के क्षेत्र में कौन-कौन सी समस्याऐं हैं?
4. निर्देशन की आवश्यकता एवं महत्त्व को स्पष्ट कीजिए?

इकाई 2 : अच्छे परामर्शदाता के गुण, भूमिका तथा जिम्मेदारियाँ

2.1प्रस्तावना
2.2उद्देश्य
2.3अच्छे परामर्शदाता के गुण
2.3.1 अच्छे परामर्शदाता के व्यक्तित्व की विशेषता
2.3.2 अच्छे परामर्शदाता का प्रशिक्षण और तैयारी
2.3.3 अच्छे परामर्शदाता का अनुभव
2.4अच्छे परामर्शदाता की भूमिका एवं जिम्मेदारियाँ
2.4.1 विद्यार्थियों को परामर्श देने से संबन्धित कार्य
2.4.2 विद्यार्थियों के माता पिता का सहयोग प्राप्त सम्बन्धी कार्य
2.4.3 अध्यापकों से सहयोग प्राप्त करने सम्बन्धी कार्य
2.4.4 सूचनाएँ प्रदान करने सम्बन्धी कार्य
2.4.5 समुदाय के साथ सहयोग सम्बन्धी कार्य
2.4.6 मार्गदर्शन एवं परामर्श सेवाओं से संबन्धित अन्य विविध कार्य
2.5सारांश
2.6शब्दावली
2.7अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.8सन्दर्भ ग्रन्थ
2.9सहायक उपयोगी/ पाठ्य सामग्री
2.10 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

परामर्शदाता व्यावसायिक रुप से प्रशिक्षित व्यक्ति होता है, जो विद्यालयों में परामर्श तथा मार्गदर्शन सेवाओं का संगठन जिम्मेदारी के साथ करता है। विद्यालय का अध्यापक इस प्रकार के व्यावसायिक प्रशिक्षण के उपरान्त विद्यालय में परामर्शदाता की भूमिका अदा कर सकते है। परामर्शदाता निर्देशन और मार्गदर्शन कार्यक्रम का मुख्य एवं आकर्षक बिन्दु होता है। जो मार्गदर्शन तथा निर्देशन कार्यक्रम

का आयोजक तथा सुत्रधार विद्यालयों में होता है। परामर्शदाता प्रत्येक विद्यालय में अत्यन्त आवश्यक है। तथा यह एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। ये विद्यार्थी के सामाजिक समायोजन, व्यावसायिक चयन, से लेकर संवेगात्मक समस्याओं का समाधान करते है। परामर्शदाता विद्यार्थी की हर प्रकार की समस्याओं का समाधान करने हेतु विभिन्न प्रविधियों जैसे निदानात्मक उपकरण व्यावसायिक सूचनाएँ व्यक्ति को समझने के लिये विभिन्न परीक्षण का प्रयोग करते है। परामर्श एक व्यावसायिक सेवा है तथा यह व्यक्ति की समस्या पर केन्द्रित होता है। परामर्श सदैव परामर्शदाता की भविष्यवाणी की उपयुक्तता पर आधारित होता है। एक अच्छे परामर्शदाता में परिपक्वता, भावात्मक स्थिरता, आत्मसम्मान तथा आत्म विश्वास, स्वयं के बारे में ज्ञान, नेतृत्व की योग्यता, शैक्षिक पृष्ठभूमि तथा विद्वता, स्वास्थ्य एवं बाहरी व्यक्तित्व, व्यावसाय के प्रति सम्पूर्ण भावना प्रार्थी के मतभेदों के प्रति सहनशीलता और स्वीकृति का दृष्टिकोण तथा सभी साकारात्मक गुण होनी चाहिए। विद्यार्थियों का सहयोग और उनकी संभागिता एक सफल परामर्शदाता के लिए आवश्यक है। परामर्शदाता विद्यार्थियों का विश्वास हासिल कर उनका ध्यान अपने ओर आकर्षित कर उनके विषय में तथा समस्याओं के विषय में सूचनाएँ एकत्रित कर सकता है। एक अच्छे परामर्शदाता को सदैव संवेदनशील होना चाहिए जिससे वह विद्यार्थी के समस्या के प्रति संवेदनशील हो सके। एक अच्छे परामर्शदाता की यह महत्वपूर्ण जिम्मेदारी है कि वह विद्यार्थियों को इस योग्य बना सके कि वह अपनी समस्याओं के कारणों को ठीक तरह समझ सके तथा उनसे निपटने में अपने आपको समर्थ बनाने के प्रयत्न कर सकें। इस तरह से अगर परामर्शदाताओं के कार्यक्षेत्र और उत्तरदायित्वों का विवरण प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाये तो हम यह देख सकते है कि परामर्शदाता से ऐसा कोई भी कार्य तथा कार्य क्षेत्र अहुत नहीं है जो किसी न किसी रुप से बालकों की शैक्षिक व्यावसायिक तथा व्यक्तिगत प्रगति तथा कल्याण से जुड़ा हुआ होता है। विद्यार्थियों का कल्याण उनके सर्वांगीण विकास व्यवहार में उचित परिमार्जन तथा उनके व्यक्तिगत, सामाजिक तथा पर्यावरणात्मक समायोजन से जुड़ा होता है। अतः हम कह सकते है कि एक बहुपक्षीय परामर्श कार्यक्रम को तभी सफल बनाया जा सकता है जब विद्यालयों में उचित परामर्शदाता और मार्गदर्शन के रुप में प्रशिक्षिता व्यक्ति उपलब्ध हो। इस प्रकार हम देख सकते है। कि एक प्रशिक्षित परामर्शदाता अपने अच्छे गुणों, कौशल तथा विद्वता के आधार पर अपने जिम्मेदारियों का वहन करते हुए प्रत्येक विद्यार्थी के जीवन में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप एक परामर्शदाता का भूमिका किस प्रकार विद्यार्थी जीवन में आवश्यक है? समझ सकती है एक अच्छे परामर्शदाता के अंदर किन-किन अच्छे गुणों का समावेश होना आवश्यक है ये भी जान सकेंगे तथा एक अच्छे परामर्शदाता की एक विद्यालय तथा विद्यार्थी जीवन की समस्याओं का समाधान हेतु क्या-क्या जिम्मेदारियां होती है तथा इसका निर्वहन परामर्शदाता कैसे करते है?

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

1. एक अच्छे परामर्शदाता के गुणों की व्याख्या कर सकेंगे।
2. बता सकेंगे कि एक अच्छा परामर्शदाता बनने हेतु व्यावसायिक प्रशिक्षण किस प्रकार आवश्यक होता है।
3. किसी भी विद्यालय के अध्यापक को प्रशिक्षण लेकर विद्यालय में परामर्शदाता बनने का सुझाव दे सकेंगे।
4. विद्यालय के अध्यापकों को परामर्शदाता की भूमिका विद्यालय में क्या होती है तथा किस प्रकार यह विद्यार्थी जीवन पर प्रभाव डालते है, यह बता सकेंगे।
5. एक अच्छे परामर्शदाता के गुणों का वर्गीकरण कर श्रेणीबद्ध कर सकेंगे।
6. बता सकेंगे कि विद्यार्थी जीवन में परामर्शदाता किन-किन क्षेत्रों की समस्याओं का समाधान कर सकता है।
7. यह देख सकेगें कि किस प्रकार एक विद्यार्थी के सामाजिक समायोजन व्यावसायिक चयन मे परामर्शदाता सहायता करता है।
8. परामर्शदाता के कार्यों का विवरण दे सकेगे।
9. स्वयं में परामर्शदाता के गुणों को समाहित कर किसी व्यक्ति को परामर्श प्रदान करने में सक्षम हो सकेगें।

2.3 अच्छे परामर्शदाता के गुण

एक अच्छे परामर्शदाता में बहुत से गुण निहित होते है तथा इन गुणों को हम तीन समूहों में बाँट कर इसकी व्याख्या कर सकते है जो इस प्रकार है-

1. अच्छे परामर्शदाता के व्यक्तित्व की विशेषता
2. अच्छे परामर्शदाता का प्रशिक्षण एवं तैयारी
3. अच्छे परामर्शदाता के अनुभव

2.3.1- अच्छे परामर्शदाता के व्यक्तित्व की विशेषता

1. प्रत्येक परामर्शदाता की रुचियों में व्यापकता होनी चाहिए जिससे उसको अलग-अलग लोगों की नौकरियों और समस्याओं में रुचि लेने में मदद मिल सके।विभिन्न प्रकार की रुचियों के बारे में व्यापक समझ होना बहुत आवश्यक है।
2. परामर्शदाता में सहयोग की भावना का विकास होना अत्यन्त आवश्यक है। जिससे वह विद्यालयी वातावरण में सहयोग कर तथा विद्यार्थियों का भी सहयोग कर सके तथा अन्य

लोगों से सहयोग प्राप्त कर सकें।बिना सहयोग-भावना के वह न तो विद्यार्थियों और न ही शिक्षकों का कल्याण कर सकता है उसका सहयोगपूर्ण व्यवहार ही समस्याग्रस्त विद्यार्थियो को उस तक पहुचने में मदद करता है।

3. परामर्शदाता के स्वभाव में विनम्रता तथा वातावरण को खुशनुमा बनाने की कला होनी चाहिए। उसकी वाणी मधुर होनी चाहिए जिससे विद्यार्थियों को उससे धुलने-मिलने में मदद मिल सकें।खुशनुमा वातावरण मे विद्यार्थी अपनी समस्या आसानी से सुलझा लेते है
4. परामर्शदाता को दूरदर्शी होना चाहिए जिससे विद्यालय में अध्यापकों एवं विद्यार्थियों को समस्या को समझने में मदद मिलती है साथ ही साथ वह विद्यार्थियों एवं शिक्षकों के भविष्य को सँवारने का काम भी करता है उसकी दूरदर्शी सोच ही विद्यालय की प्रगति का आधार भी होती है ।
5. परामर्शदाता का व्यक्तित्व आकर्षक होना चाहिए जिससे प्रत्येक व्यक्ति उसको सुनने एवं समझने के लिए आकर्षित हो सके।
6. परामर्शदाता को विश्वासपात्र बनने की कला का ज्ञान होना आवश्यक है जिसकी सहायता से वह किसी का विश्वास हासिल कर उससे धुल-मिल कर समस्या के तह तक पहुँच सके। अब आप परामर्शदाता के व्यक्तित्व के विशेषता को समझ गए होंगे।

2.3.2 अच्छे परामर्शदाता का प्रशिक्षण और तैयारी

आप देखेंगे कि परामर्शदाता के प्रशिक्षण के लिए क्या-क्या तैयारी करनी है वो इस प्रकार हैः-

i. परामर्शदाता को शैक्षिक उद्देश्यों, पाठ्यक्रमों तथा विधियों का ज्ञान होना चाहिए।
ii. परामर्शदाता को विभिन्न व्यवसायों के विषय में विभिन्न गतिविधियों का ज्ञान होना चाहिए।
iii. परामर्शदाता को परामर्श एवं निर्देशन के सिद्धान्तों से भली प्रकार अवगत होना चाहिए।
iv. परामर्शदाता को सभी विषयों का ज्ञान होना आवश्यक है।
v. परामर्शदाता को विद्यालयों में निर्देशन-सेवाओं के गठन के विषय में पूर्ण ज्ञान होना चाहिए।
vi. परामर्शदाता को निर्देशन सेवाओं में मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं का ज्ञान आवश्यक है।
vii. परामर्शदाता को व्यवसाय-संबंधी जानकारी देने की विधियों का भी ज्ञान होना अति आवश्यक है। एक परामर्शदाता के लिए शैक्षिक योग्यताएँ इस प्रकार हैः-
    i. एम0 ए0 (मनोविज्ञान या शिक्षा) या बी0 ए0 एम0 एड0 (निर्देशन सहित) ।
    ii. शिक्षा-निर्देशन में डिप्लोमा कोर्स।
    iii. परामर्शदाता को व्यक्तित्व संबंधी समस्याओं, परीक्षाओं, मानसिक स्वास्थ्य तथा परामर्श देने की तकनीकों का ज्ञान हों।

2.3.3 अच्छे परामर्शदाता के अनुभव

एक परामर्शदाता को निम्नलिखित अनुभवों का ज्ञान आवश्यक है।

1. परामर्शदाता को निर्देशन कार्यक्रम में दक्षता हासिल होनी चाहिए जिससे उसे विद्यार्थियों की समस्या को समझने, तथा उन समस्याओं के समाधान करने तथा उनके साथ मधुर संबंध स्थापित करने में सहायता मिलती है।
2. परामर्शदाता को व्यवसाय दिलवाने तथा सही कार्यवाही करना आना चाहिए।
3. परामर्शदाता को हर प्रकार की सूचनाओं की व्याख्या करने में निपुणता आनी चाहिए।
4. परामर्शदाता को सामाजिक साधनों के प्रयोग में दक्षता होनी चाहिए।
5. परामर्शदाता में परामर्श सेवा का मूल्यांकन करने की योग्यता होनी चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

1. अच्छे परामर्शदाता के व्यक्तित्व में क्या विशेषता होनी चाहिए?
2. परामर्शदाता को क्या-क्या प्रशिक्षण देना चाहिए?
3. परामर्शदाता बनने के लिए शैक्षिक योग्यता क्या-क्या होनी चाहिए?
4. अच्छे परामर्शदाता में क्या-क्या अनुभव होने चाहिए?

2.4 अच्छे परामर्शदाता की भूमिका एवं जिम्मेदारियाँ

अच्छे परामर्शदाता की भूमिका विद्यार्थी की जीवन में किस-किस प्रकार है तथा विद्यालय, विद्यार्थी व विद्यार्थी के माता-पिता की क्या-क्या अपेक्षाएँ एक कुशल परामर्श दाता से हैं ये इस प्रकार हैं-

i. परामर्शदाता को विद्यार्थियों को उनकी योग्यताएं तथा क्षमताएं, रूचियां, दृष्टिकोण तथा इच्छाएँ और अभिलाषाओं आदि से परिचित कराना चाहिए।जिससे उनके अंदर आत्मविश्वाश पैदा होता है।
ii. विद्यार्थियों के समस्या को समझ कर उससे मुक्ति दिलाने में परामर्शदाता की मदद करनी चाहिए।
iii. विद्यार्थियों के व्यवहार में जो कमियाँ हो उसके परिमार्जन में परामर्शदाता को विद्यार्थी की मदद करनी चाहिए।
iv. परामर्शदाता को विद्यार्थी की शैक्षिक उपलब्धि में वृद्धि करने हेतु विद्यार्थी को सुझाव तथा सहयोग देना चाहिए।
v. अध्यापकों के व्यवहार में जैसा वे चाहते है उसी के अनुरूप परिवर्तन आ जाए, इस कार्य में परामर्शदाता को उनकी सहायता करनी चाहिए
vi. विद्यार्थियों को अपने समूह से अच्छे संबंध एवं सम्मान दिलाने में परामर्शदाता को उसकी मदद करनी चाहिए।
vii. परामर्शदाता को विद्यार्थी के लिए कौन सा रोजगार तथा कैरियर ठीक रहेगा तथा उसके लिए किस प्रकार तैयारी की जाए आदि बताना चाहिए।

viii. माता-पिता तथा अभिभावको से बालकों की पटरी बैढाने में परामर्शदाता को उनकी सहायता करनी चाहिए।

अब आप समझ गए होंगे कि एक परामर्शदाता की विद्यार्थी जीवन में क्या भूमिका तथा महत्व है।

एक अच्छे परामर्शदाता का विद्यालय में क्या भूमिका है तथा परामर्शदाता विद्यालय के अध्यापक की किस प्रकार सहायता कर सकता है। ये निम्नलिखित है-

i. परामर्शदाता शिक्षकों को विद्यार्थियों को जानने-पहचानने तथा भलीभाँति समझने में मदद करें। उनके विभिन्न प्रकार के परीक्षण लेकर विद्यार्थियों के स्तर तथा व्यवहार को समझने में भी उनकी मदद करें।
ii. शिक्षकों को मदद करें ताकि वह विद्यार्थियों के व्यवहार में अपेक्षानुरूप व्यवहार परिवर्तन कर सकें।
iii. समस्यात्मक एवं अनुशासनहीन विद्यार्थियों से निपटने में शिक्षकों की सहायता करें।क्योंकि ऐसे बालकों से शिक्षण अधिगम प्रक्रिया मे बढ़ा उत्पन्न होती है।
iv. पाठ्य सहगामी क्रियाओं में विद्यार्थियों का सही चुनाव कराने में शिक्षक की सहायता करें।
v. विद्यार्थियों के माँ बाप तथा अभिभावकों से विद्यार्थियों के विकास हेतु पर्याप्त सहयोग लेने में शिक्षकों की सहायता कर सकता है।
vi. प्रधानाध्यापक-शिक्षक तथा शिक्षक-शिक्षक के आपसी सम्बन्धों को ठोस बनाने में शिक्षकों को सलाह मशविरा देते रहना चाहिए।

अब आप जान गये होंगे कि परामर्शदाता किस प्रकार अध्यापकों की सहायता कर सकता हे। आइए अब आप अवगत हों कि माँ-बाप तथा अभिभावकों की परामर्शदाता से क्या अपेक्षायें होती है-

i. बालकों को ठीक तरह समझने में अभिभावकों की मदद करना।
ii. बालकों की गलत आदतों को हटाने में तथा व्यवहार को सुधारने में वह सभी संभव उपाय करें।
iii. अगर बालक पढ़ाई में कमजोर है अथवा उनका मन पढ़ाई में नहीं लगता तो वह उचित उपाय बताएँ।
iv. अभिभावकों वह यह बतायें कि उनके बालकों के लिए कौन से विषयों का पढ़ना ठीक है तथा वे उपयुक्त व्यवसाय का चुनाव कर सकें।
v. अभिभावकों को फीस माफी, वजीफे तथा अन्य प्रकार की कैसी सहायता किस रूप में उपलब्ध हो सकती है।
vi. अध्यापकों तथा प्रधानाध्यापकों से अभिभावकों का तालमेल बनाये रखने में सहायता करें।

विद्यार्थी, अध्यापक, माँ-बाप तथा अभिभावक की उपरोक्त अपेक्षाओं के आधार पर परामर्शदाताओं द्वारा निभाई जाने वाली भूमिकायें निम्न प्रकार की जा सकती हैं-

2.4.1. विद्यार्थियों को परामर्श देने से सम्बन्धित कार्य

i. विद्यार्थियों से आत्मीयता एवं घनिष्ठ सम्बन्ध बनाना। ताकि समस्या ग्रस्त विद्यार्थी अपनी समस्या को बिना हिचकिचाहट के बता सकें व उन्हें यह भी भरोसा हो की परामर्शदाता उनकी सहायता अवश्य करेगा
ii. विद्यार्थियों को जानने तथा समझने हेतु विभिन्न प्रकार के परीक्षणों जैसे बुद्धि परीक्षण, उपलब्धि परीक्षण, रूचि परीक्षण, व्यक्तित्व परीक्षण, अभिरूचि परीक्षणों तथा अन्य निरीक्षण तथा सूचना श्रोतों का उपयोग करना।विभिन्न परीक्षणों का उपयोग विद्यार्थी की मनोवैज्ञानिक विशेषताओं को जानने के लिए किया जाता है। इन विशेषताओं की जानकारी से परामर्शदाता को परामर्श देने में बहुत सहायता प्राप्त होती है।
iii. विद्यार्थियों को इस योग्य बनाना कि वे अपनी समस्याओं के कारणों को ठीक तरह समझ सकें तथा अपने सकरात्मक पक्षों को पहचान कर समस्या का निदान स्वयं करने में सक्षम हो सकें।

2.4.2 विद्यार्थियों के माता-पिता का सहयोग प्राप्त करने सम्बन्धी कार्य

माता-पिता या अभिभावक का सहयोग लिए बिना विद्यार्थियों को अच्छी प्रकार से परामर्श नहीं दिया जा सकता है इस बात से आप भी सहमत होंगे कि अभिभावक विद्यार्थियों के बारे में बहुत महत्वपूर्ण सूचनाएं परामर्शदाता को दे सकते हैं। परामर्शदाता इस सम्बन्ध में निम्न कार्य करता है

i. परामर्शदाता विद्यार्थियों के माता-पिता या अभिभावक को बालक के शैक्षिक विकास एवम् प्रगति के स्तर के बारे में जानकारी देते रहता है।
ii. माता-पिता तथा अभिभावकों को परामर्श तथा मार्गदर्शन सेवाओं के कार्यक्षेत्र तथा उपयोगिता से परिचित कराना तथा इन सेवाओं के आयोजन हेतु अपेक्षित सहयोग प्राप्त करना।
iii. विद्यार्थी के व्यवहार, योग्यता तथा क्षमता स्तर, व्यक्तिगत गुणों एवं आदतों के संबंध में माँ-बाप से अपेक्षित सहयोग प्राप्त करना। माता पिता एवं अभिभावकों से प्राप्त व्यवहार सम्बन्धी सूचनाएँ मार्गदर्शन करने में सहायता प्रदान करती है।
iv. विद्यार्थियों में विशेष प्रकार के व्यवहार, समस्या तथा समायोजन से सम्बन्धित आवश्यक जानकारी एकत्रित करने में माता-पिता का सहयोग लेना।
v. माता-पिता तथा अभिभावक विद्यार्थियों के साथ अच्छा तालमेल रखते हुए उनके विकास में योगदान दें इस हेतु सहायता करना।

अब आप जान गए होंगे कि माता-पिता तथा अभिभावक का सहयोग अत्यधिक आवश्यक है बिना उनके सहयोग के विद्यार्थियों से संबन्धित बहुत सारी महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त होना असंभव है। उचित परामर्श प्रदान करने हेतु विद्यार्थी की प्रष्ठ भूमि से संबन्धित अधिक से अधिक सूचनाएँ परामर्शदाता के पास होना अत्यंत जरूरी है।

2.4.3. अध्यापको से सहयोग प्राप्त करने सम्बन्धी कार्य

परामर्शदाता को अध्यापकों का सहयोग लेना भी जरूरी है क्यांकि अध्यापक शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के दौरान विद्यार्थियों के व्यवहार का निरीक्षण करते हैं तथा वह विद्यार्थियों की विशेषताओं से परिचित होते है। अब आप परामर्शदाता के निम्नलिखित कार्यो से समझ पायेंगे कि अध्यापकों का सहयोग वह मार्गदर्शन सेवाओं हेतु किस प्रकार प्राप्त करता है-

1. विद्यार्थियों के मनोवैज्ञानिक गुणों को जानने हेतु विभिन्न परीक्षणों एवं उपकरणों को प्रशासित करते समय अध्यापक का सहयोग प्राप्त करना।
2. विद्यार्थियों को परामर्श एवं निर्देशन/मार्गदर्शन प्रदान करने हेतु जो विभिन्न प्रकार के अभिलेख तैयार किये जाते है उनको तैयार करने तथा रखरखाव में अध्यापकों का सहयोग प्राप्त करना। संचित अभिलेख तैयार करने हेतु तथा उसके रखरखाव हेतु शिक्षक की मदद लेने आवश्यक होता है क्योंकि शिक्षक विद्यार्थियों की अधिकांश विशेषताओं से परिचित होते हैं ।
3. विद्यार्थियों से अध्यापक को किस प्रकार का व्यवहार करना अपेक्षित है इस बात का आभास अध्यापकों का कराया जाना आवश्यक है। परामर्शदाता इस प्रकार का परामर्श अध्यापकों को समय-समय पर दिया जाता है। ताकि उनका विद्यार्थियों के साथ उचित तालमेल बना रहे।हमेशा विद्यार्थियों को डांटना फटकारना तथा गुस्से में बात करना अच्छे शिक्षण में बढ़ा उत्पन्न करता है इस हेतु परामर्शदाता आवश्यक परामर्श प्रदान करता है।
4. अध्यापकों को कुसमायोजित, विशेष बालकों को पढ़ाने में विशेष कठिनाई का अनुभव करना पड़ता है। इस सम्बन्ध में परामर्शदाता उन्हें उचित मार्गदर्शन द्वारा समायोजनात्मक तथा उपचारात्मक तरीकों से परिचित कराता है।
5. विद्यार्थियों की व्यक्तिगत विशेषताओं से अध्यापक को परिचित कराना तथा वैयक्तिक विशेषताओं के अनुरूप शिक्षण प्रक्रिया के आयोजन में अध्यापक की सहायता प्रदान करना।
6. विद्यार्थियों को मार्गदर्शन व परामर्श देने से पूर्व उन्हें अच्छी तरह जानने व समझने हेतु विद्यार्थियों के प्रति अध्यापकों की राय या प्रतिक्रिया जानना।

अब आप जन गए होंगे कि विद्यार्थियों को परामर्श प्रदान करने हेतु अध्यापक से आवश्यक सहयोग कैसे प्राप्त किया जाता है, शिक्षण अधिगम को प्रभावी कैसे बनाया जाता है एवं कक्षा में समस्यात्मक बालकों से कैसे निपटा जाता है।

2.4.4. सूचनाएँ प्रदान करने सम्बन्धी कार्य

पिछली इकाई के अध्ययन के बाद आप जान गए होगें कि मार्गदर्शन सेवाओं के अन्तर्गत सूचना सेवाओं को संगठन किया जाता है। इन सूचना सेवाओं के संगठन का उत्तरदायत्वि परामर्शदाता के ऊपर होता है। इस हेतु वह निम्न कार्य कर सकता है-

1. विद्यार्थियों के व्यवहार, योग्यता, क्षमता, व्यक्तित्व गुणों आदि से सम्बन्धित सूचाएँ आवश्यकतानुसार प्रदान करना।
2. विभिन्न शैक्षिक अवसरों (पाठ्यक्रमों), विषयों तथा क्रियाओं के बारे में आवश्यक जानकारी एवं सूचनाएँ प्रदान करना।
3. व्यावसायिक कोर्सों, नौकरी के अवसरों, विभिन्न रोजगारों आदि के बारे में सभी आवश्यक जानकारी प्रदान करना।
4. विद्यालय के इतिहास, उद्देश्य, नियम तथा सुविधाओं के बारे में आवश्यक जानकारी प्रदान करना।
5. फीस माफी, वजीफे तथा अन्य शैक्षिक या व्यावसायिक सुविधाओं के नियम, अवसरों आदि को उचित जानकारी प्रदान करना।
6. विद्यालय के भौतिक संसाधनों (पुस्तकालय, प्रयोगशाला, खेल मैदान, कम्प्यूटर लैब, हॉस्टल, डे सेन्टर, कॉमन रूम, कैन्टीन) की उचित जानकारी प्रदान करना।
7. सूचना पुस्तिका या विवरणिका का तैयार करने की जिम्मेदारी भी परामर्शदाता की होती है।

इस प्रकार आप समझ गये होंगे कि परामर्शदाता के पास अनेकों महत्वपूर्ण सूचनाओं का संग्रह होता है जिन्हें वह आवश्यकतानुसार प्रदान करता है। परामर्श की प्रक्रिया में सूचनाओं को एकत्रित करना तथा उनका उचित प्रयोग करना बहुत महत्वपूर्ण चरण है ।

2.4.5. समुदाय के साथ सहयोग सम्बन्धी कार्य

परामर्श एवम् मार्गदर्शन कार्यक्रम तभी सफल हो सकते है जबकि इनमें समुदाय एवं समाज के सदस्यों का सहयोग ठीक रूप में प्राप्त किया जा सके। इस बात से आप भी सहमत होंगे। इस हेतु परामर्शदाता के निम्न उत्तरदायित्व है

1. परामर्शदाता को समुदाय या समाज विशेष की आवश्यकताओं तथा प्रकृति से पूरी तरह परिचित रहना चाहिए। विद्यार्थियों के व्यवहारों के बारे में सही निष्कर्ष तक पहुंचाने में उसके समुदाय की प्रकृति व संस्कृति जानना बहुत जरूरी है।
2. विद्यार्थियों को नौकरी के अवसरों, विभिन्न रोजगारों आदि के बारे में जानकारी उपलब्ध कराने हेतु, विभिन्न नियोक्ताओं से व्यक्तिगत संपर्क रखना।

3. विद्यार्थियों के परिवेश से संबंधित समायोजन संबंधी समस्याओं के हल हेतु समुदाय एवं समाज का सहयोग प्राप्त करना।
4. विद्यार्थियों की शैक्षिक एवं व्यावसायकि प्रगति हेतु उन्हें समुदाय एवं समाज के सदस्यों के पास संस्थाओं, व्यवसायिक प्रतिष्ठानों में ले जाकर वास्तविक अनुभव प्रदान करना।

आप जान गए होंगे कि एक विद्यार्थी शिक्षा पूरी करने के बाद समुदाय एवं समाज में ही सेवा हेतु जाता है इसलिए परामर्शदाता द्वारा समाज एवं समुदाय की आवश्यकताओं, अपेक्षाओं एवं प्रकृति को जानना बहुत जरूरी होता है। साथ ही साथ समुदाय व समाज से बेहतर तालमेल भी बनाए रखना जरूरी होता है।

2.4.6. मार्गदर्शन एवं परामर्श सेवाओं से सम्बन्धित अन्य विविध कार्य

मार्गदर्शन कार्यक्रम के अन्तर्गत विभिन्न सेवाओं का संगठन किया जाता है ताकि मार्गदर्शन कार्यक्रम सफल हो सके। इस सभी मार्गदर्शन सेवाओं के संगठन और आयोजन का कार्य परामर्शदाता ही करता है। इस प्रकार समन्वित क्रियाओं का कुछ रूप निम्न प्रकार है-

1. समय-समय पर मार्गदर्शन एवं परामर्श सम्बन्धी भाषण, सेमिनार, विचार गोष्ठी, बाद-विवाद प्रतियोगिताओं, कविगोष्ठियों, रंगमंच अभिन्यों, फिल्म, वीडियों स्लाइड आदि को दिखाने से सम्बन्धित कार्यक्रमों तथा प्रदर्शनी की आयोजन।
2. ओरियेन्टेशन सेवाओं के आयोजन सम्बन्धी विभिन्न प्रकार की क्रियायें जैसे-ओरियेन्टेशन डे या सप्ताह का आयोजन, प्रचार एवं प्रसार सामग्री का प्रकाशन, सूचना केन्द्र की स्थापना, कैरियर कान्फ्रेन्स का आयोजन, कैरियर एण्ड गाइडेंस क्लब की स्थापना परामर्शदाता के नेतृत्व में ही सफलतापूर्वक किया जा सकता है।
3. विद्यार्थियों को विभिन्न महत्वपूर्ण स्थानों, संस्थाओं कंपनियों का भ्रमण कराना।
4. विद्यार्थियों से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार के अभिलेख जैस-संचित अभिलेख पत्र आदि तैयार करना।
5. उपयुक्त मार्गदर्शन एवं परामर्श प्रदान करने हेतु उपयुक्त अनुसंधान कार्य भी परामर्शदाता कर सकता है तथा इन विषय क्षेत्रों पर अनुसंधान करने वालों की सहायता भी कर सकता है।
6. अनुवर्ती सेवाओं के माध्यम से वह किसी व्यवसाय में समायोजन संबंधी विद्यार्थियों की समस्याओं को हल करने हेतु विविध उपाय करना।

इस प्रकार आप समझ गये होंगे कि परामर्शदाता का कार्यक्षेत्र तथा उत्तरदायित्व का दायरा बहुत व्यापक है। यह विद्यार्थियों के शैक्षिक, व्यवसायिक तथा व्यक्तिगत प्रगति से जुड़ा है। विद्यालय के समस्त विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास तभी संभव है जब विद्यालय में परामर्शदाता और मार्गदर्शक के रूप में योग्य, कुशल व प्रशिक्षित व्यक्ति उपलब्ध हो अथवा अध्यापकों को ही कुछ विशेष प्रशिक्षण देकर इन उत्तरदायित्वों के वहन के लिए तैयार किया जाए।

अभ्यास प्रश्न

5. परामर्शदाता की विद्यार्थियों को परामर्श देने से सम्बन्धित क्या मुख्य जिम्मेदारियाँ है?
6. परामर्शदाता द्वारा माता-पिता तथा अभिभावक का सहयोग परामर्श एवं मार्गदर्शन हेतु क्यों आवश्यक है?
7. परामर्शदाता अध्यापको को किस सम्बन्ध में परामर्श एवं मार्गदशर्न प्रदान कर सकता है?
8. परामर्शदाता का समुदाय व समाज के साथ बेहतर तालमेल क्यों आवश्यक है ?

2.5 सारांश

इस इकाई के प्रथम भाग को पढ़ने के बाद आप अच्छे परामर्शदाता के व्यक्तित्व प्रशिक्षण एवं तैयारी तथा अनुभव से संबंधित गुणों जैसे- रूचियों में व्यापकता, सहयोग की भावना, विनम्र स्वभाव, दूरदर्शी, आकर्षक व्यक्तित्व, विश्वासपात्र, शैक्षिक उद्देश्यों, पाठ्यक्रमों व विधियों का ज्ञान, परामर्श एवं निर्देशन के सिद्वान्तों की समझ, परामर्श एवं निर्देशन सेवाओं के संगठन के विषय में पूर्ण जानकारी, विभिन्न व्यवसायों की जानकारी, परामर्शदाता के लिए निर्धारित शैक्षिक योग्यताओं को जान चुके हैं। उसमें परामर्श एवम् निर्देशन सेवा का मूल्यांकन करने की योग्यता भी होनी चाहिए। इकाई के द्वितीय भाग को पढ़ने के बाद आप विद्यार्थियों, अध्यापकों, माता-पिता तथा अभिभावकों तथा समाज की परामर्शदाता से क्या अपेक्षाये है।

आप जान गये है तथा परामर्शदाता की मुख्य जिम्में दारियों-विद्यार्थियों की मनोवैज्ञानिक विशेषताओं को जनना, उन्हें स्वयं निर्णय लेने में सक्षम बनाना, परामर्श के सफल आयोजन हेतु माता-पिता से अपेक्षित सहयोग प्राप्त करना, उन्हें बालकों की प्रगति से अवगत कराना, अध्यापक की शिक्षण कला में दक्ष हो इस हेतु परामर्श देना, विशेष बालकों, कुसमायोजित बालको के शिक्षण मे शिक्षक की मदद करना, विभिन्न सूचनाओं को आवश्यकता पड़ने पर उपलब्ध कराना, सूचना सेवाओं का संगठन एवं आयोजन करना, विद्यार्थियों की शैक्षिक एंव व्यवसायिक प्रगति एवं विकास हेतु हर संभव प्रयास करना, से भी परिचित हो गये है।

2.6 शब्दावली

1. **परामर्शदाता-** ऐसा व्यक्ति जो विद्याथियों को स्वयं के बारे में निर्णय लेने में सहायाता प्रदान करता है तथा मार्गदर्शन प्रक्रिया का संचालक होता है।

2. **परामर्शदाता के गुण-** परामर्शदाता की ऐसी अच्छी विशेषताएं है जो उसे मार्गदर्शन एवं परामर्श प्रक्रिया में सफलता प्रदान कर सके।
3. **परामर्शदाता की भूमिका-** परामर्शदाता द्वारा किये गये ऐसे समस्त कार्य जो मार्गदर्शन एवं परामर्श प्रक्रिया की सफलता हेतु अपेक्षित है।

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. अच्छे परामर्शदाता के व्यक्तित्व में निम्नलिखित विशेषतायें होनी चाहिए-
   i. रूचियों में व्यापकता होजिससे वह बालकों को उनकी रुचि को पहचानने मे सहायता कर सके।
   ii. उसमें सहयोग की भावना हो ताकि वह विद्यालय के अन्य सभी सदस्यों की समस्याओं को समझकर उन्हें समस्या हल करने में मदद कर सके
   iii. विनम्रता तथा वातावरण को खुशनुमा बनाने की कला हो। उसको मधुर वाणी में ही सबसे वार्तालाप करना चाहिए जिससे विद्यार्थियों को उससे घुलने मिलने में मदद मिल सके
   iv. उसकी सोच दूरदर्शी हो जिससे वह विद्यार्थियों एवं शिक्षकों के भविष्य को सँवारने का काम कर सके जिससे विद्यालय के लक्ष्य प्राप्त हो सकें ।
   v. आकर्षक व्यक्तित्व हो जिससे हर विद्यालय का व्यक्ति अपनी समस्या के समाधान हेतु बिना हिचकिचाहट के उसकी तरफ आकर्षित हो सके।
   vi. विश्वासपात्र बनने की कला हो। जिसकी सहायता से वह किसी का विश्वास हासिल कर उससे घुल मिल कर समस्या की तह तक पहुँच सके
   vii. निरीक्षण योग्यता हो। जिससे वह विद्यार्थियों के बारे मे बहुत सी जानकारी केवल निरीक्षण से ही कर सके
2. परामर्शदाता को निम्नलिखित विषयों में प्रशिक्षण देना जरूरी है-
   i. शैक्षिक उद्देश्यों, पाठ्यक्रमों तथा विधियों का ज्ञान ।
   ii. विभिन्न व्यवसायों के विषय में विभिन्न गतिविधियों का ज्ञान।
   iii. परामर्श एवं मार्गदर्शन के सिद्वान्तों का ज्ञान।
   iv. विद्यालयों में निर्देशन सेवाओं के गठन के विषय में ज्ञान।
3. परामर्शदाता के लिए निम्नलिखित योग्यतायें होना चाहिए:-
   (1) एम0ए0 (मनोविज्ञान या शिक्षा) या बी0 ए0
   एम0एड0 (निर्देशन एवं परामर्श सहित)
   (2) शिक्षा निर्देशन में डिप्लोमा कोर्स

4. परामर्शदाता को निर्देशन कार्यक्रम में दक्षता हासिल होनी चाहिए जिससे उसे विद्यार्थियों की समस्या को समझने, उन समस्याओ का समाधान करने तथा उनके साथ मधुर संबंध स्थापित करने में सहायता मिलती है। परामर्शदाता को हर प्रकार की सूचनाओं की व्याख्या करने में निपुणता होनी चाहिए। मूल्यांकन करने की योग्यता भी होना चाहिए।
5. विद्यार्थियों के लिए परामर्शदाता की मुख्य जिम्मेदारियाँ:-
   i. विद्यार्थियों से आत्मीय एवं घनिष्ठ सम्बन्ध बनाकर विद्यार्थियेां की मनोवैज्ञानिक गुणों तथा विशेषताओं को जानने हेतु विभिन्न प्रकार के परीक्षणों जैसे-बुद्धि परीक्षणों, उपलब्धि परीक्षण, रूचिपरीक्षण, व्यक्तित्व परीक्षण, अभिरूचि परीक्षण का उपयोग करना।
   ii. विद्यार्थियों को इस योग्य बनाना कि वे अपनी समस्याओं के कारणों को ठीक प्रकार से समझकर अपने सकारात्मक पक्षों को पहचानकर समस्या का निदान स्वयं करने में सक्षम हो सकें।
6. परामर्श एवं मार्गदर्शन की सफलता के लिए बालक के बारे में विभिन्न प्रकार की सूचनायें होना बहुत आवश्यक है। मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का स्वयं आयोजन करने के अलावा भी बालक के व्यवहार, योग्यता, क्षमता, रूचियों, व्यक्तिगत गुणों एवं आदतों के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण सूचनायें माता-पिता तथा अभिभावक ही प्रदान कर सकते है। इसलिए उनका सहयोग परामर्श एवम् मार्गदर्शन प्रक्रिया में अत्यन्त जरूरी है।
7. कक्षा के कुसमायोजित, विशेष बालकों एवं पिछड़े बालकों को पढ़ाने में शिक्षक को अत्यधिक कठिनाई का सामना करना पड़ता है इस सम्बन्ध में परामर्शदाता उन्हें उचित परामर्श एवं मार्गदर्शन प्रदान कर समायोजनात्मक एवं उपचारात्मक शिक्षण के तरीकों से परिचित कराता है। परामर्शदाता विभिन्न मनोवैज्ञानिक परीक्षणों को प्रशासित कर विद्यार्थियों की व्यक्तित्व विशेषताओं से शिक्षक को परिचित कराता है जिससे वह शिक्षण प्रक्रिया को और प्रभावी बनाने में सफल होता है।
8. परामर्श एवं मार्गदर्शन तभी सफल हो सकता है जब इसमें समुदाय एवं समाज का सहयोग भी आवश्यकतानुसार हो। विद्यार्थियों की शैक्षिक एवं व्यावसायिक प्रगति हेतु विभिन्न शिक्षण संस्थानों, व्यावसायिक प्रतिष्ठानों, सरकारी उपक्रमों के साथ परामर्शदाता को संपर्क रखना जरूरी होता है। विद्यार्थियों को वास्तविक औद्योगिक अनुभव प्रदान करने हेतु, किसी अच्छे शिक्षण संस्थान की कार्य संस्कृति से परिचित कराने हेतु उन्हें क्षेत्र में ले जाना पड़ता है। या अनुभवी विशेषज्ञ व्यक्तियों को विद्यालय में बुलाकर उनका व्याख्यान तथा वार्तालाप-सत्र आयोजित किया जाता है। विद्यार्थी शिक्षा के उपरान्त समुदाय या समाज में जीविकोपार्जन हेतु जाता हे। इसलिए समुदाय व समाज की प्रकृति

व अपेक्षाओं के अनुरूप ही बालको को तैयार करना ही विद्यालय का लक्ष्य है इसे पूरा करने में परामर्शदाता महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

2.8 संदर्भ ग्रन्थ

1. ओबेराय, डॉ0 सुरेश चन्द्र (2006), शैक्षिक तथा व्यवसायिक निर्देशन एवं परामर्श, इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ,
2. मंगल, डॉ0 एस0 के0 एवं श्रीमती श्रुभ्रा (2003), मार्गदर्शन एवं परामर्श, आर्य बुक डिपो, मेरठ
3. गुप्ता, एस.पी. (2008), उच्चत्तर शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद
4. सिंह, ए. के. (2010), शिक्षा मनोविज्ञान, भारती भवन पब्लिशर्स, पटना
5. जायसवाल, एस.(2008), शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
6. Bhatnagar, A & Gupta, N (1999).Guidance and Counselling: A theoretical Approach(Ed), New Delhi: Vikash Publishing House.
7. Das, B.N. (2010). Career Guidance and Counselling. Agra: Vinod Pustak Mandir
8. Kochhar, S.K, (1980) Guidance and Councelling, New Delhi: Sterling Publishers.
9. Mathur, S.S.(2012).Fundamentals of Guidance and Counselling.Agra: Vinod Pustak Mandir
10. NCERT(2008).Introduction to Guidance,Module-1, New Delhi: National Council Of Educational Research and Training,
11. NCERT(2008).Career Information in Guidance,Module-5 and 12, New Delhi: National Council Of Educational Research and Training,
12. Pandey, K.P.(2009).Educationaland Vocational Guidance in India. Varanasi: Vishvidyalaya Prakashan.
13. Sharma, N.R. (2012). Educationaland and Vocational Guidance. Agra: Vinod Pustak Mandir

2.9 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. Agarwal, J.C, (1985), Educational Vocational Guidance and Counseling, Doaba House, New Delhi.

- Agrawal, R (2006). Educational, Vocational Guidance and Counselling, New Delhi, Sipra Publication.
- Bhatnagar, A & Gupta, N (1999).Guidance and Counselling: A theoretical Approach(Ed), New Delhi, Vikash Publishing House.
- Kapunan, R.R. (2004). Fundamentals of Guidance and Counselling, Rex Printing Company, Inc., Quezon City.
- Kinra, A.K. (2008). Guidance and Counselling, Dorling Kindersley (India) Pvt. Ltd. New Delhi.
- Jones, A.J.(19510.Principles of Guidance and Pupil Personnel work,New York,MiGraw Hill.
- Mendoza, E. (2003), Guidance and Counselling Today. Rex Book Store (RBSI), Manila.

1. Nanda, S.K and Sharma S, (1992) Fundamentals of Guidance, Chandigarh.

Websites & E-links:-

- www.books.google.co.in
- www.education.go.ug/guidance
- http://encyclopedia2.thefreedictionary.com
- www.careersteer.com
- www.lotsofessays.com
- www.careerstrides.com
- www.wikipedia.org/wiki

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. परामर्शदाता कौन होते है? स्कूल में उनकी भूमिका के ऊपर प्रकाश डालिए?
2. स्कूल में परामर्शदाता से सभी की क्या-क्या अपेक्षाएँ होती है? इन्हें पूरा करने हेतु परामर्शदाता को क्या उत्तरादायित्व निभाने होते है ? स्पष्ट कीजिए?
3. परामर्शदाता में क्या गुण होने चाहिए? विस्तार से वर्णन कीजिए?

इकाई–3 विशेष आवश्यकताओं वाले बालकों के परामर्श व निर्देशन में शिक्षक की भूमिका

3.1 प्रस्तावना
3.2उद्देश्य
3.3विशिष्ट बालकों की समस्याऐं एवं आवश्यकताएं
3.4विशेष आवश्यकता वाले बालकों के परामर्श व निर्देशन में शिक्षक की भूमिका
3.5सारांश
3.6शब्दावली
3.7अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.8संदर्भ ग्रन्थ
3.9सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

निर्देशन एक प्रकार की मार्गदर्शन प्रक्रिया है। निर्देशन की सहायता से विद्यार्थियों को अपने शैक्षिक तथा व्यावसायिक प्रक्रिया में सहायता प्राप्त होती है। अतः हम कह सकते हैं कि निर्देशन एक महत्वपूर्ण तथा आवश्यकता की दृष्टि से विद्यार्थियों के लिए अति उपयोगी है। निर्देशन की सहायता से अध्यापक भी अपने विद्यार्थियों की मदद प्रत्येक क्षेत्र में कर सकते हैं। व्यक्तिक विभिन्नता की दृष्टि से देखा जाए तो प्रत्येक बालक की कुछ विशेषता होती है। प्रत्येक बालक का अपनी अभिरूचि, अभिवृत्ति होती है। अतः हम कह सकते हैं कि प्रत्येक बालक में कुछ न कुछ विशिष्टता होती है। हम देखते हैं कि सभी बालक अलग-अलग अधिगम योग्यताओं वाले होते हैं। इन बालकों में कुछ तेजी से सीखते हैं तथा कुछ धीरे-धीरे सीखते हैं। कुछ बालकों को सीखने में समस्याएं आती है तथा बच्चे आसानी से सीख लेते हैं। अध्ययन-अध्यापन में प्रत्येक अध्यापक को प्रतिदिन इन समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इन समस्याओं से निपटने के लिए एक अध्यापक को निर्देशन प्रक्रिया का भली प्रकार ज्ञान होना आवश्यक होता है। अध्यापक के लिए प्रत्येक बालक एक जैसा है तथा उन्हें सीखने और कार्य करने में सहायता की आवश्यकता होती है। निर्देशन विषय का ज्ञान ही एक शिक्षक को इन विशिष्ट बालकों की समस्याओं एवं आवश्यकताओं से परिचित कराता है। इस इकाई में विशिष्ट बालकों की समस्याओं

तथा आवश्यकताओं और अध्यापक के नाते इन समस्याओं वाले विद्यार्थियों का निर्देशन कैसे कर सकते हैं, के बारे में बताने का प्रयास किया गया है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

1. विशेष समस्याओं वाले बच्चों की समस्यायों से अवगत हो पायेंगे।
2. विशेष समस्याओं वाले बच्चों हेतु निर्देशन की भूमिका को बता पायेंगे।
3. विशिष्ट बालकों की सहायता हेतु अध्यापक की भूमिका को स्पष्ट कर पायेंगे ।
4. प्रतिभाशाली तथा सृजनात्मक बालकों का मार्गदशन किस प्रकार किया जाए इस पर चर्चा कर सकेंगे।
5. सृजनात्मक एवं प्रतिभाशाली बालकों की विशेषता को सूचीबद्ध कर सकेंगे।
6. प्रतिभाशाली तथा सृजनात्मक बालकों में अन्तर स्पष्ट कर सकेंगे।
7. विशेष बालकों के लिए किस प्रकार की शिक्षा एवं व्यावसायिक चुनौतियाँ होती है इसका वर्णन कर सकेंगे।

3.3 विशिष्ट बालकों की समस्याऐं एवं आवश्यकताएं

विशिष्ट बालक से आशय उत्तम या अत्याधिक प्रतिभा सम्पन्न छात्र से नहीं है। विशिष्ट बालक सामान्य से उच्च एवं निम्न दोनों ही श्रेणियों के हो सकते हैं। विशिष्ट बालक मानसिक, शारीरिक तथा सामाजिक गुणों में सामान्य बालकों से भिन्न होता है। ऐसे बालकों के लिए कुछ अतिरिक्त अनुदेशन तथा मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है तथा जिसकी सहायता से ऐसी दशा में उनका सामर्थ्य का सामान्य बालकों की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित है -

विशिष्ट बालकों के लक्षण, गुण, स्वरूप सामान्य बालकों से भिन्न होते हैं। एक विशिष्ट बालक वह है जो सामान्य शिक्षा कक्ष तथा सामान्य शिक्षा कार्यक्रमों से पूर्णतया लाभान्वित नहीं हो सकता क्योंकि उसके विकास की सामर्थ्य अधिक होती है।

एक विशिष्ट बालक शारीरिक मानसिक, सामाजिक, भावनात्मक तथा शैक्षणिक उपलब्धियों जैसी सभी धाराओं में सम्मिलित होता है।

विशिष्ट बालक की अधिकतम सामर्थ्य के विकास के लिये उसे स्कूल की कार्यप्रणाली तथा उसके साथ किये जाने वाले व्यवहार में परिवर्तन की आवश्यकता होती है।

एक विशिष्ट बालक शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक सामाजिक आधार पर सामान्य बालक से बिल्कुल हट के होता है। सामान्य बालक की अपेक्षा उसका विकास तीव्र गति से होता है।

प्रत्येक विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने के लिए अनेक बालक आते हैं। इनके अलावा कुछ ऐसे बालक भी आते हैं, जिनकी अपनी कुछ शारीरिक और मानसिक विशेषताएं होती हैं। इनमें कुछ प्रतिभाशाली कुछ मन्दबुद्धि, कुछ पिछड़े हुए और कुछ शारीरिक दोषों वाले होते हैं। इनको विशिष्ट बालकों की संज्ञा दी जाती है। जो निम्न प्रकार के हैं -

(1) प्रतिभाशाली बालक (2) सृजनात्मक बालक (3) पिछड़े बालक (4) मन्द बुद्धि बालक
(5) विकलांग बालक (6) जटिल अथवा समस्यात्मक (7) श्रवण बाधित बालक
(8) अधिगम असमर्थी बालक (9) अस्थि बाधित बालक (10) बहुविकारों से पीड़ित बालक
(11) दृष्टि बाधिक बालक (12) समाज में असुविधात्मक बालक (13) विशिष्ट स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्यायुक्त बालक (14) वाणी बाधित बालक (15) संवेगात्मक रूप से विक्षिप्त बालक
(16) अपराधी बालक

विशिष्ट बालको की समस्याऐं

अधिकांश बच्चों को कभी-न-कभी व्यवहारगत समस्याएँ होती है। व्यवहारगत समस्याएँ बालक की अंतर्दशाओं या प्रायः ध्यान में न आने वाले बाह्य दबाओं या दूसरों द्वारा नहीं समझे जाने वाली बातों से उत्पन्न होती है। व्यवहारगत समस्याएँ पलायन से लेकर उत्तेजित होने विरोध शत्रुता प्रकट करने एवं अत्यन्त आक्रामक रूख अपना लेने के रूप में प्रकट होती है। कक्षा में विद्यार्थी व्यवहारगत समस्याओं का सामना अपने ढंग से करने का प्रयास करते हैं। जो कभी-कभी दूसरों के लिए दुःखदायी हो जाता है।

जिस प्रकार मानसिक रूप में बालक धीरे-धीरे सीखते हैं। उसी प्रकार अन्य विशिष्ट बालक व्यवहारगत समस्याओं के कारण अपने विकास और अधिगम में गंभीर बाधा महसूस कर सकते हैं। अध्यापकों व माता पिता को अपने बच्चों की इस प्रकार की समस्याओं से निपटने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। ऐसी समस्याएं प्रायः अधिगम प्रक्रिया में बाधा डालती है। अतः एक अध्यापक के लिए अपने विद्यार्थियों की प्रत्यक्ष दिखाई पड़ने वाली व्यवहारगत समस्याओं के कारणों को समझना जरूरी है, अन्यथा वह ऐसे विद्यार्थियों के साथ ऐसे तरीके से व्यवहार कर सकता है जिसके परिणाम गंभीर हो सकते हैं। व्यवहारगत समस्याओं से ग्रस्त विद्यार्थी अपने अध्यापकों के लिए प्रायः अत्यधिक कुंठित करने वाली समस्याएं या लाभदायक चुनौतियां खड़ी कर देते हैं। इस प्रकार की विद्यार्थियों की शारीरिक आवश्यकताओं मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं एवं शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति भली प्रकार समय पर होना चाहिए। विशिष्ट बालकों की समस्याएँ दो अवस्थाओं में होती है।

- □विशिष्ट बच्चों की समस्याएं
- □विशिष्ट किशोरों की समस्याएं

विशिष्ट बच्चों की समस्याएं

बच्चों द्वारा अनुभव की जाने वाली कुछ समस्याएं निम्न होती हैं जैसे अत्यधिक शर्मीलापन, डरावनापन, आक्रामक व्यवहार, ध्यान आकर्षित करना, अति फुर्तीलापन, अत्यधिक निर्भरता, दिवास्वप्न देखना, पड़े रहना, धोखा देना और चोरी करना तथा शारीरिक विकलांग रूप से बालक के सामाजिक समायोजन में उत्पन्न कठिनाईयाँ उपहास के डर से सामान्य बच्चों के साथ खेल-कूद में सम्मिलित न होना, एकाकीपन आदि है। इन समस्याओं में से कई समस्याएं अध्यापक, माता-पिता द्वारा 'पुरस्कार' का प्रयोग करके, जैसे - प्रशंसा, खिलाना तथा खिलौन का प्रयोग करके हल की जा सकती है। माता-पिता और अध्यापकों को इस बात के लिए कि वे ऐसी समस्याओं वाले बालकों को इन पुरस्कारों को प्राप्त करने के लिए उपयुक्त व्यवहार में लगाने हेतु प्रोत्साहित करें प्रशिक्षित किया जा सकता है तथा विकलांग बच्चों के समस्याओं को जन्म देने वाली सामाजिक स्थितियों को परिवर्तित करना तथा लोगों को विकलांग बच्चों के प्रति अपने व्यवहार में परिमार्जन तथा साथ ही साथ विचारों में परिवर्तन हेतु समझ पैदा करनी चाहिए। प्रत्येक मनुष्य की कुछ मानवीय आवश्यकताएँ होती है। जो इस प्रकार है-

i. शारीरिक आवश्यकताएँ
ii. सुरक्षात्मक आवश्यकताएँ
iii. प्यार और अपनत्व
iv. आत्म सम्मान की आकांक्षा
v. आत्मसिद्धी

अतः इस प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति होने पर विशिष्ट बालकों के समायोजन में किसी प्रकार की समस्या उत्पन्न नहीं होगी।

विशिष्ट किशोरों की समस्याएँ

किशोरावस्था की मुख्य पहचान है, प्रायः स्वतंत्रता के लिए भरपूर प्रयास करना और वयस्क सत्ता से छुटकारा पाने हेतु बगावत करना। माता-पिता, अभिभावकों तथा विद्यालयीन अधिकारियों से खटपट, नशीले पदार्थों का सेवन, कर्तव्य पलायन, चोरी और लैंगिक दुराचार किशोरों की सामान्य समस्याएँ है। ऐसे अनिच्छुक किशोर अपनी समस्याओं के लिए दूसरों को दोष दे सकते हैं और उनमें अपने अपने व्यवहार को बदलने में अभिप्रेरणा की कमी पाई जाती है।

विशिष्ट बालकों की आवश्यकताएँ

सामान्यतः देखा जाये तो विद्यार्थियों को ऐसी कई शारीरिक, मनोवैज्ञानिक एवं शैक्षिक आवश्यकताएँ है जो उनकी वृद्धि एवं विकास के लिए आवश्यक है। ये आवश्यकताएँ निम्नलिखित है-

शारीरिक आवश्यकता

- उचित भोजन व कपड़े
- दर्द व बीमारी से बचाव
- खेलने के लिए समय

मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएं

- व्यक्ति के रूप में स्वीकरण
- संवेगात्मक संतुष्टि
- सतत् पुनः विश्वास
- स्नेह
- भावात्मक अनुक्रियाओं को नियंत्रित करने में सहायता
- दूसरे व्यक्तियों के साथ कैसा व्यवहार किया जाए इसे सीखने के लिये सहायता प्रदान करना।

शैक्षिक आवश्यकताएं

- ऐसी शिक्षा जो डर पर आधारित न हो
- अध्ययन में सहायता
- विद्यालय में समझपूर्ण और गरमजोशी भरा वातावरण
- उपलब्धि की भावना
- जीवन की चुनौतियों का मुकाबला करने के लिए शिक्षा
- कुछ न कुछ नया सीखने के लिए प्रोत्साहन ये सभी आवश्यकताएं परस्पर संबंधित है। ये सभी आवश्यकताएं एक-दूसरी को प्रभावित करती है और बढ़ रहे बालक पर अपनी छाप छोड़ती है।
- पिछड़े हुए एवं प्रतिभाशाली बालकों के उत्थान हेतु विशेष सुविधाओं तथा साधनों की आवश्यकता है।

  प्रतिभाशाली बालकों को सामाजिक तथा वैयक्तिक आवश्यकताओं को ग्रहण करने के लिये अतिरिक्त सुविधाओं तथा साधनों की आवश्यकता होती है। अतः ऐसी सुविधायें प्रतिभाशाली बालकों को उनकी कार्य करने की क्षमता से अवगत कराती है, तथा शारीरिक रूप से बाधित बालकों में उनके दोषों को कम करने का प्रयास करती है।

  विद्यालय में विशिष्ट कक्षायें बाधित बालकों के लिये आवश्यक है क्यों कि उनकी शिक्षा के लिये विशिष्ट विधियों तथा प्रविधियों की आवश्यकता होती है।

सामान्यतः विलक्षण बालक अन्य सामान्य बालकों की अपेक्षा अधिक संवदेन शील होते है। उनकी सोचने की क्षमता अधिक तथा तीव्र होती है। वे कार्य के प्रति सावधान होते हैं, इसलिये उनके शिक्षण में विशेष विधियों व प्रविधियों की आवश्यकता होती है।

प्रतिभाशाली बालकों का बुद्धि स्तर सामान्य बालकों की अपेक्षा उँचा होता है। इसलिये प्रतिभाशाली बालकों की सामान्य बालकों के साथ समायोजित करने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

विशिष्ट बालकों का महत्व सामान्य कक्षा मे आने वाली कठिनाईयों का समाधान खोजने द्वारा समझा जा सकता है। सामान्य कक्षा में अपंग तथा सामान्य अन्य विभिन्न श्रेणी के बालक होते है। वे शारीरिक रूप से बाधित और साधारण या प्रतिभाशाली बालकों के लिये अध्यापकों को ऐसी विधियां अपनानी पड़ती हैं जिससे उपरोक्त विभिन्न बालकों को शिक्षा देते समय कक्षा में अध्यापक को कुछ परेशानियों का सामना न करना पड़े। क्योंकि विद्यार्थियों को शिक्षक द्वारा दिया जाने वाला अनुदेशन समझने में समस्या आती है। कुछ विद्यार्थी अनुदेशन की सार्थकता के माप को कम समझते हैं ऐसी स्थिति में विशिष्ट कक्षाओं की आवश्यकता को गम्भीरता से समझा जाता है।

प्रयोगात्मक आँकड़े प्रकट करते है कि सामान्य शिक्षण संस्थाओं में प्रतिभाशाली बालकों के साथ सामाजिक कुप्रबन्ध उग्र रूप् में पाया जाता है ऐसी परिस्थितियेां में उनका व्यक्तिगत व्यवहार स्वीकार करने योग्य नहीं होता है क्योंकि वे स्वयं को उद्धण्डता के कार्यो में शामिल कर लेते है।

लगभग 5 प्रतिशत शारीरिक रूप से बाधित बालक विशिष्ट शिक्षा केन्द्रों में शिक्षा ग्रहण करते है। तथा उन्हें विभिन्न कार्य क्षेत्रो में शिक्षा दी जाती है। लेकिन अधिकांश ऐसी शिक्षण संस्थायें महानगरों य नगरों में स्थिति है। ऐसी शिक्षण संस्थाओं में ग्रामीण क्षेत्र के बालक शिक्षा ग्रहण करने नहीं जा पाते है। अतः इन क्षेत्रों में शिक्षा केन्द्रों के अति आवश्यकता है। इस प्रकार आप जान गए होंगे कि विशिष्ट बालकों की क्या-2 समस्याएं एवं क्या-क्या आवश्यकताएं होती है। साथ ही साथ आप यह भी समझ गए होंगे कि इन बालकों की आवश्यकताओं एवं समस्याओं को क्यों और किस प्रकार ध्यान में रखना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

1. विशिष्ट बालक कितने प्रकार के होते हैं?
2. सृजनात्मक बालक किसे कहते हैं?
3. विशिष्ट बालक की कोई दो समस्याऐ बताइए?

3.4 विशेष आवश्यकता बाले बालकों के परामर्श व निर्देशन में शिक्षक की भूमिका

विशिष्ट शिक्षा तथा सामान्य शिक्षा के उद्देश्य समान होते है-जैसे बालकों को उपयुक्त शिक्षा द्वारा मानवीय संसाधनों का उत्थान, देश का विकास, समाज का पुर्नगठन नागरिक विकास, व्यवसायिक कार्यकुशलता आदि प्रदान करना इन उद्देश्यों के अतिरिक्त विशेष शिक्षक की और महत्वपूर्ण जिम्मेदारियां होती है। जैसे-

- शारीरिक दोष युक्त बालकों की विशेष आवश्यकताओं का पूर्ण पहचान तथा निर्धारण करना।
- शारीरिक दोष की दशा में उससे पहले बालक कितनी गम्भीर स्थिति को प्राप्त हो उनके राकथाम के लिये पहले से ही उपाय करना। बालकों के सीखने की समस्याओं को ध्यान में रखते हुए कार्य करने की नवीन विधियों द्वारा बालकों को शिक्षा देना।
- शारीरिक रूप से बाधित बालकों की शिक्षण समस्याओं की जानकारी देना तथा सुधार हेतु सामूहिक संगठन तैयार करना।
- शिक्षा की राष्ट्रीय नीति (1986-92) में स्वयं एवं जीवन यापन के आव्यूहों का क्रम बद्धता से निर्धारण करना।
- शारीरिक बाधित बालकों के माता-पिताओं को निपुणता तथा कार्यकुशलताओं के बारे में समझाना तथा बालकों की उत्पन्न कमियों के बारे में सुरक्षा तथा रोकथाम के उपाय करना।
- शारीरिक रूप से बाधित बालकों का पुर्नवास कराना।
- विशिष्ट बालकों के शैक्षिक चयन में अध्यापक के मार्गदर्शन का महत्वपूर्ण भूमिका होती है। एक अध्यापक विशिष्ट बालक के अभिरूचि तथा अभिक्षमता के आधार पर उसके शैक्षिक क्षेत्र में विषय चयन में सहायता प्रदान करता है।
- विशिष्ट बालकों के व्यवसायिक चयन में शिक्षक के मार्गदर्शन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। शिक्षक बालकों की रूचि अनुसार तथा उपयोगी व्यवसायिक क्षेत्रों की जानकारी विशिष्ट बालकों को देते है। जिसकी सहायता से वो अपने लिये उपयोगी व्यवसाय की चयन करते हैं।

इस प्रकार आप समझ गए होंगे कि एक शिक्षक के रूप मे विशेष आवश्यकता वाले बालकों की किस प्रकार मदद की जा सकती है ।

अभ्यास प्रश्न

4. विशिष्ट बालक की सहायता एक अध्यापक किन-किन क्षेत्रों में करता है ?

5. विशेष आवश्यकता वाले बालक को परामर्श व निर्देशन करने में एक शिक्षक की कोई दो मुख्य भूमिका बातइए?

3.5 सारांश

इस इकाई के अर्न्तगत विशिष्ट बालकों को किन-किन समस्याओं से जूझना पड़ता है तथा इन समस्याओं के सामाधान हेतु इन बालकों की क्या-क्या आवश्यकताएं होती है इस विषय में समझाया गया है। साथ ही साथ प्रस्तुत इकाई में इन विशेष आवश्यकता वाले बालकों की सहायता शिक्षक किस प्रकार करता है इसका वर्णन किया गया है अर्थात शिक्षक किस प्रकार एक मार्गदर्शक बनकर विशेष बालकों के शैक्षिक तथा व्यावसायिक पृष्ठभूमि को उन्नत बनाने हेतु सुझाव अथवा सहायता प्रदान करता है। विशेष बालकों के अन्तर्गत आने वाले प्रतिभाशाली एवं सृजनात्मक बालकों का मार्गदर्शन शिक्षक किस प्रकार करता है, इसका वर्णन किया गया है। प्रस्तुत इकाई में विशेष बालक की अवधारणा से परिचित कराया गया है। इस इकाई में विशेष बालक, उनकी समस्याऐं , आवश्यकताएं, उनकी सहायाता में शिक्षक की भूमिका सृजनात्मक एवं प्रतिभाशाली बालकों पर केन्द्रित करके महत्वपूर्ण चर्चा की गई है।

3.6 शब्दावली

1. **विशिष्ट बालक-** विशिष्ट बालक मानसिक, शारीरिक तथा सामाजिक गुणों में सामान्य बालक से भिन्न होता है।उसकी भिन्नता कुछ ऐसी सीमा तक होती है कि उसे स्कूल के सामान्य कार्यों में विशिष्ट शिक्षा सेवाओं में परिवर्तन की आवश्यकता होती है । ऐसे बालकों के लिए कुछ अतिरिक्त अनुदेशन भी चाहिए ऐसी दशा में उनका सामर्थ्य का विकास सामान्य बालकों की अपेक्षा अधिक हो सकता है । (क्रिक,1962)
2. **प्रतिभाशाली बालक**- प्रतिभाशाली बालक जिनकी बुद्धिलब्धि(आई.क्यू.) 140 से ऊपर होती है तथा ये बच्चे कम समय में किसी भी कम को सीखते हैं या करते हैं ।
3. **सृजनात्मक बालक** – ऐसे बालक जो किसी नवीन वस्तु का निर्माण करने व जीवन में अभिनव व्यवहार करने की योग्यता रखते हैं उन्हें सामान्य बालकों से पृथक सृजनात्मक बालक कहते हैं।
4. **श्रवणबाधित बालक** - श्रवण बाधित बालक ऐसे बालक हैं जिनकी सुनने की क्षमता नष्ट हो जाती है तथा बोलने और भाषा में परेशानी का सामना करते हैं ।
5. **दृष्टिबाधित बालक-** दृष्टिबाधित बालक वे बालक होते हैं जो ठीक प्रकार से देख पाने में असमर्थ होते हैं।

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. विशिष्ट बालकों के अन्तर्गत मुख्यतः सोलह प्रकार के बालक सम्मिलित होते है।
2. जो बालक किसी नवीन वस्तु का निर्माण करने व जीवन में अभिनव व्यवहार करने की योग्यता रखते है इन्हें सृजनात्मक बालक कहते हैं।
3. विशिष्ट बालकों को सर्वप्रथम सामाजिक समायोजन तथा शैक्षणिक समायोजन की समस्या होती है।
4. विशिष्ट बालक की सहायता शिक्षक व्यक्तिगत, शैक्षणिक तथा व्यवसायिक क्षेत्र में करता है।
5. विशेष आवश्यकता वाले बालक की सहायता शिक्षक, मार्गदर्शक तथा अभिभावक के रूप में करता है।
6. एक शिक्षक के अन्दर मृदुभाषिता, परिस्थितियों को समझने वाला समझदार तथा सही सुझाव देने का गुण आकर्षित करता है।

3.8 संदर्भ ग्रन्थ

1. ओबेराय, डॉ0 सुरेश चन्द्र (2006), शैक्षिक तथा व्यवसायिक निर्देशन एवं परामर्श, इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ,
2. मंगल, डॉ0 एस0 के0 एवं श्रीमती श्रुभ्रा (2003), मार्गदर्शन एवं परामर्श, आर्य बुक डिपो, मेरठ
3. गुप्ता, एस.पी. (2008), उच्चत्तर शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद
4. सिंह, ए. के. (2010), शिक्षा मनोविज्ञान, भारती भवन पब्लिशर्स, पटना
5. जायसवाल, एस.(2008), शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
6. Bhatnagar, A & Gupta, N (1999).Guidance and Counselling: A theoretical Approach(Ed), New Delhi: Vikash Publishing House.
7. Das, B.N. (2010). Career Guidance and Counselling. Agra: Vinod Pustak Mandir
8. Kochhar, S.K, (1980) Guidance and Councelling, New Delhi: Sterling Publishers.
9. Mathur, S.S.(2012).Fundamentals of Guidance and Counselling.Agra: Vinod Pustak Mandir
10. NCERT(2008).Introduction to Guidance,Module-1, New Delhi: National Council Of Educational Research and Training,
11. NCERT(2008).Career Information in Guidance,Module-5 and 12, New Delhi: National Council Of Educational Research and Training,

12. Pandey, K.P.(2009).Educationaland Vocational Guidance in India. Varanasi: Vishvidyalaya Prakashan.
13. Sharma, N.R. (2012). Educationaland and Vocational Guidance. Agra: Vinod Pustak Mandir

3.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

Books:-

1. Agarwal, J.C, (1985), Educational Vocational Guidance and Counseling, Doaba House, New Delhi.
2. Agrawal, R (2006). Educational, Vocational Guidance and Counselling, New Delhi, Sipra Publication.
3. Bhatnagar, A & Gupta, N (1999).Guidance and Counselling: A theoretical Approach(Ed), New Delhi, Vikash Publishing House.
4. Kapunan, R.R. (2004). Fundamentals of Guidance and Counselling, Rex Printing Company, Inc., Quezon City.
5. Kinra, A.K. (2008). Guidance and Counselling, Dorling Kindersley (India) Pvt. Ltd. New Delhi.
6. Jones, A.J.(19510.Principles of Guidance and Pupil Personnel work,New York,MiGraw Hill.
7. Mendoza, E. (2003), Guidance and Counselling Today. Rex Book Store (RBSI), Manila.
8. Nanda, S.K and Sharma S, (1992) Fundamentals of Guidance, Chandigarh.

Websites & E-links:-

2. www.books.google.co.in
3. www.education.go.ug/guidance
4. http://encyclopedia2.thefreedictionary.com
5. www.careersteer.com
6. www.lotsofessays.com
7. www.careerstrides.com
8. www.wikipedia.org/wiki

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. विशिष्ट बालक से आप क्या समझते है ? उनकी समस्याऐं एवं आवश्यकताएं बताइए?
2. विशिष्ट बालकों की सहायता में शिक्षक की क्या भूमिका है? तथा शिक्षक की भूमिका एक मार्गदर्शक के रूप् में भी बताइए ?
3. विशेष बालकों के अन्र्तगत कौन-कौन से बालक आते हैं ? सभी प्रकार के बालकों का विवरण दिजिए ?
4. सृजनात्मक तथा प्रतिभाशाली बालक से आप क्या समझते हैं ? उनमें अन्तर स्पष्ट कीजिये?

इकाई 4 – स्व की अवधारणा, भावना, स्व में वृद्धि और अभिप्रेरणा की भूमिका

4.1प्रस्तावना
4.2उद्देश्य
4.3समायोजन के प्रकार
4.3.1 समायोजन के अन्य प्रकार
4.4समायोजन के मनोवैज्ञानिक आधार (रक्षा युक्तियां)
4.5समायोजन में प्रेरणा का योगदान
4.5.1 प्रेरणा एवं व्यवहार
4.5.2 शारीरिक प्रेरणायें
4.5.3 मनोवैज्ञानिक प्रेरणायें
4.5.4 प्रेरणाओं का सामाजिक स्तर
4.6प्रत्यक्षीकरण
4.6.1 समायोजन में प्रत्यक्षीकरण का महत्व
4.7सारांश
4.8सन्दर्भ ग्रन्थ
4.9निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

इस व्याप्त जगत में अनेकों जीवों और अजीवों का अस्तित्व है। प्रत्येक जीव या अजीव अपने अस्तित्व को बनाएं रखते हुए अपने विकास के चरमोत्कर्ष की ओर अग्रसर रहता है। विकास क्रम की प्रक्रिया प्रत्येक जीव या अजीव में अपनी-अपनी विशिष्टता के अनुरूप चलती रहती है। दृश्यमान जगत में व्याप्त जीव या अजीव में विकास के संदर्भ में मानव को सर्वोच्च एवं सर्वोत्तम माना जाता है। इसका कारण यह माना जाता है कि मानव में चिंतन एवं विवेक नामक शक्तियां व्याप्त रहती है जो उन्हें औरों से श्रेष्ट एवं बेहतर बनाती है। विकास की अविरल धारा में अन्यों के समान मानव भी निरन्तर सतत रूप से गतिमान रहता है किन्तु मानव विकास के सभी परिप्रेक्ष्यों का मूल्यांकन स्वयं या स्व या आत्मन

को केन्द्र बिन्दु में रखते हुए करता है। स्व या आत्मन की व्याख्या विभिन्न वैचारिक अनुक्षेत्रों में अलग – अलग प्रकार से की गई है। यहाँ पर सभी का उल्लेख कर पाना संभव नहीं है। यहाँ पर केवल स्व या आत्मन की मनोवैज्ञानिक व दार्शनिक व्याख्याओं के दो विवरणों को उल्लखित किया जा रहा है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

1. स्व या आत्मन को परिभाषित कर सकेंगे।
2. स्व या आत्मन में निहित पक्षों को स्पस्ट एवं व्याख्यित कर सकेंगे।
3. स्व या आत्मन में वृद्धि को स्पस्ट कर सकेंगे।
4. स्व या आत्मन में अभिप्रेरणा के संप्रत्यय को स्पष्ट कर सकेंगे।
5. आत्मन के विकास एवं पहचान को मूर्तता प्रदान करने वाले कारकों का वर्णन कर सकेंगे।

4.3 स्व या आत्मन की अवधारणा

स्व का सम्प्रत्यय (The concept of Self)

व्यक्ति स्वयं के बारे में जो सोचता है तथा अपने बारे में जो अवधारणा विकसित करता है, उसे 'स्व' की अवधारणा (Concept of Self) कहते है।यह दो रूपों में हो सकता है, 'वास्तविक स्व'(Real Self)एवं ;आदर्शत्मक स्व' (Ideal Self) 'वास्तविक स्व' का तात्पर्य है व्यक्ति अपने बारे में क्या सोचता है या प्रत्यक्षीकृत करता है, जैसे वह कौन है? उसमें क्या-क्या विशेषताएं हैं? आदि। 'आदर्शात्मक स्व' का आशय वह कैसा होना चाहता है' तथा 'आगे चलकर कैसा बनना चाहता है, इस प्रकार 'स्व' के दोनों रूपों में से प्रत्येक का सम्बन्ध शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक पहलू से होता है।शारीरिक दृष्टिकोण में शारीरिक अनुभव, यौन एवं शारीरिक क्षमता तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण में बुद्धि, कौशल एवं अन्य लोगों के साथ मानसिक क्षमताओं का प्रदर्शन आदि से स्व सम्बन्धित होता है।

व्यक्तित्व के विकास में आनुवांशिक कारक (Hereditary factors) तथा परिवेशीय कारक (Environmental factors) दोनों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।थॉमस एंव सहयोगियोंका मानना है की यदि आनुवांशिकता तथा पर्यावरण के बीच सही ढंग से समायोजन (Adjustement) स्थापित नहीं होगा तो संगठित व्यक्तित्व का विकास होना असम्भव है। व्यक्तिगत अनुभव भी व्यक्तित्व विकास को प्रभावित करते हैं।शाल (1960) के अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि जिन व्यक्तियों की कष्टदायक अनुभूतियाँ (Painful experiences) अधिक होती हैं वे सुखद अनुभव रखने वाले व्यक्तियों की तुलना में कम समायोजित होते हैं।

आत्मन रोजर्स के व्यकितत्व सिद्धांत का एक महत्त्वपूर्ण संप्रत्यय है। रोजर्स का मानना है कि धीरे-धीरे अनुभव के आधार पर प्रासंगिक क्षेत्र(Phenomenal field) का एक भाग अधिक विशिष्ठ (differentiated) हो जाता है और इस भाग को ही रोजर्स ने आत्मन की संज्ञा दी है। रोजर्स का मानना है कि आत्मन कोई एक अलग विमा या क्षेत्र नहीं है और न ही अलग से व्याप्त कोई विशिष्ट तत्व है अपितु आत्मन से आशय सम्पूर्ण प्राणी से होता है।

आत्मन का विकास शैशवावस्था से शुरू हो जाता है और जैसे –जैसे शिशु की अनुभूतियों का एक अंश या भाग अधिक मूर्त रूप प्राप्त करने लगता है और धीरे-धीरे मैं और मुझे की विशेषताओं से अभिभूत होने लगता है। इसका परिणाम यह होता है कि शिशु धीरे-धीरे अपने आत्मन से अवगत होने लगता है। जिसके कारण उसे अच्छे एवं बुरे कृत्यों का अभिज्ञान होने लगता है, उसे सुखद व दुखद अनुभूतियों के अन्तर का प्रत्यक्षण होने लगता है एवं वह आत्म निर्धारित किसी कसौटी के आधार पर अपनी अनुभूतियों के औचित्य की तर्कसंगत परख करना प्रारम्भ कर देता है। जैसे- 'मैं कैसा हूँ, मेरी क्या विशेषताएँ हैं, दूसरे मुझकों क्या समझते हैं आदि। जीवन के विविध् रूपों के प्रति एक शिशु धीरे-धीरे जो अवधरणाएँ विकसित करता हैं इन सबका एक संगठित और सुसम्बद्ध रूप ही एक ऐसी सम्पूर्णता है जिसे स्व या आत्मन के नाम से अभिहित किया जाता है। आत्मन इन्द्रियों की ग्रहणशीलता का ही मूलत: परिणाम है। इन्द्रियों से होने वाला प्रत्यक्षीकरण ही संज्ञान के रूप में परिपक्व एवं विकसित होता है।

मनोवैज्ञानिक कार्ल रोजर्स और इब्राहम मास्लो आत्म अवधारणा की धारणा को सुव्यवस्थित व्याख्यित करने के लिए जाने जाते है। रोजर्स के अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति 'आदर्श स्व (Ideal Self)' तक पहुंचने के लिए प्रयासरत रहता है। आदर्श स्व वह जिसे व्यक्ति या कोई समाज पूर्ण रूप से स्वीकार्य एवं अपेक्षित समझता है। जॉन टर्नर द्वारा विकसित आत्म वर्गीकरण सिद्धांत के अनुसार आत्म अवधारणा में कम से कम दो स्तर निहित माने जाते है: एक व्यक्तिगत पहचान से सम्बंधित है और दूसरा सामाजिक पहचान से सम्बंधित है। किसी भी व्यक्ति के स्व या आत्मन के विकास एवं निर्धारण में उस व्यक्ति की व्यक्तिगत पहचान एवं उसकी सामाजिक पहचान की अहम् भूमिका होती है।

स्व या आत्मन की यह विशेषता है कि यह संगठित इकाई होते हुए भी एक प्रक्रिया का धोतक है, एक ऐसी प्रक्रिया जो आत्मन या स्व को विकासशील रखती है लेकिन साथ ही किसी एक समय में इसका एक सुनिश्चित स्वरूप भी होता है जो व्यकित के तत्कालीन व्यवहार को एक निश्चित रूप प्रदान करता है।

भारतीय संदर्भ में 'स्व या 'आत्मन की अवधरणा एक सामाजिक सांस्कृतिक संदर्भ में विकसित होने वाली एक अवधरणा है। भारतीय सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश में निरंतरता, लोचशीलता एवं

परिवर्तनशीलता आदि गुण पाए जाते है। प्राचीन वैदिक कालीन ऋचाएं , संहिताओं, सूत्रों, कर्मकाण्ड तथा महाकाव्यों के चरित्र अभी भी जनमानस की चेतना का गहनतम अंग हैं।

महर्षि अरबिन्द के शैक्षिक चिंतन वास्तव में उनके जीवन तथा आध्यात्मिक दर्शन की देन है। उन्होने मानव समाज के विकास एवं कल्याण के लिए आध्यात्मिक विकास का मार्ग प्रशस्त किया। मानवीय विकास से उनका अभिप्राय मानव कल्याण की भावना से था। उनका दर्शन अध्यात्म, ब्रह्मचर्य तथा योग पर आधरित है। इन्होंने मानवीय विकास की पूर्णता की प्राप्ति के लिए स्व या आत्मन का विकास आवश्यक माना। व्यक्ति के स्व या आत्मन विकास से उनका अभिप्राय व्यक्ति के मन और आत्मा की शक्तियों के सर्वांगीण तथा समग्र विकास से है। व्यक्ति को मुक्त एवं स्वच्छन्द वातावरण प्राप्त होने पर उसके स्व का संभाव्य एवं उच्चतम विकास हो सकता है। महर्षि अरविन्द ने समग्र रूप से स्व को भौतिक, प्राणिक, मानसिक, अन्तरात्मिक तथा अध्यात्मिक पक्षों से निर्मित माना। इनके पूर्ण संतुलित विकास से ही व्यक्ति के स्व का पूर्ण विकास संभव है।

4.3.1 स्व या आत्मन की भारतीय एवं पश्चिमी अवधारणा में अन्तर

'स्व या 'आत्मन की भारतीय एवं पश्चिमी अवधरणा में सबसे महत्त्वपूर्ण अंतर स्व या आत्मन तथा परिवेश की बीच सीमा रेखा का स्पष्ट निर्धारण है। पश्चिमी मानस में ये सीमांकन लगभग अपरिवर्तनीय तथा दृढ़ है जबकि भारतीय जनमानस में यह अवधारणा लगातार परिवर्तनशील सीमा रेखाओं से नियंत्रित एवं निर्देशित होता है। भारतीय वैचारिकता में व्यक्ति का स्व विस्तृत होकर परिवेश में मिलकर अंतक्रिया करता हुआ एकाकार हो जाता है और अगले ही क्षण वह उससे पूर्ण रूपेण मुक्त अवस्था में सरोकार कर जाता है। जीव के आत्मन या स्व की पंचकोशीय अवधारणा स्थूल या भौतिक गुणों से प्रारम्भ होकर सूक्ष्म तत्वों की ओर सदैव अग्रसर रहती है और इस प्रकार यह एक श्रेणीबद्धअनुक्रम में संगठित हो पूर्णता को प्राप्त करती है।

4.3.2 स्व या आत्मन की अवधारणा में निहित प्रत्यय

पाश्चत्य दार्शनिक देकार्ते का यह कथन अत्यंत प्रसिद्ध है 'मैं सोचता हूँ इसलिए मैं हूँ'। इस कथन के विपरीत कुछ दार्शनिकों का कहना था कि प्रश्न फिरभी वही रह जाता है, मै कौन हूँ? इन प्रश्नों का सामान्य उत्तर दे पाना संभव नहीं है और न ही सभी विद्वान इससे सहमत हो सकते है। यहाँ सबसे पहले उन तत्वों की चर्चा की जा रही है जिनके आधार पर स्व या आत्मन को निर्मित माना जाता है। स्व या आत्मन के आधार या इससे संयोजित कुछ घटकों को अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है और यही आत्मन के विकास में अहम् भूमिका का निर्वाह करते है। ये निम्न है-

4.3.2.1 **आत्म-जागरूकता**

आत्म- जागरूकता को स्व से बाहर स्व को अभिव्यक्त करने की क्षमता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। आत्म-जागरूकता से आशय आस-पास के वातावरणीय उद्दीपकों के प्रति मानसिक रूप से सचेतन रहने से है। अपने चरों तरफ के वातावरणीय परिवेश से अलग स्व को एक अनोखे व्यक्ति के रूप में देखने और अपने विचारों, भावनाओं, अनुभूतियों और व्यवहारों पर प्रतिबिंबित करने की प्रवृति है। आत्म-जागरूकता स्व या आत्मन के क्रियाओं व व्यवहारों को न्यायसंगत बनाने तथा अपने अन्तर्निहित गुणों को व्याख्या करने का धरातल प्रदान करता है।आत्म जागरूकता विकसित करने के लिए अपने मन में विचारों और व्याख्याओं में परिवर्तन बनाने के लिए सक्षम बनाता हैं। अपने मन में व्याख्या बदलने से स्व अपनी भावनाओं को बदलने के लिए अनुमति देता है। स्व जागरूकता एक भावनात्मक तरीका और सफलता प्राप्त करने में एक महत्वपूर्ण कारक की विशेषताओं में से एक है। आत्म जागरूकता के बाद स्व जहां अपने विचारों और भावनाओं को स्वयं ग्रहण करने लगता हैं, देखने के लिए अनुमति देता है यह भी आप अपनी भावनाओं, व्यवहार और व्यक्तित्व के नियंत्रण को देखने की अनुमति देता है तो आप परिवर्तन जो स्व चाहता हैं, कर सकते हैं।

4.3.2.2 स्व-अवधारणा या आत्म-अवधारणा

स्व-अवधारणा उस प्रत्यय को कहा जाता है जिसमें मैं ऐसा हूँ, की समग्र धारणा निहित होती है। स्व-अवधारणा स्व या आत्मन के विषय में अपने विश्वासों, धारणाओं, अनुभूतियों, प्रत्यक्षण आदि के आधार पर निर्मित होती हैजिसके निर्माण में कई प्रकार के कारक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष से अहम् भूमिका का निर्वहन करते है। जैसेकुछ कारक परिवार, संस्कृति और लिंग से सम्बंधित होते हैं। स्व-अवधारणा आत्मन का एक संज्ञानात्मक या वर्णनात्मक घटक है। स्व-अवधारणा से आशय उन सभी आयामों एवं अनुभूतियों से होता है जिससे कोई व्यक्ति स्वयं अवगत होता है यहाँ यह आवश्यक नहीं होता है कि उसका स्व के विषय में सभी प्रत्यक्षण सदैव सही ही हो। स्व-अवधारणा को प्राय: निम्न प्रकार के कथनों के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता है जैसे- मैं जो सोचता हूँ वह ....., मैं एक ऐसा व्यक्ति हूँ जो....., मुझे स्वयं पर पूर्ण विश्वास रहता है आदि। स्व-अवधारणा की यह विशेषता मानी जाती है कि इसका एक बार जो धारणा विकसित हो जाती है उसमें आसानी से परिवर्तन नहीं होता है। स्व-अवधारणा को बदलना अत्यंत सरल इसलिए नहीं माना जाता है क्योंकि इसमें गहरे-निर्धारित विश्वासों, दृष्टिकोणों और मूल्यों का प्रभाव रहता है।

4.3.2.3 आत्म-सम्मान

आत्म-सम्मान से तात्पर्य है कि व्यक्ति में अपने स्व या आत्मन को सम्मान एवं स्नेह देने की आवश्यकता से है। आत्म-सम्मान की यह आवश्यकता व्यक्ति में अर्जित प्रकृति की होती है और व्यक्ति में यह विभिन्न प्रकार के क्रिया-कलापों के संतोषजनक आत्म-अनुभूतियों से उत्पन्न होती है। दूसरे शब्दों में, जब व्यक्ति को परिवार या समूह या समाज के महत्त्वपूर्ण व्यकितयों से मान-सम्मान

मिलता है तो इससे उसमें सकारात्मक आत्म-सम्मान की भावना या प्रेरणा भी मजबूत हो जाती है। आत्म-सम्मान का तादाम्य व्यक्ति द्वारा स्व या आत्मन के लिए निर्धारित उस मूल्य से भी लिया जाता है जिसे वह अपनी समग्र आयामी विश्लेषण के पश्चात स्वयं के लिए सुनिश्चित करता है। आत्म-सम्मान एक प्रकार से आत्म-अवधारणा का मूल्यांकन है क्योकि यह व्यक्ति को इस पक्ष पर विचार करने के लिए उद्वेलित करता है कि व्यक्ति स्वयं अपने दृष्टीकोण में कितना मूल्यवान है। आत्म-सम्मान व्यक्ति के विभिन्न प्रकार के सम्बन्धों, पारस्परिक कौशल एवं जीवन के प्रति व्यक्ति के चिंतन व दृष्टिकोण को प्रभावित करता है।आत्मसम्मान किसी भी व्यक्ति के सफल सुखी जीवन का आधारभूत तत्व है। व्यक्ति आत्मसम्मान के अभाव में सफलता तो प्राप्त कर सकता है, बाह्य उपलब्धियों भरा जीवन भी आसानी से जी सकता है, किंतु व्यक्ति का अंतर्मन भी उतना ही सुखी, संतुष्ट और संतृप्त होगा, यह संभव नहीं है। आत्मसम्मान के अभाव में जीवन एक गंभीर अपूर्णता व रिक्तता से भरा रहता है। यह रिक्तता एक गहरी कमी का अहसास देती है और जीवन एक अनजानी- रिक्तता, एक अज्ञात पीड़ा, असुरक्षा और अशांति से बेचैन रहता है। आत्मसम्मान का बाहरी उपलब्धियों और सफलताओं से बहुत अधिक लेना-देना नहीं है।

आत्म-सम्मान व्यक्ति की स्वयं सहज स्वीकृति, स्व-प्रेम, स्व-विश्वास, स्व-जागरूकता, स्व-ज्ञान, स्व-प्रत्यक्षण और स्व-सम्मान की व्यक्तिगत अनुभूति है, जो दूसरों के प्रभावों से मुक्त होता है अर्थात यह दूसरों की प्रशंसा, निंदा और मूल्यांकन आदि से स्वतंत्र है।वास्तव में आत्म-सम्मान व्यक्ति का स्व दृष्टी में स्वयं का मूल्यांकन है और अपनी मौलिक अद्वितीयता की आंतरिक समझ और इसकी गौरवपूर्ण अनुभूति है।

4.3.2.4 स्वीकार्य या स्वीकार्यात्मक-सम्मान

स्वीकार्य या स्वीकार्यात्मक सम्मान से आशय है अन्य व्यक्तियों या दूसरों द्वारा उसे स्वीकार किये जाने, दूसरों का स्नेह पाने एवं उनके द्वारा पसंद किये जाने की इच्छा से होता है। जैसे-जैसे बच्चों में आत्मन विकसित होता जाता है, इस तरह के स्वीकार्य या स्वीकार्यात्मक सम्मान प्राप्त करने की भावना की आवश्यकता तीव्र होने लगती है। सामान्यत: यह देखने को मिलता है कि जब दूसरों से बच्चों को सम्मान मिलता या प्राप्त होता है तब उनमें संतुष्टि की भावना उत्पन्न होती है और बच्चों को जब ऐसा सम्मान नहीं मिलता या प्राप्त हो पाता है तब उनमें असंतोष की भावना उत्पन्न होती है जोकि एक आवश्यकता के रूप में अभिव्यक्त होती है। इस प्रकार की आवश्यकता का स्वरूप पारस्परिक प्रकृति का माना जाता है। ऐसा इसलिए माना जाता है क्योकिं जब कोई व्यक्ति दूसरे को स्नेह एवं प्यार एवं अनुराग देकर दूसरे के स्वीकार्यात्मक सम्मान की आवश्यकता को संतुष्ट करता है तो उससे उसे अपने में भी एक तरह की आत्म-संतुषिट प्राप्त होती है। रोजर्स के अनुसार स्वीकार्यात्मक सम्मान की आवश्यकता दो प्रकार की होती है-

शर्तपूर्ण स्वीकार्यात्मक सम्मान तथा शर्तरहित स्वीकार्यात्मक सम्मान ।

शर्तपूर्ण स्वीकार्यात्मक सम्मान में अन्य व्यक्तियों का स्नेह, प्यार एवं अनुराग प्राप्त करने के लिए उनके द्वारा निश्चित किए गए मानदण्डों के अनुरूप व्यक्ति अर्थात बच्चे को व्यवहार करना पड़ता है। रोजर्स का मत था कि बच्चों को इस तरह की शर्त रखकर उन्हें प्रेम या स्नेह देना उनके मानसिक स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो सकता है और ऐसे बच्चे एक पूर्णरूपेण सफल व्यक्ति बनने से वंचित रह सकते है। शर्तहीन स्वीकार्यात्मक सम्मान में अन्य या दूसरे व्यक्तियों का स्नेह, प्यार एवं मान-सम्मान पाने के लिए कोई शर्त नहीं रखी जाती है। परिवार में माता-पिता द्वारा बच्चों को दिया गया स्नेह एवं मान-सम्मान इसी श्रेणी का सम्मान होता है। इस तरह के सम्मान पाने से बच्चे बहुत तेजी के साथ एक परिपूर्ण सफल व्यक्ति बनने की ओर अग्रसर होते हैं।

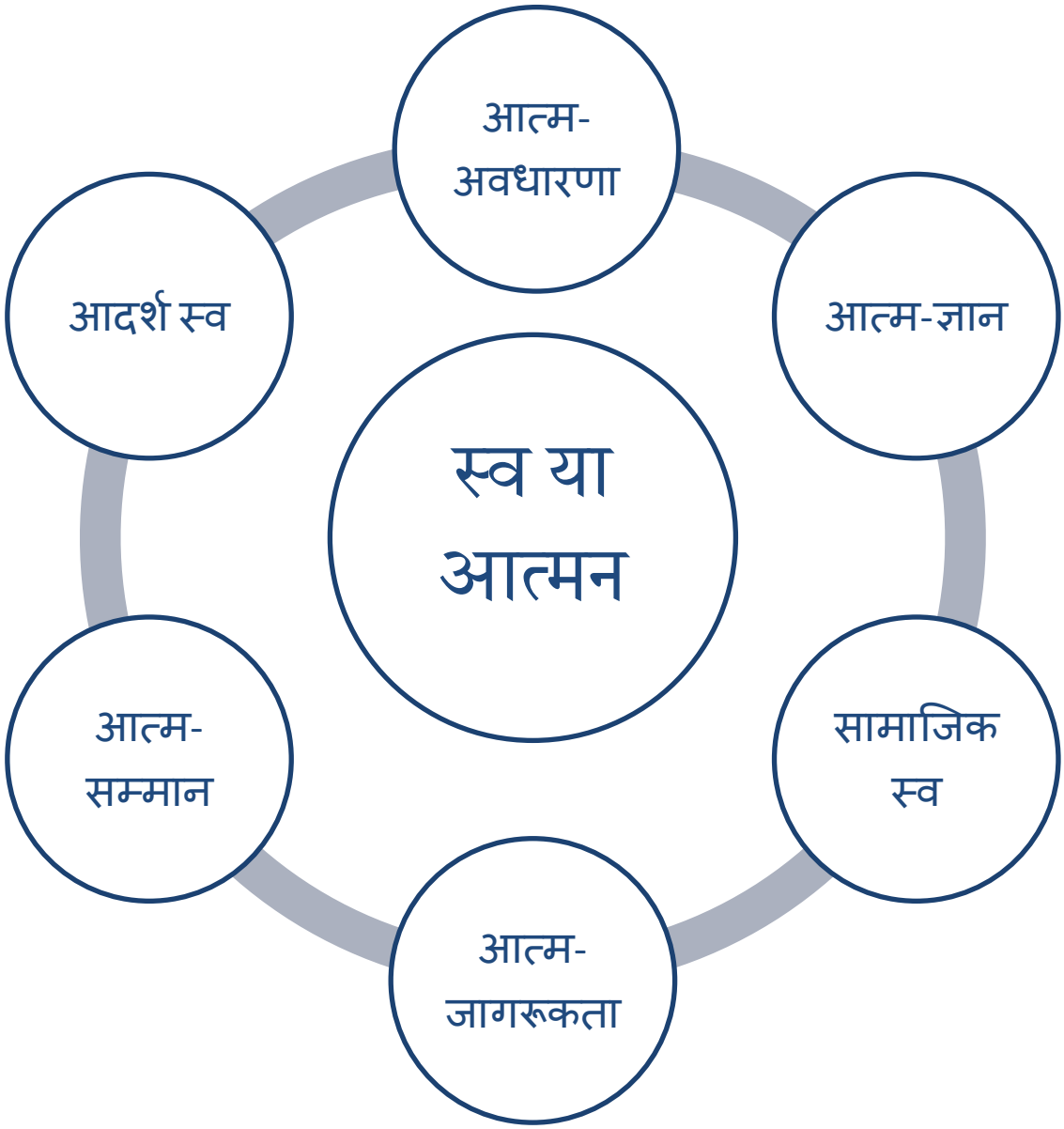

स्व या आत्मन के विकास की प्रक्रिया को इस चित्र के माध्यम से समझा जा सकता है।

अभ्यास प्रश्न

1 स्व या आत्मन के प्रत्यय को स्पस्ट करें?
2 स्व या आत्मन के भारतीय मत से आप क्या समझते है?

3 आत्मन या स्व के भारतीय एवं पाश्चात्य विचारधारा में अन्तर करें?

4.4 स्व का विकास

'स्व का विकास (The development of self)

'स्व' के विकास में सामाजिकीकरण (socialisation) की अहम भूमिका होती है।बच्चों के प्रारंभिक 'स्व' के स्वरुप पर माता-पिता तथा सहोदरों (siblings) का अधिक प्रभाव पड़ता है, क्योंकि वे प्रारम्भिक वर्षों में उन्हीं के सम्पर्क में सर्वाधिक रहते है।बोसार्ड (1956) का मानना है जिस बालक के छोटे भाई-बहन होते हैं उनकी भूमिका परिवार में एक जिम्मेदार बालक की हो सकती है।इसका भी प्रभाव बालक के स्व के विकास (Development of self) पर पड़ता है।बालक जब स्कूल में प्रवेश करता है तब उसका सामाजिक दायरा बढ़ता है जिससे उसका स्व एकांगी (Self- Centred) हो जाता है।बालक की विभिन्न वस्तुओं, व्यक्तियों एवं घटनाक्रमों के प्रति अभिवृतियां उन अभिवृत्तियों से प्रभावित होती हैं जो उसके जीवन में प्रमुख अभिकर्ता (Main Agent) जैसे शिक्षक, माता-पिता, पड़ोसी, मित्र के रूप में महत्वपूर्ण होती हैं अतः उसका स्व सम्प्रत्यय 'मुल्यांकनों" से बना होता है।यदि वे मूल्याकंन अनुकूल हुए तो बालक का 'स्व' अनुकूल होगा, अन्यथा वह अपना अवमुल्यांकन करेगा।अतः 'स्व' के विकास में मानसिक क्षमताएँ, जो विभिन्न परिस्थितियों को समझने तथा उपयुक्त व्यवहार करने में सहायक होती हैं, की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।

4.5 समायोजन में अभिप्रेरणा की भूमिका (Role of Motivation in Adjustment)

अभिप्रेरणा (Motivation) शब्द की उत्पत्ति व्यवहार से प्रदर्शित करने के लिये साधारण भाषा में हुयी है। मनोविज्ञान में इस शब्द का अर्थ और प्रयोग कुछ अलग प्रकार से होता है। मनोविज्ञानी यह जानने का प्रयत्न करता है कि व्यवहार क्या होता है। व्यवहार की उत्पत्ति मनुष्य की जीने की इच्छा पर आश्रित रहती है। सभी प्राणियों में बहुधा यह कहा जाता है कि जीने की इच्छा एक प्रधान और महत्वपूर्ण व्यापक प्रेरक है, किन्तु मनोविज्ञान यह मानकर चलता है कि मनुष्य में जीने की इच्छा ही प्रथम नहीं होती है, बल्कि वातावरण के साथ सक्रिय समायोजन बनाये रख जीने के लिये संघर्ष करना 'जीने की इच्छा से कहीं अधिक आवश्यक है।

यदि व्यक्ति वातावरण से सही एवं स्वस्थ समायोजन नहीं कर पाता है तो उसके व्यक्तित्व में असमायोजन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। व्यावहारिक रूप से यदि विभिन्न प्रकार के व्यक्तित्व की एक सूची तैयार की जाय तो वह सूची कभी भी पूर्ण नहीं की जा सकेगी जितने गुण होते हैं उतने ही व्यक्तित्व होते हैं कुछ गुणी हैं, कुछ अवगुणी (समाज द्वारा निर्धारित मानकानुसार) कुछ समायोजित है, कुछ असमायोजित। दोनों प्रकार के व्यक्तित्व का विकास अपने ढंग से होता है।

व्यक्तित्व विकास के मुख्य स्रोत तीन हैं:

i. जैवकीय प्रेरणा (Biological Motivation)
ii. मनोवैज्ञानिक प्रेरणा (Psychological Motivation)
iii. सामाजिक प्रेरणा (Social Motivation)

अन्य शब्दों में कह सकते हैं कि किसी समायोजित व्यक्तित्व का विश्लेषण करने के लिये उपरोक्त तीनों के स्तर की जानकारी अति आवश्यक है।

4.5.1 प्रेरणा एवं व्यवहार

व्यवहार की भिन्नता व्यक्तित्व की प्रकृति पर आधारित होती है और व्यक्तित्व की गतिशीलता प्रेरकों (Motives) पर प्रत्येक व्यक्तित्व के विकास में प्रेरक की शक्ति बुनियाद का कार्य करती है। प्रेरकों की निष्क्रियता असंतुलन और अतृप्ति मानव व्यवहार के लिये असमायोजन पैदा कर मानव व्यवहार को छिन्न-भिन्न कर देती है जिसके कारण मानसिक अवस्था विकृतपूर्ण हो जाती है। इस प्रकार मानव जीवन में समायोजन के लिये प्रेरकों का सबसे अधिक महत्व है। प्रेरक सम्पूर्ण व्यवहार के संचालक है। बिना प्रेरणों के मनुष्य निष्क्रिय रहता है। मानव प्रेरणा में मनुष्य की मूलभूत आवश्यकतायें हैं। इन आवश्यकताओं की पूर्ति होते रहने के कारण व्यक्ति अपने वातावरण के साथ समायोजन बनाये रखता है। ये आवश्यकतायें दो प्रकार की होती हैं। संतुलन बनाये रखने के लिये मनुष्य जीवन में प्रेरणाओं की बहुत बड़ी भूमिका होती है।

आवश्यकतायें दो प्रकार ही होती हैं:

i. जैविक आवश्यकतायें (Biological Needs)
ii. मनोवैज्ञानिक आवश्यकतायें (Psychological Needs)

मनोवैज्ञानिक भाषा में मूलभूत आवश्यकतायें प्रेरणाओं का ही स्वरूप होती हैं। शारीरिक आवश्यकतायें जैसे भूख, प्यास, काम नींद आदि जैविक आवश्यकतायें कहलाती हैं। इन शारीरिक आवश्यकताओं को जैविक प्रेरणाओं के नाम से भी पुकारा जाता है। इस प्रकार जैविक स्तर पर आवश्यकता एवं प्रेरणा में कोई अन्तर नहीं होता है। कोलमैन ने आवश्यकता को निम्न वर्गों में बांटा है, जो व्यक्ति के समायोजन में भूमिका निभाती है।

i. आंतरांग आवश्यकतायें (Visceral Needs) - भोजन, पानी, ऑक्सीजन, नींद, मल-मूल निष्कासन आदि।
ii. सुरक्षा (Safety) - शारीरिक क्षय एवं हानिक से बचने के लिये सुरक्षात्मक आवश्यकतायें
iii. काम (Sex) - जननेन्द्रियों द्वारा उदित काम वासना की तृप्ति एवं कामोत्तेजना।
iv. संवेदी तथा गतिवाही (Sensory and Motor) - जो शारीरिक कार्यों को समुचित रूप से संचालित करती है।

4.5.2 शारीरिक प्रेरणायें (Psychological Motivation)

आन्तरिक प्रेरक बिना सीखे हुये स्वाभाविक प्रेरक होते हैं। आन्तरिक प्रेरणायें वे शारीरिक आवश्यकतायें हैं जिनको लेकर व्यक्ति संसार में जन्म लेता है। मनोविज्ञान की भाषा में इनको जन्मजात प्रवृत्ति कहा जा सकता है। ये प्रेरणायें प्राण रक्षा एवं सामान्य जीवन मे व्यक्ति को समायोजित करती हैं, ये अत्यन्त आवश्यक हैं। ये भिन्न हैं।

1. **लैंगिक प्रेरक (Sex Motives)** -शारीरिक संतुलन बनाये रखने के लिये और मानसिक क्रियाओं की सामान्यता के लिये कामेच्छा संबंधी प्रेरक जीवन हेतु महत्वपूर्ण अंग हैं। फ्रायड एवं उनके अनुयायियों ने काम शक्ति को एक व्यापक प्रेरक माना है। जीने की इच्छा काफी सीमा तक प्रेरणा का ही रूप है।
2. **भूख प्रेरक (Hunger Motives)** -भूख एक ऐसी भयानक स्थिति है जिसके द्वारा व्यक्ति का शारीरिक एवं मानसिक संतुलन बिगड़ जाता है। भूख एक शारीरिक अवस्था है। भूख से प्राणी चिड़चिड़ा हो जाता है। यह एक ऐसी प्रेरणा है जो संवेगात्मक है। भूख के कारण अनेक शारीरिक परिवर्तन होते हैं।
3. **प्यास प्रेरक (Thrust Motives)**- जीव के लिये भूख जितनी आवश्यक स्थिति है, प्यास भी उससे अधिक मानी जाती है। यदि कुछ समय जीवन को पानी न मिले जो उसके प्रत्येक अंग में बेचैनी एवं तनाव उत्पन्न होता है। पानी की कमी से कोशकीय क्रियायें असंतुलित हो जाती हैं।
4. **अन्य मूलभूत प्रेरणात्मक दशायें (Other Basic Motivational Condition)**- प्रेरणात्मक व्यवहार में वह एक विशेषता पायी जाती है कि शारीरिक अंग, जो प्रेरणाओं के कारण कार्य करते हैं, जब तक अपने लाभ की प्राप्ति नहीं करपाते तब तक निरन्तर उनकी क्रियायें चलती रहती हैं।

   प्रेरणात्मक शक्ति मनुष्य के व्यवहार में कार्य कर रही हैं या नहीं, यह इस बात का प्रमाण, प्राणी की बैचेनी से मिलता है। वह अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिये जिस प्राणी में जितनी ज्यादा बेचैनी होगी उसके अन्दर की प्रेरणा की मात्रा भी उतनी ही अधिक कार्य करेगी।

4.5.3 मनोविज्ञान प्रेरणायें (Psychological Motivation)

शारीरिक आवश्यकतायें मानव जीवन की बुनियादी प्रेरणायें हैं। लेकिन मनोवैज्ञानिक प्रेरणायें भी महत्वपूर्ण हैं। शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति यदि होती रहे तो व्यक्ति स्वस्थ बना रहता है। परन्तु मन की आवश्यकताओं की तृप्ति न होने के कारण मानसिक विकृतियां उत्पन्न होने लगती हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से ये प्रेरणायें महत्वपूर्ण हैं। कुछ महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक प्रेरणायें निम्न हैं जो समायोजन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

1. **प्रेम (Love) -**व्यक्ति की जन्मजात प्रवृत्तियों में सबसे महत्वपूर्ण प्रेम की प्रकृति है। जन्म से मृत्यु तक वह प्रेम दूसरों से तथा दूसरे उसे प्रेम करें ऐसी आकांक्षा रखता है। फ्रायड ने प्रेम को मूल प्रवृत्ति माना है। यह एक ऐसी प्रेरणा है जो मनुष्य को जीने के लिए प्रेरित करती है। जब भी प्रेम रूपी प्रेरणा मन्द पड़ती है वह असंतुलित होकर असमायोजित हो जाता है। कुल मिलाकर प्रेम एक ऐसी प्रेरणा है जो व्यक्ति को समायोजन में मदद करती है।
2. **आत्म गौरव (Self-Esteem)-** व्यक्ति अपनी मान-मर्यादा, प्रतिष्ठा एवं सम्मान को सुरक्षित रखने के लिये सब कुछ कर सकता है। वह हार या दूसरे के सामने हीन नहीं दिखना चाहता। वह सदैव आत्म सम्मान के साथ जीना और उसे बरकरार रखना चाहता है।
3. **सामाजिक प्रतिष्ठा (Social Approval)-** प्रत्येक समायोजित व्यक्ति की यह प्रबल इच्छा होती है कि वह अपने समाज में एक प्रतिष्ठित व्यक्ति के रूप में जाना जाय, इसकी पूर्ति हेतु वह अपने स्तर से परिश्रम करता है, शिक्षा धन एवं सामाजिक कार्यों में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेता है। वह समाज द्वारा अपने अस्तित्व की स्वीकृति चाहता है।
4. **पर्याप्तता एवं सुरक्षा (Adequacy Competency)-** यह एक ऐसी प्रेरणा है जिसका संबंध मनुष्य की उस सामर्थ्य से होता है जिसके द्वारा वह विपरीत परिस्थितियों और वातावरण के साथ अपना समायोजन बना लेता है। जब उसे यह विश्वास हो जाता है कि वह कठिन परिस्थिति पर विजय प्राप्त कर सकता है तो उसे अनुभूति होती है कि वह एक कुशल और पर्याप्त (उपयुक्त) व्यक्ति है।
5. **सुरक्षा (Secutiry)-** सुरक्षा एक ऐसी प्रेरणा है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने को संतुलित बनाये रखता है। समाज में रहकर वह धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक स्तर पर पूर्णतया सुरक्षित रहना चाहता है। वह स्वतंत्रता चाहता है, खुद को सुरक्षित रखकर सुनिश्चित होना चाहता है।

4.5.4 प्रेरणाओं का सामाजिक स्तर (Social Aspects of Motivations)

समाज की आवश्यकतायें भी महत्वपूर्ण हैं जिसके द्वारा व्यक्ति के व्यवहार की रूपरेखा निश्चित होती है। मनुष्य समाज में रहकर प्रत्येक विपरीत परिस्थिति में जीता है और समायोजित होने का प्रयास करता है। वह उसकी सामाजिक प्रेरणा का द्योतक है। मनुष्य की कुछ प्रेरणायें तो सदैव वातावरण के द्वारा संचालित और नियमित होती रही हैं, यही कारण है कि समय-समय पर मनुष्य की इच्छा शक्ति में परिवर्तन होता रहता है। समाज में रहकर व उससे प्रभावित होकर अपने जीवन का लक्ष्य निर्धारित करता है। सामाजिक वातावरण में रहकर वह अपने को प्रेरित कर समायोजित करने का प्रयास करता है। प्रायः मनुष्य अपने लक्ष्य का निर्धारण अपनी आवश्यकता के अनुसार नहीं करता बल्कि वह सामाजिक वातावरण से प्रेरित होकर भी जीवन लक्ष्य निर्धारित करता है। सामाजिक मान्यताओं और

नियमों के द्वारा मनुष्य के मूल्यों का विकास होता है। वह अपनी मनोवृत्तियों, आदतों और मान्यताओं का आधार सामाजिक आवश्यकताओं को मानता है। मनुष्य सामाजिक वातावरण से प्रेरित होकर अच्छे कार्य करता है।

4.6 सारांश

दृश्यमान जगत में व्याप्त जीव या अजीव में विकास के संदर्भ में मानव को सर्वोच्च एवं सर्वोत्तम माना जाता है। इसका कारण यह माना जाता है कि मानव में चिंतन एवं विवेक नामक शक्तियां व्याप्त रहती है जो उन्हें औरों से श्रेष्ट एवं बेहतर बनाती है। विकास की अविरल धारा में अन्यों के समान मानव भी निरन्तर सतत रूप से गतिमान रहता है किन्तु मानव विकास के सभी परिप्रेक्ष्यों का मूल्यांकन स्वयं या स्व या आत्मन को केन्द्र बिन्दु में रखते हुए करता है। स्व-अवधारणा उस प्रत्यय को कहा जाता है जिसमें मैं ऐसा हूँ, की समग्र धारणा निहित होती है। स्व-अवधारणा स्व या आत्मन के विषय में अपने विश्वासों, धारणाओं, अनुभूतियों, प्रत्यक्षण आदि के आधार पर निर्मित होती हैजिसके निर्माण में कई प्रकार के कारक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष से अहम् भूमिका का निर्वहन करते है। जैसेकुछ कारक परिवार, संस्कृति और लिंग से सम्बंधित होते हैं। स्व-अवधारणा आत्मन का एक संज्ञानात्मक या वर्णनात्मक घटक है। अभिप्रेरणा की भूमिका-प्रेरणा शब्द की उत्पत्ति व्यवहार से प्रदर्शित करने के लिये साधारण भाषा में हुयी है। मनोविज्ञान में इस शब्द का अर्थ और प्रयोग कुछ अलग प्रकार से होता है। मनोविज्ञानी यह जानने का प्रयत्न करता है कि व्यवहार क्या होता है। व्यवहार की उत्पत्ति मनुष्य की जीने की इच्छा पर आश्रित रहती है। सभी प्राणियों में बहुधा यह कहा जाता है कि जीने की इच्छा एक प्रधान और महत्वपूर्ण व्यापक प्रेरक है, किन्तु मनोविज्ञान यह मानकर चलता है कि मनुष्य में जीने की इच्छा ही प्रथम नहीं होती है, बल्कि वातावरण के साथ सक्रिय समायोजन बनाये रख जीने के लिये संघर्ष करना 'जीने की इच्छा से कहीं अधिक आवश्यक है।

4.7 सन्दर्भ ग्रंथ

1. मंगल, एस0के0 (2008): शिक्षा मनोविज्ञान, प्रेंटिस हॉल ऑफ इडिया प्रा0 लि0, नई दिल्ली, 110001
2. ओझा, राजकुमार (1972): असामान्य मनोविज्ञान, रस्तोगी पब्लिकेशन्स, प्रकाशक एवं मुद्रक शिवाजी रोड, मेरठ-2
3. आचार्य, नंदकिशोर (1997) संस्कृति का व्याकरण , वाग्देवी पाकेट बुक्स, बीकानेर।
4. आचार्य, परमेश (2000) देशज शिक्षा औपनिवेशिक विरासत और जातीय विकल्प , ग्रन्थ शिल्पी, लक्ष्मीनगर , नई दिल्ली ।
5. आचार्य, राममूर्ति (1990) शिक्षा, संस्कृति और समाज; श्रम भारती , खादीग्राम बिहार ।
6. जोशी , प्रो. पूरण चन्द्र (2001) स्वप्न और यथार्थ; राजकमल प्रकाशन, दरियागंज , नई दिल्लीभाई योगेन्द्र जीत: शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा-2

7. पचौरी, गिरीश: शिक्षा के मनोवैज्ञानिक आधार, आर0लाल बुक डिपो, मेरठ।
8. Huitt, W. (2011). Self and self-views Educational Psychology Interactive. Valdosta, GA: Valdosta State University.
9. Leary, M. R. and Tangney, J. P. (2012 Edited). Handbook of Self and Identity, The Guilford Press, New York

4.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. स्व के संप्रत्यय को स्पष्ट कीजिये?
2. अभिप्रेरणा का क्या महत्व है? वर्णन कीजिये।

इकाई 5 – मानसिक स्वास्थ्य एवं स्व की भावना व्यक्तित्व विकास में शिक्षक की भूमिका

5.1 प्रस्तावना
5.2उद्देश्य
5.3मानसिक स्वास्थ्य और मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान
5.3.1 मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ एवं परिभाषा
5.3.2 मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों की विषेशताऐं
5.4मानसिक स्वास्थ्य की आवश्यकता
5.4.1 मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारक
5.4.2 बालक के मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाने में शिक्षक की भूमिका
5.5मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का अर्थ एवं परिभाषाऐं
5.5.1 मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान के उद्देश्य
5.5.2 मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान के बारे में प्रमुख तथ्य
5.6सारांश
5.7शब्दावली
5.8अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.9संदर्भ ग्रन्थ
5.10 सहायक उपयोगी पाठय सामग्री
5.11 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1प्रस्तावना

शिक्षा एक प्रतिपादन है, उसका मूर्तरूप शिक्षक है। अध्यापक को अपनी गरिमा समझने और चरितार्थ कर दिखाने में वर्तमान परिस्थितियाँ भी बाधा नहीं पहुँचा सकती। जहाँ तक शिक्षणतंत्र के वेतनमान

सुविधा साधनों को बढ़ाए जाने की बात है वहाँ तक तो अधिकाधिक साधन जुटाने का समर्थन ही किया जाएगा पर इसमें यदि कुछ कमी रहे, अड़चन पड़े तो भी यह तो हो ही सकता है कि अध्यापकगण अपनी गुरु महिमा को अपने ही बलबूते बनाए रहें और अपने गौरव का महत्व अनुभव करते हुए बढ़ते चलें। विद्यार्थी अपने समय का महत्वपूर्ण भाग अध्यापकों के साथ रहकर विद्यालयों में गुजारते हैं। उनके प्रति सहज श्रद्धा और कृतज्ञता का भाव भी रहता है। उनके उपकारों को कोई कैसे भुला सकता है? उनसे आयु में ही नहीं, हर हालत में छोटी स्थिति वाले छात्रों पर उनके व्यक्तित्व और कर्तृत्व की छाप पडऩी ही चाहिए। शिक्षा के क्षेत्र में नए अवसरों ने ना केवल स्टूडेंट्स के लिए ज्ञान के दरवाजे खोले हैं बल्कि टीचरों को भी कई तरह के अवसर मुहैया कराए हैं. भारत में टीचिंग बेहद गरिमामय प्रोफेशन है और टीचरों का स्थान हमेशा ही ऊंचा रहा है. यही कारण है कि भारत में ज्यादातर युवा टीचर बनना चाहते हैं. आर्थिक उदारीकरण के बाद से प्राइवेट स्कूलों में ढेरों वैकेंसी मौजूद हैं. देश के दूर-दराज इलाकों में भी अब स्कूल, कॉलेज और यूनिवर्सिटीज खुल रही हैं और इसमें बड़ी पूंजी का निवेश किया जा रहा है. जाहिर है कि इन स्कूल-कॉलेज में पढ़ाने के लिए योग्य, ट्रेन्ड और प्रोफेशनल टीचर्स की मांग भी बढ़ती जा रही है. जब शिक्षित समाज की बात उठी है तो सबसे पहले शिक्षित समाज में नाम आता है देश को शिक्षित करने वाले हमारे आदरणीय शिक्षकगण का. अब जब शिक्षकों की बात आई है तो हमें याद आती है आचार्य चाणक्य की जिन्होंने अपना शिक्षण धर्म बखूबी निभाया देश के प्रति भी और समाज के प्रति भी. ऐसे और भी इस देश में बहुत से अनुकरणीय उदाहरण हैं जो शिक्षकों को सम्मानीय स्थान दिलाने में विशिष्ट भूमिका निभाते हैं. दो दशक पहले के समाज में अभिभावक शिक्षकों को भगवान् से भी ज्यादा सम्मान देते और दिलाते थे अपने बच्चे की हर अच्छी बुरी बात से अध्यापक को परिचित कराते थे. बच्चे की गलती पर स्वयं उसे न डांटकर उसके अध्यापकों के सामने उसकी गलती का खुलासा करते थे और अध्यापक उन्हीं के समक्ष बच्चे को समझाते थे और बच्चा भी अपने अध्यापक के हर एक शब्द को अक्षरत: पालन कर उनकी महत्ता को द्विगुणित करता था. परन्तु आज का समय बदल चुका है, परिवार बिखर चुके हैं माता-पिता अपनी एक या दो संतानों को बड़े ही नाजों से पालते हैं ऐसे में उनके बच्चे को किसी भी प्रकार की असुविधा उन्हें गवारा नहीं. जिस देश में भगवान् श्री कृष्ण और सुदामा एक ही आश्रम में शिक्षित हुए हों उस देश में आज विद्यालयों का विभाजन हो चुका है. शिक्षक समाज से जिस सम्मान की आकांक्षा रखता है उसे वह भी प्राप्त हो सकेगा और उसे इस सम्मान की चाहत हो भी क्यों न? शिक्षक ही तो इस समाज को चिकित्सक, आई एस अफसर, वैज्ञानिक और न जाने क्या क्या देता है ! ये समाज इन शिक्षकों का ऋणी है. इनको उचित सम्मान देना हम सब की जिम्मेदारी भी है और कर्तव्य भी. परन्तु साथ ही शिक्षकों को भी अपनी भूमिका को समझना होगा और पूर्णनिष्ठा के साथ इसका निर्वहन भी करना ही होगा ! तभी देश में शिक्षा का गिरता हुआ स्तर ऊपर उठ सकेगा और एक कर्तव्यनिष्ठ, जागरूक, निष्ठावान, प्रतिभावान नागरिक देश को मिल सकेगा जिस पर हम अभिमान कर सकेंगे और गर्व के

साथ एक बार फिर कह सकेंगे कि हम ही हैं जगतगुरु ! महात्मा कबीर ने सच ही कहा है– गुरु कुम्हार शिष्य कुम्भ है गढ़ी – गढ़ी काढ़े खोट, अंतर हाथ सहार दे बाहर मारे चोट .

भारत की वर्तमान शैक्षिक व्यवस्था में अध्यापक की कल्पना चिंतन करने के बजाय, चिंतित रहने वाले एक मनुष्य के रूप में की जा सकती है. समाज के एक जागरूक सदस्य के रूप में अध्यापकों से हमारी बड़ी अपेक्षाएं होती है. लेकिन उनके सहयोग में संकोच करने वाली सोच का दबदबा समाज में दिखायी देता है|

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप –

- एक शिक्षक की आकांक्षाओं की पहचान कर सकेंगे।
- शिक्षक शिक्षा एवं शिक्षक शिक्षा की समस्याओं से परिचित होसकेगें।
- शिक्षक की चिंताओं और संघर्षो का अन्वषण कर सकेगें।
- शिक्षक के संघर्षो का अन्वेषण करउन्हें साझा कर सकेंगे।
- शिक्षक अपनी मौलिक जिम्मेदारी से परिचित हो सकेंगे।
- अध्यापक अवधारणा का स्पष्टीकरण कर सकेंगे।

5.3 शिक्षकों की जिम्मेदारी

शिक्षकों की जिम्मेदारी

हमारे समाज में एक बड़े तबके को लगता है कि भले बच्चे उनके हैं, लेकिन उनको पढ़ाने कीजिम्मेदारी तो शिक्षकों की है. स्कूल के अध्यापकों के बारे में उपरोक्त सच्चाई लोगों से बातचीत में सामने आती है. दूसरी तरफ **निजी स्कूल के अध्यापकों की अपनी समस्याएं हैं**. उनके ऊपर लगातार बेहतर प्रदर्शन करने का दबाव होता है. निजी स्कूलों के अध्यापकों को कम वेतन के अभाव में तनावपूर्ण परिस्थितियों का सामना करना पड़ रहा है. अध्यापक एक ऐसा सामाजिक प्राणी है जो बेड़ियों में जकड़ा है. लेकिन उससे स्वतंत्र सोच वाले नागरिक बनाने की उम्मीद की जाती है. अध्यापक शैक्षिक प्रशासन के 'भययुक्त वातावरण' में जीता है और स्कूल में बच्चों के लिए **'भयमुक्त माहौल' बनाने का रचनात्मक काम** करता है. बच्चों को सवाल पूछने और जवाब देने के लिए प्रेरित करता है. इससे अध्यापकों के सामने मौजूद विरोधाभाषा विचारों के टकराव को समझा जा सकता है. इसके कारण अध्यापकों को वैचारिक अंतर्विरोध का सामना करना पड़ता है. भारत के विभिन्न राज्यों में अध्यापकों को तमाम अवसरों पर अधिकारियों की फटकार, कमीशन न देने पर देख लेने की ललकार और सत्ता परिवर्तन के साथ योजनाओं में बदलाव की मार भी झेलनी पड़ती है. वह शिक्षाविदों की बुनी

भूलभूलैया की प्रयोगशाला में लंबे समय से **अपने धैर्य की परीक्षा** दे रहा है. बच्चों को अपने सामने परीक्षा से भयमुक्त और पढ़ाई की जिम्मेदारी से मुक्त होते हुए देख रहा है. उसे बच्चों को पढ़ाना है. सिखाना है. प्रतियोगिता में आगे बढ़ाना है. उसे यह काम बिना किसी दण्ड और दबाव के करना है. यह सोच उनके लिए नई है. बच्चों के लिए अध्यापकों को अचानक से विनम्रता के साथ अपनी बात कहने के लिए प्रेरित करने वाला अंदाज भी नया है. यह बदलाव अध्यापकों से ज़्यादा जिम्मेदारी और नए सिरे से तैयारी की माँग करता है.

इसके लिए अध्यापकों को अतिरिक्त अध्ययन और कौशल विकास की जरूरत है ताकि वह बदलाव केनए दौर का नेतृत्व प्रभावशाली ढंग से कर सकें. **शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार** की भावी परिकल्पना को साकार करने में अपना योगदान दे सकें. अध्यापक की कोई भी अवधारणा उसे एक व्यक्ति और व्यवस्था के हिस्से के रूप में समझे बिना पूरी नहीं हो सकती है.एक अध्यापक समाज का हिस्सा होने के नाते पूर्वाग्रहों से संचालित होता है. लेकिन सही उदाहरण सामने आने पर खुद को बदलने की कोशिश भी करता है. वह अनेक पारिवारिक, सामाजिक और व्यवस्थागत आग्रहों से आतंकित है. **अतीत के स्वर्णिम दिनों को** याद करता है. अपने शिक्षकों की तारीफ करता है. अध्यापक जब अपने शुरुआती दिनों की ऊर्जा को याद करतें हैं तो उसकी आँखें चमक उठती हैं. लेकिन खुद को सैकड़ों बच्चों के बीच अकेला और असहाय पाकर उनका दिल बैठ जाता है. हमें उनको समझने की जरूरत है. उनके साथ संवाद करने और उनको सुनने की जरूरत है. समाज का नागरिक होने के नाते अगर आलोचना करते हैं तो अच्छे काम के लिए तारीफ भी करनी चाहिए. अगर हमें **बच्चों के बेहतर भविष्य के सपने** आकर्षित करते हैं तो हमें अध्यापकों के विचारों को भी जानने की कोशिश करनी चाहिए. उनसे सवाल पूछने चाहिए. उनके जवाब जानने चाहिए. सवाल और जवाब के बीच की खाई को पाटने के रचनात्मक सुझावों और रणनीतियां बनाने में उनको साझीदार बनाना चाहिए. बदलाव के संप्रत्यय को जमीनी स्तर पर लाने और क्रियान्वयन की सफलता सुनिश्चित करने के लिए ऐसा करना बेहद जरूरी है.

> अगर आप घर के समीप स्थित स्कूल की महिला शिक्षकों से बात करें तो आपको पता चलेगा कि वे भी किताबें पढ़ना चाहती हैं. अपने स्कूल और घर के बच्चों को अच्छी तरह पढ़ाना चाहती हैं. लेकिन घर की तमाम जिम्मेदारियों के बीच उनको खुद पढ़ने का समय नहीं मिल पाता. ऐसे में परिवार और स्कूल में सहयोगियों की भूमिका पर भी सवाल खड़े होते हैं? यहाँ से समाधान के सूत्र मिल सकते हैं. तो वहीं अध्यापकों से अक्सर सुनने को मिलता है कि बीते आठ-दस सालों में उनको दस नई **किताबें भी पढ़ने का मौका नहीं** मिला. यहां ध्यान देने वाली बात है कि स्कूल की लायब्रेरी में बड़ी संख्या में किताबों की उपलब्धता के बावजूद ऐसा हो रहा है. अक्सर सुनने में आता है कि स्कूलों में पढ़ाने वाले अध्यापकों को निजी स्कूलों में पढ़ने वाले खुद के बच्चों को पढ़ाने में परेशानी होती है. इसके मुख्यतौर पर दो कारण हो सकते हैं. पहला यह कि निजी

स्कूल की किताबों के स्तर काफी ऊंचा है. दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि **अध्यापकों के कौशल विकास** में पर्याप्त सुधार की जरूरत है. इसके लिए उनको नित नए विषयों को पढ़ने और समझने की कोशिश करनी होगी. इन तमाम चुनौतियों का समाधान परिवार के स्तर पर, समाज के स्तर पर, प्रशासन के स्तर पर और स्कूल के स्तर पर खोजा जाना चाहिए. बातचीत से नज़रिए में बदलाव होगा और सहयोग में संकोच की प्रवृत्ति कमजोर होगी और अध्यापकों को लोगों से सहयोग मिलने की राह भी खुलेगी. अध्यापकों से बातचीत के दौरान पता चलता है कि वे बदलाव के तमाम खोखले मॉडल्स से बखूबी परिचित है. लेकिन बदलाव की होड़ और हड़बड़ी से अपरिचित है. उसके सोचने की स्वतंत्रता निर्देशों के जंजाल और वास्तविक स्थिति से तालमेल के संघर्ष में तिरोहित हो जाती है. ऐसा ज़मीनी स्तर के अनुभवों में बार-बार सिद्ध होता है. राजस्थान के अध्यापकों को आज भी **लोकजुंबिश के दिनों की याद** आती है, जो प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में एकमात्र सफल योजना मानी जाती है. अध्यापक बदलाव के विरोधी नहीं हैं, वह नए विचारों और नवाचारों के खिलाफ नहीं है. वह सफलता की तमाम कहानियां लिखना चाहता है. बदलाव और समय के घूमते पहियों के साथ कदम से कदम मिलाकर चलना चाहता है. लेकिन आसपास के माहौल की निराशा का दीमक उसके रचनात्मक मन के कोने को धीरे-धीरे चाट रहा है. इससे उसे बाहर निकलने के लिए प्रोत्साहन की जरूरत है. अध्यापकों का कहना है कि शिक्षा के क्षेत्र में तो सबकुछ ऊपर से तय होता है. उनको अपने स्कूल के बच्चों की किताबों के बारे में सोचने का हक नहीं है. उसके स्कूल में क्या सुविधाएं होनी चाहिए और कितने अध्यापक होने चाहिए, इसके बारे में उसकी राय नहीं ली जाती. दोपहर के खाने में डूबती पढ़ाई और पढ़ाने कीजिम्मेदारियों के बीच उलझकर सवाल करते हैं, तो फटकार मिलती है. अगर एक लोकतांत्रिक व्यवस्था में शिक्षक को सवाल पूछने का हक नहीं है तो फिर वह कैसे दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र के भावी नागरिक माने जाने वाले **बच्चों में जिज्ञासा के भाव** को बढ़ावा देने का हौसला कर पाएगा. ऐसा माहौल उसे धीरे-धीरे यथास्थिति का समर्थक और बदलाव का विरोधी बना देता है. हम भूलवश परिस्थिति को नजरअंदाज करके अध्यापकों को यथास्थिति के लिए जिम्मेदार मानने लगते हैं. अध्यापक नई-नई योजनाओं के पैकेट में पुरानी चीज़ों को बदलता हुआ देखकर अपना सिर धुनता है कि आखिर वह क्या करे ताकि वर्तमान में अपना योगदान सुनिश्चित कर सके. ऐसे माहौल में वह उतना ही काम करना चाहता है ताकि काम चलता रहे. उनको प्रेरित करने वाला माहौल देने के लिए शिक्षाविदों, प्रशासन और समाज के प्रबुद्ध लोगों को आगे आना होगा. केवल अपनी कहने की बजाय उनको सुनने की भी कोशिश करनी होगी. इससे सामूहिक रूप से शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त तमाम पूर्वाग्रहों की मजबूत जड़ों को झकझोरने में मदद मिलेगी. हमें **शिक्षकों की क्षमता पर भरोसा** करना सीखना होगा और शिक्षकों को बच्चों के ऊपर भरोसा करना होगा. तभी स्कूल में भरोसे और विश्वास का माहौल बनाया जा सकेगा

5.4 अध्यापक की चुनौतियों

अध्यापककीचुनौतियां

भारत की वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में अध्यापक की कल्पना चिंतन करने की बजाय चिंतित रहने वाले एक मनुष्य के रूप में की जा सकती है। एक तरफ तो वह शैक्षिक प्रशासन के 'भययुक्त वातावरण' में जीता है और दूसरी तरफ स्कूल में बच्चों के लिए 'भयमुक्त माहौल' बनाने का काम भी करता है। भारत के विभिन्न राज्यों में अध्यापकों को तमाम अवसरों पर अधिकारियों की फटकार, कमीशन नहीं देने पर देख लेने की ललकार और सत्ता परिवर्तन के साथ योजनाओं में बदलाव की मार भी झेलनी पड़ती है। शिक्षा के क्षेत्र में होने वाले प्रयोगों की लंबी सूची बताती है कि हमारे अध्यापक शिक्षाविदों की बनाई भूलभूलैया में लंबे समय से अपने धैर्य की परीक्षा दे रहे हैं। वे बच्चों को अपने सामने परीक्षा से भयमुक्त और पढ़ाई की जिम्मेदारी से मुक्त होते हुए देख रहे हैं। उनको बच्चों को पढ़ाना है, सिखाना है और प्रतियोगिता में आगे भी बढ़ाना है। लेकिन उसे अब यह काम बिना किसी दण्ड और दबाव के करना है। यह विचार उनके लिए अटपटा सा प्रतीत होता है। उन्होंने अपने छात्र-जीवन में बच्चों की पिटाई को एक स्वीकार्य विचार के रूप में देखा और जिया था। अब उनसे इसके ठीक विपरीत व्यवहार की उम्मीद की जा रही है। ऐसे में शिक्षक खुद को दोराहे पर पाते हैं कि आखिर करें तो क्या करें?

यह परिवर्तन अध्यापकों से ज़्यादा जिम्मेदारी और नए सिरे से तैयारी की मांग करता है। इसके लिए अध्यापकों को अतिरिक्त अध्ययन और कौशल विकास की जरूरत है ताकि वह बदलाव के नए दौर का नेतृत्व प्रभावशाली ढंग से कर सकें। अपनी एक किताब में शिक्षाविद् प्रोफेसर कृष्ण कुमार कहते हैं 'शिक्षा में दोहरी क्षमता होती है, यह विद्यार्थी को गढ़ने के अलावा अध्यापक को भी गढ़ती है। शिक्षाविज्ञान में यह बात स्वीकार की गई है, मगर इसे कम ही लोग गंभीरता से लेते हैं। यह कहना एक चालू मुहावरा भर रह गया है कि पढ़ने वाले के साथ-साथ साथ पढ़ाने वाला भी सीखता है।' इस कथन में वह वास्तविक स्थिति की तरफ संकेत करते हैं। नए दौर में तेजी से बदलते परिवेश में एक शिक्षक को नए सिरे से चीजों को समझने और सीखने की आवश्यकता है। हमें भी अध्यापक और उसकी जटिल होती भूमिका को नए सिरे समझने की कोशिश करनी चाहिए। उनके साथ संवाद करना चाहिए और उनको सुनना चाहिए कि आखिर उनके मन में शिक्षा, समाज और आज के बदलाव को लेकर क्या हलचल हो रही है? अगर समाज का हिस्सा होने के नाते हम उनकी आलोचना करते हैंतो अच्छे काम के लिए तारीफ भी करनी चाहिए। अगर हमें बच्चों के बेहतर भविष्य के सपने आकर्षित करते हैं तो हमें अध्यापकों के विचारों को भी जानने की कोशिश करनी चाहिए। अक्सर सुनने में आता है कि सरकारी स्कूलों में पढ़ाने वाले अध्यापकों को निजी स्कूलों में पढ़ने वाले अपने बच्चों को पढ़ाने में परेशानी होती है। इसके मुख्यतौर पर दो कारण हो सकते हैं।

पहला यह कि निजी स्कूल की किताबों का स्तर काफी ऊंचा है और दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि अध्यापकों के कौशल विकास में पर्याप्त सुधार की जरूरत है। इसके लिए उनको नित नए विषयों को पढ़ने और समझने की कोशिश करनी होगी। इन तमाम चुनौतियों का समाधान

परिवार,स्कूल समाज और प्रशासन के स्तर पर खोजने की आवश्यकता है। राजस्थान के अध्यापक आज भी 'लोकजुंबिश' के दिनों का जिक्र करते हैं। यह प्राथमिक शिक्षा की एकमात्र सफल योजना मानी जाती है। इसकी सफलता का श्रेय कुशल प्रशासक और शिक्षाविद् अनिल बोर्डिया के नेतृत्व को दिया जाता है।

उन्होंने राजस्थानी भाषा के जाने-माने साहित्यकार विजयदान देथा को भी अपनी इस मुहिम में शामिल किया था। इसकी कार्यशालाओं में विजयदान देथा भी शामिल होते थे। इस बात का उल्लेख विजयदान देथा के एक पत्र में मिलता है, जिसमें उन्होंने लोकजुंबिश परियोजना का जिक्र करते हुए इसके कार्यशाला की तारीफ की है। इसके आधार पर कहा जा सकता है कि अध्यापक बदलाव का विरोधी नहीं है, नए विचारों के खिलाफ नहीं है। वह सफलता की तमाम नई कहानियां लिखना चाहता है। बदलाव और समय के घूमते पहियों के साथ कदम से कदम मिलाकर चलना चाहता है। लेकिन आसपास के माहौल की निराशा का दीमक उसके रचनात्मक मन के कोने को धीरे-धीरे चाट रहा है। इससे बाहर निकलने के लिए अध्यापकों को प्रोत्साहन और सहयोग की जरूरत है। सरकारी स्कूल के अधिकतर अध्यापक कहते हैं कि शिक्षा के क्षेत्र में तो सबकुछ ऊपर से तय होता है। हमें जैसा निर्देश मिलता है वैसा कर देते हैं। वे कहते हैं हमको अपने स्कूल के बच्चों की किताबों के बारे में सोचने का अधिकार नहीं है। हमारे स्कूल में क्या सुविधाएं होनी चाहिए और कितने अध्यापक होने चाहिए इसके बारे में हमारी राय लेने की जरूरत नहीं समझी जाती। अगर दोपहर के खाने (एमडीएम) और पढ़ाने की जिम्मेदारियों के बीच उलझकर सवाल करते हैं तो फटकार मिलती है। अगर एक लोकतांत्रिक व्यवस्था में शिक्षक को सवाल पूछने का हक नहीं है तो फिर वह कैसे दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र के भावी नागरिकों में जिज्ञासा के भाव को बढ़ावा देने का काम कर पाएगा?

आज का अध्यापक नई-नई योजनाओं के पैकेट में पुरानी चीजों को बदलता हुआ देखकर अपना सिर धुनता है कि आखिर वह क्या करे? ऐसे माहौल में वह उतना ही काम करना चाहता है ताकि काम चलता रहे। उनको प्रेरित करने वाला माहौल देने के लिए शिक्षाविदों, प्रशासन और समाज के प्रबुद्ध लोगों को आगे आना होगा। केवल अपनी कहने की बजाय अध्यापकों को सुनने की भी कोशिश करनी होगी। इससे शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त तमाम पूर्वाग्रहों की मजबूत जड़ों को झकझोरने में मदद मिलेगी। इसके साथ-साथ हमें शिक्षकों की क्षमता के ऊपर भरोसा करना सीखना होगा और शिक्षकों को भी बच्चों के ऊपर भरोसा करना होगा तभी हमारे स्कूलों में एक अच्छा माहौल बनायाजा सकेगा. ऐसा माहौल बच्चों की शिक्षा के अनुकूल होगा और अध्यापकों को भी अपने काम को जिम्मेदारी के साथ करने के लिए प्रेरित करेगा।

भारत की वर्तमान शैक्षिक व्यवस्था में अध्यापक की कल्पना चिंतन करने के बजाय, चिंतित रहने वाले एक मनुष्य के रूप में की जा सकती है. समाज के एक जागरूक सदस्य के रूपमें अध्यापकों से हमारी बड़ी अपेक्षाएं होती है. लेकिन उनके सहयोग में संकोच करने वाली सोच का दबदबा समाज में दिखायी देता है.

5.5 शिक्षा समुदाय/शिक्षकों के लिए 11 बिन्दुओं की शपथ

1. सर्वप्रथम मैं शिक्षण से प्यार करता हूँ। शिक्षण मेरी आत्मा होगी।
2. मै यह जानता हूँ कि मैं न केवल शिक्षार्थियों को बल्कि जोशीले युवाओं को भी आकार देने के लिए जिम्मेदार हूँ, जो पृथ्वी के नीचे, पृथ्वी पर और पृथ्वी के ऊपर एक शक्तिशाली संसाधन हैं। शिक्षण के महान उद्देश्य के लिए मैं जिम्मेदार होऊंगा।
3. मैं एक सर्वश्रेष्ठ अध्यापक बनने की कोशिश करूंगा जिसके लिए मैं अपने विशेष शिक्षण तरीकों को अपनाऊंगा जिसके सर्वोत्तम प्रदर्शन किया जा सके।
4. सभी शिक्षार्थियों के साथ मेरा व्यवहार माता, पिता, बहन और भाई के समान दयालु व स्नेहपूर्ण रहेगा।
5. मैं अपने जीवन को इस प्रकार ढालूँगा कि मेरा जीवन अपने आप में मेरे शिक्षार्थियों के लिए एक संदेश हो।
6. मैं अपने शिक्षार्थियों और बच्चों के प्रश्न पूछने और जानकारी की भावना विकसित करने के लिए प्रोत्साहित करूंगा ताकि वे एक जागरूक प्रबुद्ध नागरिक के रूप में उभरें।
7. मैं सभी शिक्षार्थियों के साथ समान व्यवहार करूंगा और किसी भी धर्म, समुदाय या भाषा के कारण किसी प्रकार का भेदभाव नहीं करूंगा।
8. मैं अपनी शिक्षण क्षमताओं को लगातार बढ़ाता रहूँगा ताकि अपने शिक्षार्थियों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान कर सकूँ।
9. मैं बड़ी शान से अपने शिक्षार्थियों की सफलताओं का जश्न मनाऊँगा।
10. मैं जानता हूँ कि एक शिक्षक होने के नाते राष्ट्र के विकास की सभी पहल शक्तियों में मैं एक महत्वपूर्ण योगदान दे रहा हूँ।
11. मैं स्वयं को महान विचारों से भरने और सोच तथा विचारों की महानता का प्रसार करने के लिए प्रयासरत रहूँगा।

ग्रीक के एक प्राचीन अध्यापक के कथन की याद दिलाता है :-

"मुझे सात साल के लिए एक बच्चा दे दो; उसके बाद भगवान या शैतान यह बच्चा ले लें। वे इस बच्चे में परिवर्तन नहीं ला सकते।"

यह महान/श्रेष्ठ शिक्षकों की शक्ति को दर्शाता है। सच्ची शिक्षा, उनके माहौल/आसपास में रहने वाले नागरिकों से जुडने और जिस स्थान (ग्रह) पर हम रहते है उसकी सच्चाई को समझने व प्रतिदिन की घटनाओं का अर्जन है। मैं महान दार्शनिक डॉ. एस. राधाकृष्णन द्वारा विशेष रूप से शिक्षार्थियों और शिक्षकों के लिए कही बात के उदाहरण देना चाहता हूँ :-

"मानव की सदैव मानव की आवश्यकता रहती है और शिक्षक युवाओं को मौलिक शक्ति और मानव की सार्थकता का विशार प्रदान करके, उसे आध्यात्मिक गरिमा, एक महान राष्ट्रीय संस्कृति और एक सर्वसमभाव युक्त मानवता प्रदान कर इस आवश्यकता की पूर्ति कर सकता है "

5.6 सारांश

मानव एक चिन्तनषील प्राणी है। वह हमेशा मानव विकास के बारे में चिन्तन करता रहता है। उसके इस चिन्तन का वह स्वयं व आने वाली पीढी लाभ उठाती है, लेकिन यह चिन्तन तभी सम्भव हो पाता है जब उसका मानसिक व शारीरिक स्वास्थ्य स्वस्थ बना रहे। यदि व्यक्ति किसी मानसिक रोग से ग्रस्त हो जाता है तब उसकी कार्यकुश्लता में कमी महसूस की जा सकती है। आज के तनाव व भागदौड़ भरी जिन्दगी में व्यक्ति स्वयं अपने स्वास्थ्य व खाने-पीने की ओर ध्यान न देकर केवल कार्य को महत्व दे रहा है, जिससे जिससे उसके स्वास्थ्य में गिरावट आ जाती है। शारीरिक स्वास्थ्य का मानसिक स्वास्थ्य पर भी गहरा प्रभाव पड़ता है। मानसिक अस्वस्थता के कारण व्यक्ति के सम्मान, सामाजिक सहयोग, कार्यकुश्लता, शिक्षण कार्य, कार्यक्षमता आदि में कमी पायी जाती है। इस कमी को पूरा करने के लिए स्वास्थ्य मानव विज्ञान व्यक्ति को स्वस्थ बनाने व रोग से निदान करने के उपाय बताता है, जिससे वह व्यक्ति निरोगी होकर पुनः कार्य करने लग जाता है। वह सामान्य व्यक्तियों की तरह अपना व्यवहार करता है। आज किसी भी बीमारी का उपचार सम्भव है, यदि हम उसका सही समय पर समाधान कर सके।

5.7 शब्दावली

1. **मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान (Mental Hygiene)** -मानसिक रोगों का उपचार करने वाला विज्ञान अमानवीय व्यवहार: ऐसा व्यवहार जो व्यक्ति के साथ निर्दयता, क्रूरता, पषुता जैसा व्यवहार अमानवीय व्यवहार है।
2. **आत्म ज्ञान (Self Knowledge)** -अपनी इच्छा, प्रेरणा, भाव, आकांक्षाओं आदि का पूर्ण ज्ञान।
3. **आत्म श्रद्धा (Self Esteem)** - आत्मविष्वास, आत्मबल अपने भावों के स्वीकार करने की क्षमता, आत्म श्रद्धा कहलाती है।

5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. अ-सत्य
2. ब-1911
3. द-अमरीका

4. अ-सत्य
5. ब-असत्य
6. लैडेल
7. हाँ
8. उपचार कराना चाहिए,
9. हाँ
10. संतुलित पाठ्यक्रम
11. सभी के द्वारा
12. हाँ
13. असत्य
14. असत्य
15. असत्य

5.9 संदर्भ ग्रंथ

1. सिंह अरूण कुमार (1998), शिक्षा मनोविज्ञान, भारती भवन, पटना, पृष्ठ 593-605
2. पाठक पी.डी., (2005) शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
3. सारस्वत (डां) मालती (1997) शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा, आलोक प्रकाश, आगरा, पृष्ठ-524-335
4. शार्मा डां वी.एल. सक्सेना, डा. आर.एन. शिक्षा शास्त्र, सूर्या प्रकाश्न, मेरठ।

5.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. शिक्षा मनोविज्ञान, सिंह अरूण कुमार (1998), भारती भवन, पटना, पृष्ठ 593-605
2. शिक्षा मनोविज्ञान, पाठक पी.डी., (2005) विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
3. शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा, सारस्वत (डां) मालती (1997) आलोक प्रकाश, आगरा, पृष्ठ-524-335
4. शिक्षा शास्त्र, शर्मा डां वी.एल. सक्सेना, डा. आर.एन. सूर्या प्रकाश्न, मेरठ।
5. शोध पत्र पत्रिकाएं, जरनल, इन्टरनेट, सीडी, टेप आदि।

5.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों की विशेष्ताओं का वर्णन किजिए।
2. बालकों के मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाने में शिक्षक की भूमिका का वर्णन किजिए।
3. मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ बताते हुए इसके प्रमुख उद्देश्यो का वर्णन लिखिए।
4. मानसिक स्वास्थ्य की परिभाशाएं लिखिए व मानसिक स्वास्थ्य की आवश्यकता पर एक विस्तृत लेख लिखिए।
5. मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारकों का वर्णन लिखिए।
6. मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान के उद्देश्यो का विस्तृत वर्णन किजिए।
7. मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान के प्रमुख तथ्यों का विस्तृत वर्णन किजिए।

इकाई-6 छात्रों की सुखावद स्थिति में सुविधा प्रदाता तथा सहयोगी के रूप में शिक्षक की भूमिका को समझना

Understanding the Role of Teacher as Facilitator and Partner in Well-being among Learners

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 सुविधा प्रदाता तथा सहयोगी के रूप में शिक्षक की भूमिका : एक सैद्धांतिक रूपरेखा
6.3.1 सुविधा प्रदाता तथा शिक्षक में मूलभूत अंतर
6.3.2 सुविधा प्रदाता बनने हेतु शिक्षक के द्वारा किये जाने वाले महत्वपूर्ण प्रयास
6.4छात्र सुखावद स्थिति (Student Well-Being) की परिभाषा तथा उसके घटक
6.5छात्र सुखावद स्थिति के महत्वपूर्ण घटक
6.5.1 शारीरिक कल्याण
6.5.2 संज्ञानात्मक कल्याण
6.5.3 सामाजिक कल्याण
6.5.4 मानसिक कल्याण
6.5.5 आध्यात्मिक कल्याण
6.6 छात्रों में सुखावद स्थिति को लाने हेतु अध्यापकों का सहयोग करने वाली गतिविधियाँ
6.6.1छात्र कल्याण एवं सुखावद स्थिति का मूलभूत ज्ञान और समझ
6.6.2अधिगम का वातावरण
6.6.3 छात्रों में अपनेपन की भावना का विकास
6.6.4 छात्रों में नेतृत्व तथा आत्मविश्वास का विकास
6.6.5. माता-पिता तथा समुदाय का सहयोग
6.7 सारांश
6.8 शब्दावली
6.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

6.11 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना:

शिक्षा को छात्रों के स्वास्थ्य तथा उनके कल्याण से जोड़ा जाता है तथा उसका इन दोनों ही में महत्वपूर्ण योगदान माना गया है। विद्यालय का वातावरण निश्चित रूप से छात्र अधिगम तथा उसके व्यक्तित्व को प्रभावित करता है। तात्पर्य यह कि कोई भी छात्र कैसा नागरिक बनेगा यह उसकी शिक्षा पर भी निर्भर करता है। कई शोध इस विषय के साक्षी हैं कि विद्यार्थियों के विद्यालय में अनुभव उनके सामाजिक, भावनात्मक, व्यवहारिक तथा शारीरिक विकास की नींव रखते हैं। छात्रों की सुखावद स्थिति तथा उनके विद्यालय में हुए अनुभवों के बीच बड़ा गहरा सम्बन्ध होता है परन्तु फिर भी इसकी बहुत अपर्याप्त समझ शिक्षकों के बीच पायी जाती है। National Curriculum Framework for Teacher Education, 2009(NCFTE) में स्पष्ट किया गया है कि शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है छात्रों के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों जैसे शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, सामाजिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक का संपूर्ण विकास करना। इन सभी के बीच एक सामंजस्य ही छात्र को सुखावद स्थिति प्रदान करता है जिससे उसके संतुलित व्यक्तित्व का निर्माण हो सकता है। हाल के वर्षों में छात्रों के कल्याण को मापने तथा उसके आकलन पर महत्व दिया जाने लगा है। इसका मुख्य कारण शिक्षा की सार्वजनिक नीति में बदलाव तथा शिक्षकों की जवाबदेही में वृद्धि होना है। छात्र कल्याण के मापन से विभिन्न कार्यक्रमों द्वारा अर्जित परिणामों का भी आकलन हो सकता है। शोध से यह निष्कर्ष निकलता है कि जो छात्र सहज सुखावद स्थिति का अनुभव करते हैं उनका अधिगम तथा विकास भी प्रभावी होते हैं। वह अनुदेश के विभिन्न विधियों को आत्मसात करते है। उनका स्वास्थ्य तथा सामाजिक व्यवहार भी मानदंडों के अनुसार होता है। वयस्क होकर एक सामाजिक तथा राष्ट्र के उत्तरदायी नागरिक के रूप में विकसित होने की उनकी संभावनाएं अधिक होती हैं।प्रस्तुत पाठ इसी विषय से सम्बन्धित है।

6.2 उद्देश्य :

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत विद्यार्थी

1. सुविधा प्रदाता तथा सहयोगी के रूप में शिक्षक की भूमिका की चर्चा कर सकेंगे।
2. सुविधा प्रदाता बनने हेतु शिक्षक द्वारा किए जाने वाले प्रयासों को चिह्नित कर सकेंगे।
3. छात्रों की सुखावद स्थिति को परिभाषित कर सकेंगे।
4. छात्रों की सुखावद स्थिति के घटकों का वर्णन कर सकेंगे।

5. शिक्षक द्वारा किये जाने वाली उन गतिविधियों का वर्णन कर सकेंगे जिनसे छात्रों की सुखावद स्थिति पर सकारात्मक प्रभाव पड़े।

6.3 सुविधा प्रदाता तथा सहयोगी के रूप में शिक्षक की भूमिका : एक सैद्धांतिक रूपरेखा:

यहाँ सुविधाप्रदाता से आशय उस व्यक्ति से है जो किसी कार्य को करने में सहायता प्रदान कर उसे सुगम बनाये। सुविधाप्रदाता लक्ष्य का निर्णय नहीं करता अपितु वह उस निर्धारित लक्ष्य तक पहुँचने में उस समूह की मदद करता है। वह किसी भी कार्य को करने की प्रक्रिया तय करने में समूह की सहायता करता है न कि स्वयं कार्य करता है। सुविधाप्रदाता के रूप में एक शिक्षक का महत्वपूर्ण कार्य है कि वह किसी भी लक्ष्य तक पहुँचने की प्रक्रिया निर्धारित करे ताकि छात्रों का उस तक पहुँचना सुगम बन सके। इस कार्य को सरलीकरण भी कह सकते हैं। देखा जाये तो सीखने के चार घटक हैं जो एक दूसरे के पूरक भी होते हैं। यह हैं; अनुभव, कल्पना, विचार और व्यवहार। छात्र अनुभव को उनके सीखने की नींव माना जा सकता है। इसलिए शिक्षक द्वारा प्रस्तुत सैद्धांतिक ज्ञान को विद्यार्थियों का अपने अनुभवों से जोड़ना महत्वपूर्ण माना जाता है। कल्पना हमारे सहज ज्ञान से संबंधित है। वैचारिक अधिगम बौद्धिक एवं मौखिक स्तर को दर्शाता है जो कि वाक्यों द्वारा व्यक्त किया जाता है। व्यवहारिक ज्ञान का अर्थ है किसी कौशल को सीखना तथा उसमें निपुण होना। शैक्षणिक अधिगम को अन्य छात्रों का सहयोग भी सुगम बनाता है। समूह आधारित शिक्षा, अभ्यास तथा अनुभव द्वारा किया गया अधिगम, सीखने को सुविधाजनक बनाने हेतु महत्वपूर्ण होते हैं।

6.3.1 सुविधाप्रदाता तथा शिक्षक में मूलभूत अंतर:

सुविधा प्रदाता के रूप में शिक्षक छात्रों को एक पूर्व निर्धारित लक्ष्य की तरफ मोड़ता है। नेतृत्व करने की क्षमता एक अच्छे सुविधा प्रदाता का मुख्य लक्षण है। हर शिक्षक के अन्दर यह गुण होना ही चाहिए। आवश्यकता है इसे अच्छी तरह समझ कर आत्मसात करने की। जब भी हम किसी ऐसे व्यक्ति के विषय में सोचते हैं जो नेतृत्व करता हो तो सबसे पहले एक शिक्षक का ही ध्यान आता है। परन्तु एक कक्षा में शिक्षण करने तथा एक समूह के कार्यों को सुगम बनाने में अंतर है। एक सुविधा प्रदाता और शिक्षक के बीच अंतर क्या है? यह उनके द्वारा कक्षा में संपादित कार्यों से स्पष्ट हो सकता है।

1. शिक्षक मुख्यतः शिक्षण करता है। कक्षा में वह एक प्रभारी की तरह कार्य करता है। परन्तु एक सुविधा प्रदाता समूह को किसी पूर्व निर्धारित कार्य को करने में सहायता करता है।
2. शिक्षक एक विशेषज्ञ की तरह अपने विषय में पारंगत होता है तथा इसे छात्रों तक स्थानांतरित करने का प्रयास करता है। परन्तु सुविधा प्रदाता यह जानने का प्रयास करता है कि विद्यार्थी क्या करना चाहते हैं।
3. शिक्षक अपने पाठ्यक्रम के विषय में जानता है। परन्तु सुविधा प्रदाता छात्रों के पूर्वज्ञान के आधार पर छात्रों का मार्गदर्शन करता है तथा उनसे सीखता भी है।
4. शिक्षक छात्र-गतिविधियों को पूर्व नियोजित करता है जबकि सुविधा प्रदाता छात्रों से प्रश्न कर के निर्णय लेता है कि वह क्या करना चाहते हैं।
5. शिक्षक छात्रों के अधिगम को मापने हेतु उनका मूल्यांकन करता है, परन्तु सुविधा प्रदाता समूह को स्वयं का मूल्यांकन करने देता है। उसके पश्चात ही वह निश्चय करता है कि उन्होंने कितना अच्छा किया है।

6.3.2 सुविधा प्रदाता बनने हेतु शिक्षक के द्वारा किये जाने वाले महत्वपूर्ण प्रयास:

1. शिक्षक को यह समझना चाहिए कि सुविधा प्रदान करना भी एक तरह का सीखना है तथा इससे होने वाले शोर तथा गड़बड़ी से उसको विचलित नहीं होना चाहिए।
2. शिक्षक को छात्रों के दैनिक अनुभवों को प्रेरणादायी तथा सुखद बनाना चाहिए।
3. शिक्षक को छात्रों के पूर्व–ज्ञान का अनुमान होना चाहिए।
4. शिक्षक के अंदर प्रतिदिन कुछ नया सीखने तथा सिखाने का उत्साह होना चाहिए।
5. शिक्षक को पाठ को दिलचस्प बनाना चाहिये।
6. शिक्षक को एक अच्छा श्रोता होना चाहिए।
7. शिक्षक को निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति हेतु छात्रों को प्रतिनिधि बना उनका सशक्तिकरण करने का अभ्यास होना चाहिए।
8. शिक्षक को छात्रों की आवश्यकताओं को समझना चाहिए।
9. शिक्षक को सही प्रश्नों का निर्धारण करना चाहिए ।
10. शिक्षक को रचनात्मक होकर पाठ्यक्रम में विद्यार्थियों के अनुसार गतिविधियों को सम्मिलित करना चाहिए।

11. शिक्षक को व्यावसायिक प्रशिक्षण जैसे सेमिनार आदि में भाग लेकर अपने व्यावसायिक विकास पर ध्यान देना चाहिए।
12. शिक्षक को अपने प्रदर्शन पर चिंतन तथा उसका मूल्यांकन अवश्य करना चाहिए।
13. शिक्षक को पाठ्यक्रम में छात्र सुलभ विविध गतिविधियों को सम्मिलित करना चाहिए।
14. शिक्षक को नवीनतम तकनीकों का प्रयोग करना चाहिए।
15. छात्रों के प्रति अपने व्यवहार को संवेदनशील तथा स्नेहपूर्ण बनाए रखना चाहिए।
16. शिक्षक को छात्रों में स्वयं सीखने की प्रवृति का निर्माण करना चाहिए।
17. शिक्षक को जिज्ञासा तथा रचनात्मकता के उपयोग द्वारा विद्यार्थियों के ध्यान को आकर्षित करना चाहिए।
18. शिक्षा हमेशा छात्र-केन्द्रित हो, इसका सदैव ध्यान रखना चाहिए।
19. हर छात्र को अलग तथा विशेष मानते हुए उसका आदर करना चाहिए।
20. शिक्षक को किसी भी स्थिति में छात्र का मज़ाक नहीं उड़ानाचाहिए जिससे उसमें कुंठा तथा अधिगम के प्रति अरुचि उत्पन्न हो सकती है।
21. अपने छात्रों को सक्रिय तथा व्यापक रूप से सुनना चाहिए।
22. शिक्षक को छात्रों को बीच में टोकना नहीं चाहिए। उन्हें उत्तर देने से पहले उनकी बातों को ध्यान से सुनना चाहिए।
23. छात्रों के प्रति अध्यापक के व्यवहार को सहानुभूति पूर्ण होना चाहिए।
24. प्रत्येक छात्र की विशेषता के प्रति अध्यापक को सजग होना चाहिए।
25. दैनिक जीवन से उदाहरण लेकर शिक्षक को छात्रों को प्रेरित करना चाहिए।
26. छात्र सुगम भाषा का प्रयोग करना चाहिए। हर शिक्षक को क्लिष्ट शब्दों का अर्थ छात्रों को समझाना चाहिए।
27. शिक्षक से सुविधा प्रदाता बनने पर ध्यान देना चाहिए जिससे छात्र कल्याण हो सके।

अभ्यास प्रश्न:

1. सुविधा प्रदाता शब्द के अर्थ को उजागर कीजिये।
2. अधिगम के चार घटकों के नाम बताइए।
3. सुविधा प्रदाता तथा शिक्षक के बीच अंतर को स्पष्ट कीजिये।

6.4 छात्र सुखावद स्थिति (Student Well-Being) की परिभाषा तथा उसके घटक:

'छात्रों की सुखावद स्थिति' इस शब्द का प्रयोग प्रायः बाल विकास के अध्ययन में किया जाता है परन्तु इसे विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया गया है। अतः विद्यालय में छात्रों को इसके मानक अनिश्चित ही हैं। कभी-कभी इस शब्द की जगह छात्र कल्याण एवं मानसिक स्वास्थ्य जैसे शब्द ले लेते हैं। जबकि ये एक बहुआयामी समग्र अवधारणा है। इसे छात्र–कल्याण के रूप में समझा जा सकता है। प्रत्येक विद्यार्थी के समाज में महत्वपूर्ण योगदान देने तथा अपने कार्य को भली-भाँति करने की क्षमता तथा अपने वातावरण से सामंजस्य स्थापित करने को उसके कल्याण से जोड़कर देखा जा सकता है। छात्रों में सुखावद स्थिति होने के कुछ महत्वपूर्ण लक्षण निम्न प्रकार के हो सकते है :

विद्यार्थियों में;

1. आत्मविश्वास, आशावाद, आत्मसम्मान तथा उत्तरदायित्व होना।
2. नैतिकता के प्रश्नों पर निर्णय लेने की क्षमता।
3. समस्या का विश्लेषण कर उसे सुलझाने की क्षमता।
4. अपने विचारों तथा सूचनाओं को सफलतापूर्वक दूसरों तक पहुँचाना।
5. दूसरों के साथ सहयोग कर एवं संगठित होकर कक्षा में कुशलतापूर्वक कार्य करना।

छात्र सुखावद स्थिति की परिभाषा निम्नलिखित हैं :

"विद्यार्थियों में शारीरिक, भावनात्मक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक क्षमता का आभास ही उनकी सुखावद स्थिति की ओर इंगित करता है।"

अभ्यास प्रश्न

4. छात्रों में सुखावद स्थिति को परिभाषित कीजिये।
5. छात्रों में सुखावद स्थिति के लक्षणों का वर्णन कीजिये।

6.5 छात्र सुखावद स्थिति के महत्वपूर्ण घटक:

6.5.1 शारीरिक कल्याण :"शारीरिक" जीवन के उन हिस्सों को इंगित करता है हमारे शरीर की भौतिक इंद्रियों और संवेदी अनुभव से संबंधित हैंतथा भौतिक और प्राकृतिक वातावरण से सामंजस्य स्थापित (जैसे, निर्माण करना, अलग करना, विवरण, उत्पादन) करने में सहायता करते हैं।शारीरिक कल्याण

के क्षेत्र तथा इसके सूचक हैं छात्रों का पोषण, शारीरिक गतिविधि, शारीरिक सुरक्षा तथा उनका स्वास्थ्य । विद्यालय में पाठ्यक्रम के माध्यम से छात्रों को उचित स्वास्थ्य सम्बंधित जानकारी दी जानी चाहिये । विद्यालय में छात्र के शारीरिक कल्याण हेतु उसके पोषण तथा गतिविधि पर शिक्षक को हमेशा ध्यान देना चाहिए । छात्रों में कुछ शारीरिक लक्षण जैसे पेट दर्द, सिरदर्द जैसी समस्याओं को शिक्षक को अनदेखा नहीं करना चाहिए । शिक्षक को एक सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुए छात्रों की भावनात्मक तथा शारीरिक सुरक्षा हेतु सदैव तत्पर रहना चाहिए । उसे पाठ्यक्रम में ऐसी गतिविधियाँ रखनी चाहिये जिससे छात्रों का शारीरिक विकास हो । खेल तथा व्यायाम को प्रतिदिन के पाठ्यक्रम में स्थान देकर छात्रों को शारीरिक रूप से दृढ़ किया जा सकता है । कक्षा में ऐसी जगहों पर ध्यान देना चाहिए जहाँ विद्यार्थियों को चोट लग सकती है तथा विद्यार्थियों को किसी भी प्रकार की हानि से बचाने के भरपूर प्रयास करने चाहिए।

छात्रों को शारीरिक तथा मानसिक सुरक्षा प्रदान करने में भी शिक्षक का महत्वपूर्ण योगदान हो सकता है । छात्रों को स्वतंत्र रूप से अपनी बात कहने का मौका देकर शिक्षक उनको सम्बल दे सकता है । विभिन्न दैनिक शारीरिक गतिविधियों तथा स्वास्थ्यवर्धक भोजन की नीतियों को प्रभावी रूप से लागू कर के शिक्षक छात्रों के भौतिक कल्याण को सुनिश्चित कर सकते हैं ।

6.5.2 संज्ञानात्मक कल्याण:

विद्यालय में होने वाली शिक्षा, गुणवत्ता कार्यक्रम, पाठ्यक्रम, शिक्षकों का नेतृत्व, छात्र उपलब्धि, छात्र अनुबंध के तरीके इत्यादि का छात्रों की सुखावद स्थिति पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है । छात्रों के संज्ञानात्मक कल्याण के लिए एक शिक्षक निम्न प्रयास कर सकता है;

1. अधिगम के ऐसे तरीकों का चयन जिससे छात्र पूर्व निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति कर सकें ।
2. विद्यार्थियों की कठिन कार्यों को करने की क्षमता को विकसित करने हेतु विभिन्न कार्यक्रमों को पाठ्यक्रम में संलग्न करने का प्रयास कर सकते हैं ।
3. प्रयोग एवं आश्चर्य का भरपूर उपयोग कर छात्रों के आत्म-विश्वास तथा उपलब्धि में वृद्धि करने का प्रयास कर सकते हैं ।

6.5.3सामाजिक कल्याण:

विद्यालय में सकारात्मक मानसिक-सामाजिक वातावरण छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य तथा कल्याण को प्रभावित कर उनके अधिगम में सुधार लाता है । यदि कोई छात्र भावनात्मक रूप से सक्षम है तो वह भविष्य में प्रभावी सामाजिक व्यवहार कर पायेगा तथा शैक्षिक गतिविधियों में भी सक्षम होगा ।

भावनात्मक तथा सामाजिक रूप से शिक्षक को छात्रों का ध्यान रखना चाहिए जिससे उनका कल्याण हो। शिक्षक का कर्तव्य है की वह एक ऐसे वातावरण का निर्माण करें जो हिंसा तथा मानसिक उत्पीड़न विहीन हो। उसे छात्रों को अपनी मनःस्थिति कहने के अवसर देने चाहिए। शिक्षक को अपना व्यवहार मित्रवत रखना चाहिए जिससे विद्यार्थी सुरक्षित महसूस कर सकें। सकारात्मक सामाजिक वातावरण को बनाने में शिक्षक का पक्षपात विहीन व्यवहार भी कारगर साबित होता है। उसे सभी बच्चों को समान अवसर प्रदान करना चाहिए तथा भाषा, लिंग, रंग, आर्थिक रूप के आधार पर किसी भी छात्र से भेद-भाव नहीं करना चाहिए। शोध में यह पाया गया है की जो छात्र विद्यालय से जुड़े होते हैं, वह धूम्रपान, नशीले पदार्थ के सेवन इत्यादि से दूर रहते हैं। ऐसे में शिक्षक को स्वयं एक आदर्श उदाहरण के रूप में स्थापित करने की आवश्यकता है।

6.5.4मानसिक कल्याण:

" मानसिक" जीवन के उस हिस्से से सम्बंधित है जो मुख्यतः अनुभूति और तर्कसंगत मन की प्रक्रियाओं को दर्शाता है (उदाहरण के लिए सोचना, योजना बनाना, मूल्यांकन करना इत्यादि)। छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य का प्रतिनिधित्व उनकी मनोवैज्ञानिक तथा भावनात्मक स्थिति करती है। मानसिक स्वास्थ्य के सकारात्मक एवं नकारात्मक द्योतक हैं: आत्म-नियंत्रण, शैक्षिक योग्यता तथा अवसाद ।बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य पर कई चीज़ें प्रभाव डालती हैं। जैसे कि अभिभावकों की आर्थिक स्थिति। देखा गया है कि निम्न आर्थिक वर्ग वाले बच्चों की अपेक्षा उच्च आर्थिक वर्ग वाले बच्चे मानसिक रूप से अधिक स्वस्थ होते है। आत्मविश्वास तथा कुछ कर दिखने की क्षमता भी बच्चे के मानसिक स्वास्थ्य, उसके सामाजिक संबंधों तथा विद्यालय में उसकी उपलब्धियों पर अनुकूल प्रभाव डालते हैं। ऐसे में शिक्षक को किसी भी छात्र में पनप रहे अवसाद के लक्षणों को पहचानने में सक्षम होना चाहिए। उसे छात्रों का उचित मार्गदर्शन कर उनके आत्मविश्वास को बढ़ावा देते रहना चाहिए। जो छात्र कक्षा में चुपचाप रहते हों, उनसे मित्रवत व्यवहार कर उनसे पूछते रहना चाहिए कि उस बच्चे को कोई परेशानी तो नहीं।

विद्यालय में छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य को नकारात्मक रूप से प्रभावित करने वाले कुछ कारण निम्नलिखित हो सकते है, जिनके प्रति शिक्षक को सजग रहने की आवश्यकता है :

1. छात्रअनुपस्थिति तथा एकाकीपन।
2. अन्य छात्रों द्वारा डराना अथवा धमकाना।
3. छात्र की निम्न शैक्षणिक उपलब्धि।
4. विद्यार्थी में हिंसा अथवा आक्रामकता की प्रवृत्ति।
5. विद्यार्थी में अधिगम के प्रति अरुचि तथा अक्षमता।
6. विद्यार्थी में अन्य छात्रों से सांस्कृतिक अंतर।
7. छात्र में आत्मविश्वास की कमी।

8. विद्यार्थी के जीवन में कुछ तनावपूर्ण घटनाओं का घटित होना।
9. अभिभावकों तथा विद्यालय के बीच ताल-मेल का अभाव।
10. घर अथवा विद्यालय में कठोर तथा असंगत अनुशासन।

6.5.5 आध्यात्मिक कल्याण:

आध्यात्मिक" अखंड जीवन ऊर्जा को दर्शाती है जो विविधता (जैसे, अर्थ की अभिव्यक्ति और जीवन उद्देश्य, प्रेरणा, शांतिपूर्ण उपस्थिति, सहानुभूति) में परिलक्षित होती है। इसे पहचानने के लिए शिक्षक को यह दृष्टिकोण अपनाना होगा कि बच्चे स्वाभाविक रूप से आध्यात्मिक होते हैं। उन्हें बच्चों की इस आध्यात्मिकता को बढ़ावा देने के तरीके खोजने का प्रयास करते रहना चाहिए। आध्यात्म जैसे क्लिष्ट घटक को समझने के लिए पहले शिक्षक को स्वयं से कुछ प्रश्न पूछने होंगे जो इस विषय की और प्रकाश डालें कि क्या उनकी शिक्षण शैली छात्रों में आध्यात्मिक विकास को समर्थन दे रही है ? जैसे :

1. क्या वह इस प्रकार की शिक्षण नीतियां अपना रहें हैं जिससे छात्रों को अन्वेषण करने के अवसर प्राप्त हों ?
2. क्या छात्रों को शिक्षक से प्रश्न करने की अनुमति है ?
3. क्या छात्र को शिक्षक द्वारा कल्पना करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है ?
4. क्या शिक्षक पूर्व नियोजित विधि से ही शिक्षण करता है अथवा वह कभी-कभी छात्रों की अभिरुचि बनाये रखने हेतु नवीनतम शिक्षण विधियों का प्रयोग करता है ?
5. क्या शिक्षक उन्हें अधिगम में बराबर भागीदार के रूप में मानते हैं ?
6. क्या शिक्षक द्वारा दी जा रही शिक्षा सक्रिय तथा लोकतांत्रिक है ?
7. क्या शिक्षक के अध्यापन में आध्यात्मिकता का समावेश है ?
8. हर पाठ के समापन पर क्या शिक्षक छात्रों से चिंतन करने को कहता है ?

यदि कोई भी शिक्षक ऊपर दिए गये प्रश्नों के उत्तर हाँ में देता है तो वह छात्रों के अध्यात्मिक विकास के प्रति सजग है। छात्रों में आध्यात्मिक विकास हेतु शिक्षक को निम्नलिखित प्रयास करने चाहिये :

1. अध्यात्म के प्रति छात्रों की समझ को विकसित करना चाहिए।
2. अध्यात्म के विषय में अध्यापक को स्वयं के ज्ञान और जागरूकता में विस्तार करना चाहिए ।

3. शिक्षक को अनुभवों की समृद्ध श्रृंखला द्वारा छात्रों को आध्यात्म की तरफ मोड़ना चाहिए ।
4. शिक्षक को छात्रों में आत्म-चिंतन एवं आत्म-विश्लेषण को बढ़ावा देना।
5. शिक्षक को छात्रों की गतिविधियों को एक समग्र रूप में देखना।

अभ्यास प्रश्न

6. छात्र सुखावद स्थिति के घटक कौन-कौन से हैं ?
7. विद्यालय में छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य को नकारात्मक रूप से प्रभावित करने वाले कुछ कारणों को लिखिए।
8. छात्रों में आध्यात्मिक विकास के लिए शिक्षक द्वारा किये जाने वाले कुछ प्रयास लिखिए।

6.6 छात्रों में सुखावद स्थिति को लाने हेतु अध्यापकों का सहयोग करने वाली गतिविधियाँ:

अध्यापक को उन सुरक्षात्मक कारकों के विषय में अवगत होना चाहिए जो विद्यार्थियों के स्वास्थ्य और कल्याण को प्रभावित करते हैं। कई कारक जो छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं वह उनके घरों या फिर व्यापक समाज में स्थित हो सकते हैं। इन कारकों के प्रभाव को क्षीण करने हेतु विद्यालय एक सशक्त माध्यम बन सकता है। प्रायः यह देखा गया है कि यदि किसी युवा के जीवन में एक सहायक वयस्क व्यक्ति की उपस्थिति हो तो उससे उनमें आत्मविश्वास और कठिनाइयों से निपटने की क्षमता का विकास होता है। विद्यालय में इसी वयस्क व्यक्ति की भूमिका एक अध्यापक सक्रिय रूप से निभा सकता है। शिक्षक द्वारा दिए गये मार्गदर्शन से विद्यार्थी मानसिक रूप से स्वस्थ तथा समाज के प्रति सजग हो सकता है।

छात्र शैक्षिक रूप से कभी भी सफल नहीं हो सकते यदि उनकी सुखावद स्थिति में कोई बाधा हो। विद्यालय में वातावरण सुरक्षित एवं भय मुक्त होना चाहिए। विद्यालय में उन्हें एक प्रेरणादायी जीवन प्रणाली अपनाने हेतु सहायता मिलनी चाहिए। देखा गया है कि जो छात्र सुखावद स्थिति की अनुभूति करते हैं वह स्थिति के अनुरूप स्वयं को ढाल कर शिक्षार्थियों के रूप में अधिक सफल होते हैं तथा भविष्य में कुशल व समाजोपयोगी नागरिक बनते हैं। छात्रों के लिए एक कल्याणकारी लक्ष्य निर्धारित करते समय शिक्षक को निम्नलिखित विषयों पर ध्यान देना चाहिए :

1. छात्र कल्याण एवं सुखावद स्थिति का मूलभूत ज्ञान और समझ।
2. अधिगम का वातावरण।

3. छात्रों में अपनेपन की भावना का विकास।
4. छात्रों में नेतृत्व तथा आत्मविश्वास का विकास।
5. माता-पिता / समुदाय का सहयोग।

6.6.1 छात्र कल्याण एवं सुखावद स्थिति का मूलभूत ज्ञान और समझ।

विद्यार्थियों के संज्ञानात्मक, भावनात्मक, सामाजिक, शारीरिक तथा अध्यात्मिक कल्याण को ही उनकी सुखावद स्थिति से जोड़ कर देखा जा सकता है। ऐसे में हर अध्यापक को निम्नलिखित कर्तव्यों का पालन करना चाहिए।

1. छात्रों की सुखावद स्थिति के विषय में मूलभूत जानकारी रखना तथा छात्रों में इसका संचार करने हेतु उपयुक्त वातावरण का निर्माण करने में छात्रों का सहयोग करना।
2. छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य के लिए तीन चीज़ों का हमेशा ध्यान रखना। पहले तो विद्यालय तथा कक्षा में छात्रों के लिए सकारात्मक और सहायक वातावरण का निर्माण करना जिससे प्रत्येक छात्र लाभान्वित हो सके। दूसरा यह कि छात्रों में मानसिक अवसाद को बढ़ावा देने वाले कारकों को पहचान कर उन्हें हटाना। तीसरा मानसिक रूप से परेशान छात्रों की सहायता करना।
3. मानसिक रूप से संघर्षरत छात्रों में लक्षणों के प्रति सजग रहना।
4. जो छात्र मानसिक रूप से परेशान हों उनके सहयोग के लिए व्यावसायिक मदद लेना।

6.6.2. अधिगम का वातावरण।

शिक्षक को छात्र-कल्याण के लिए एक ऐसे अनुकूल वातावरण का निर्माण करना होगा जिसमें विद्यार्थी भयमुक्त होकर अपनेपन की अनुभूति कर सके। इसके लिए शिक्षक को निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना होगा:

1. सामाजिक तथा भावनात्मक अधिगम के अवसर प्रदान करने चाहिए जिससे छात्रों में समकक्षता का आभास हो।
2. शिक्षक का छात्रों के जीवन के विषय में ज्ञान रखना अतिआवश्यक है।
3. हर छात्र भिन्न होता है इस बात को समझते हुए उन्हें अलग-अलग विधियों से अधिगम के अवसर प्रदान करना चाहिए तथा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कोई पिछड़ ना जाये।

4. छात्रों, कर्मचारियों, माता-पिता और समुदाय के बीच सकारात्मक संबंधों को विकसित करना चाहिए।
5. छात्रों में सहयोग तथा योगदान करने की क्षमता का विकास करने हेतु उचित अवसर प्रदान करने चाहिए।

6.6.3छात्रों में अपनेपन की भावना का विकास।

अपनेपन की भावना से तात्पर्य यह है कि छात्र को कक्षा में सम्मान एवं सहयोग मिले जिससे वह अपने वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित कर सके। छात्र उपलब्धि में शिक्षक-छात्र संबंधों का विशेष योगदान होता है। शिक्षक को छात्रों के लिए सदैव उपस्थित होना चाहिए जिससे वह अपनी मुश्किलें उससे बता सकें। इसके लिए शिक्षकों को निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए :

1. शिक्षक को छात्रों के मध्य किसी भी प्रकार के भेद-भाव करने से बचना चाहिए।
2. अध्यापक को विद्यार्थियों में आत्मविश्वास का संचार करना चाहिए।
3. अध्यापक को मार्गदर्शक बन कर छात्रों के गुणों को निखारना चाहिए।
4. शिक्षक को छात्रों के साथ-साथ स्वयं तथा सहयोगियों की सुखावद स्थिति पर भी ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।
5. समय-समय पर विद्यार्थियों की प्रशंसा कर के उनके मनोबल को बढ़ावा देना चाहिए।
6. शिक्षक छात्रों के प्रति सदैव आशावादी दृष्टिकोण अपनाना चाहिए।
7. शिक्षक को समय-समय पर छात्रों को आशान्वित करने हेतु दैनिक जीवन तथा महापुरुषों के जीवन से उदाहरण देते रहना चाहिए।
8. अध्यापक को कक्षा में छात्र-सहभागिता को बढ़ावा देना चाहिए।

6.6.4 छात्रों में नेतृत्व तथा आत्मविश्वास का विकास ।

छात्रों को अपने विचारों को प्रस्तुत करने के अवसर प्रदान कर शिक्षक उनमें नेतृत्व तथा आत्म-विश्वास का संचार कर सकता है। छात्र एक अद्वितीय परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत करते हैं जो स्वस्थ और सकारात्मक वातावरण के निर्माण में योगदान देता है। इसके लिए शिक्षकों को निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिये :

1. अध्यापक को विद्यालय में मानसिक स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता विकसित करने में छात्रों के साथ मिलकर सहयोग करना चाहिए।

2. छात्रों की बातों को ध्यानपूर्वक सुनकर सकारात्मक प्रतिक्रिया देने का प्रयास करना चाहिए। इससे छात्र अपने मन की बात को आत्मविश्वास के साथ रख पाएंगे।
3. शिक्षक को छात्रों की विशिष्ट आवश्यकताओं को ध्यान में रखना चाहिए।
4. अपने कार्यों व कर्तव्यों के प्रति सजग रह कर हर शिक्षक को छात्रों में स्वयं के प्रति विश्वास जागृत करने का प्रयास करना चाहिए।
5. किसी भी समस्या का हल खोजने में विद्यार्थियों के योगदान को सर्वोपरि रखना चाहिए।
6. छात्र कल्याण में उनके नेतृत्व की अहम भूमिका को समझना चाहिए।

6.6.5 माता-पिता तथा समुदाय का सहयोग।

बच्चों में सुरक्षा की भावना का विकास, अभिभावकों,विद्यालय के कर्मचारियों तथा समुदाय का एक सम्मिलित प्रयास है। उनके सुखावद स्थिति के लिए उनसे जुड़े सभी लोग जिम्मेदार हैं। इसीलिए सबको मिलकर छात्र कल्याण को समझना और बढ़ावा देना चाहिए । इसके लिए शिक्षकों को निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

1. छात्रों के संपूर्ण विकास के लिए उनके अभिभावकों तथा समुदाय से परामर्श तथा सहयोग का निरंतर प्रयास हर शिक्षक को करते रहना चाहिए।
2. विद्यार्थियों के विकास के विषय में शिक्षक को अभिभावकों को सूचित करते रहना चाहिए। उनसे छात्रों के गुणों, क्षमताओं तथा भय के विषय में चर्चा भी करनी चाहिए।

अभ्यास प्रश्न:

9. छात्रों के लिए एक कल्याणकारी लक्ष्य निर्धारित करते समय शिक्षक को किन बातों का रखना चाहिए।
10. किन प्रयासों से शिक्षक छात्रों में नेतृत्व तथा आत्म-विश्वास का विकास कर सकता है ?

6.7 सारांश :

विद्यार्थियों को ऐसे मानसिक रूप से दृढ़ शिक्षकों के समर्थन की आवश्यकता होती है जो उनकी मनोदशा , भावनात्मक , सामाजिक, शारीरिक, तथा आध्यात्मिक आवश्यकताओं को समझ सकें तथा उनके विकास में सहयोग प्रदान कर सकें। छात्र एक शिक्षक को आदर्श के रूप में स्वीकार करते हैं। इसीलिए हर शिक्षक का कर्तव्य है की उनकी देखभाल करें और जीवन की

चुनौतियों से निपटने के लिए उन्हें सशक्त बनाये। छात्रों की सफलता के लिए उनमें आशावाद, आत्म-विश्वास, समायोजन, सुरक्षा की भावना का संचार, एक शिक्षक ही कुशलता पूर्वक कर सकता है। शारीरिक स्वास्थ्य ,पोषण, शारीरिक गतिविधियाँ इत्यादि सुनिश्चित करेंगी की छात्र शारीरिक रूप से सक्षम है। इसी तरह कक्षा का वातावरण तथा शिक्षक का व्यवहार भी उसकी मनःस्थिति को प्रभावित करेगा । शिक्षक को इसीलिए छात्रों के साथ मिल कर एवं उनके सहयोगी के रूप में उनका तथा स्वयं के उत्थान के लिए निरंतर कार्यरत रहना चाहिए।

6.8 शब्दावली :

1. सुखावद स्थिति: विद्यार्थियों में शारीरिक, भावनात्मक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक क्षमता का आभास ही उनकी सुखावद स्थिति की ओर इंगित करता है।
2. सुविधा प्रदाता: सुविधा प्रदाता से आशय है वह व्यक्ति जो किसी कार्य को करने में सहायता प्रदान कर उसे सुगम बनाये। सुविधा प्रदाता लक्ष्य का निर्णय नहीं करता अपितु वह एक समूह की उस लक्ष्य निर्धारण तथा उस तक पहुँचने में मदद करता है। वह किसी भी कार्य को करने की प्रक्रिया तय करने में समूह की सहायता करता है न की स्वयं कार्य करता है।
3. शारीरिक : "शारीरिक" जीवन के उन हिस्सों को इंगित करता है हमारे शरीर की भौतिक इंद्रियों और संवेदी अनुभव से संबंधित हैंतथा भौतिक और प्राकृतिक वातावरण से सामंजस्य स्थापित (जैसे, निर्माण करना, अलग करना, विवरण, उत्पादन) करने में सहायता करते हैं।
4. मानसिक: " मानसिक" जीवन के उस हिस्से से सम्बंधित है जो मुख्यतः अनुभूति और तर्कसंगत मन की प्रक्रियाओं को दर्शाता है (उदाहरण के लिए सोचना, योजना बनाना, मूल्यांकन करना इत्यादि)। छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य का प्रतिनिधित्व उनकी मनोवैज्ञानिक तथा भावनात्मक स्थिति करती है।
5. आध्यात्मिक: आध्यात्मिक" अखंड जीवन ऊर्जा को दर्शाती है जो विविधता (जैसे, अर्थ की अभिव्यक्ति और जीवन उद्देश्य, प्रेरणा, शांतिपूर्ण उपस्थिति, सहानुभूति) में परिलक्षित होती है।

6.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर :

1. यहाँ सुविधा प्रदाता से आशय है वह व्यक्ति जो किसी कार्य को करने में सहायता प्रदान कर उसे सुगम बनाये। सुविधा प्रदाता लक्ष्य का निर्णय नहीं करता अपितु वह एक समूह की उस लक्ष्य निर्धारण तथा उस तक पहुँचने में मदद करता है। वह किसी भी कार्य को करने की

प्रक्रिया तय करने में समूह की सहायता करता है न की स्वयं कार्य करता है। सुविधा प्रदाता के रूप में एक शिक्षक का महत्वपूर्ण कार्य है की वह किसी भी लक्ष्य तक पहुँचने की प्रक्रिया निर्धारित करे ताकि छात्रों का उस तक पहुंचना सुगम बन सके। इस कार्य को सरलीकरण भी कह सकते हैं।

2. अनुभव, कल्पना, विचार और व्यवहार।
3. शिक्षक तथा सुविधा प्रदाता के बीच के अंतर निम्नलिखित हैं:
    - शिक्षक का मुख्यतः शिक्षण करता है। कक्षा में वह एक प्रभारी की तरह कार्य करता है। परन्तु एक सुविधा प्रदाता समूह को किसी पूर्व निर्धारित कार्य को करने में सहायता करता है।
    - शिक्षक एक विशेषज्ञ की तरह अपने विषय में पारंगत होता है तथा इसे छात्रों तक स्थानांतरित करने का प्रयास करता है। परन्तु सुविधा प्रदाता यह जानने का प्रयास करता है की विद्यार्थी क्या करना चाहते हैं।
    - शिक्षक अपने पाठ्यक्र के विषय में जानता है। परन्तु सुविधा प्रदाता छात्रों के पूर्वज्ञान के आधार पर छात्रों का मार्गदर्शन करता है तथा उनसे सीखता भी है।
    - शिक्षक छात्र-गतिविधियों को पूर्व नियोजित करता है जबकि सुविधा प्रदाता छात्रों से प्रश्न कर के निर्णय लेता है की वह क्या करना चाहते हैं।
    - शिक्षक छात्रों के अधिगम को मापने हेतु उनका मूल्यांकन करता है, परन्तु सुविधा प्रदाता समूह को स्वयं का मूल्यांकन करने देता है। उसके पश्चात ही वह निश्चय करता है की उन्होंने कितना अच्छा किया है।
4. विद्यार्थियों में शारीरिक, भावनात्मक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक क्षमता का आभास ही उनकी सुखावद स्थिति की ओर इंगित करता है
5. विद्यार्थियों में सुखावद स्थिति के लक्षण निम्नलिखित हैं;
    - आत्मविश्वास, आशावाद, आत्मसम्मान तथा उत्तरदायित्व होना।
    - नैतिकता के प्रश्नों पर निर्णय लेने की क्षमता।
    - समस्या का विश्लेषण कर उसे सुलझाने की क्षमता।
    - अपने विचारों तथा सूचनाओं को सफलतापूर्वक दूसरों तक पहुँचाना।

- दूसरों के साथ सहयोग कर एवं संगठित होकर कक्षा में कुशलतापूर्वक कार्य करना ।

6. छात्र सुखावद स्थिति के मुख्य घटक हैं , शारीरिक, भावनात्मक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक।
7. विद्यालय में छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य को नकारात्मक रूप से प्रभावित करने वाले कुछ कारण निम्नलिखित हो सकते है, जिनके प्रति शिक्षक को सजग रहने की आवश्यकता है :
   - छात्रअनुपस्थिति तथा एकाकीपन।
   - अन्य छात्रों द्वारा डराना अथवा धमकाना।
   - छात्र की निम्न शैक्षणिक उपलब्धि।
   - विद्यार्थी में हिंसा अथवा आक्रामकता की प्रवृत्ति।
   - विद्यार्थी में अधिगम के प्रति अरुचि तथा अक्षमता।
   - विद्यार्थी में अन्य छात्रों से सांस्कृतिक अंतर।
   - छात्र में आत्मविश्वास की कमी।
   - विद्यार्थी के जीवन में कुछ तनाव पूर्ण घटनाओं का घटित होना।
   - अभिभावकों तथा विद्यालय के बीच ताल-मेल का अभाव।
   - घर अथवा विद्यालय में कठोर तथा असंगत अनुशासन।
8. छात्रों में आध्यात्मिक विकास हेतु शिक्षक को निम्नलिखित प्रयास करने चाहिये :
   - अध्यात्म के प्रति छात्रों की समझ को विकसित करना चाहिए।
   - अध्यात्म के विषय में अध्यापक को स्वयं के ज्ञान और जागरूकता में विस्तार करना चाहिए।
   - शिक्षक को अनुभवों की समृद्ध श्रृंखला द्वारा छात्रों को अध्यात्म की तरफ मोड़ना चाहिए ।
   - शिक्षक को छात्रों में आत्म-चिंतन एवं आत्म-विश्लेषण को बढ़ावा देना।
   - शिक्षक को छात्रों की गतिविधियों को एक समग्र रूप में देखना।

9. छात्रों के लिए एक कल्याणकारी लक्ष्य निर्धारित करते समय शिक्षक को निम्नलिखित विषयों पर ध्यान देना चाहिए :

- छात्र कल्याण एवं सुखावद स्थिति का मूलभूत ज्ञान और समझ।
- अधिगम का वातावरण।
- छात्रों में अपनेपन की भावना का विकास।
- छात्रों में नेतृत्व तथा आत्मविश्वास का विकास।
- माता-पिता / समुदाय का सहयोग।

10. इसके लिए शिक्षकों को निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिये :

- अध्यापक को विद्यालय में मानसिक स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता विकसित करने में छात्रों के साथ मिलकर सहयोग करना चाहिए।
- छात्रों की बातों को ध्यानपूर्वक सुनकर सकारात्मक प्रतिक्रिया देने का प्रयास करना चाहिए। इससे छात्र अपने मन की बात को आत्मविश्वास के साथ रख पाएंगे।
- शिक्षक को छात्रों की विशिष्ट आवश्यकताओं को ध्यान में रखना चाहिए।
- अपने कार्यों व कर्तव्यों के प्रति सजग रह कर हर शिक्षक को छात्रों में स्वयं के प्रति विश्वास जागृत करने का प्रयास करना चाहिए।
- किसी भी समस्या का हल खोजने में विद्यार्थियों के योगदान को सर्वोपरि रखना चाहिए।
- छात्र कल्याण में उनके नेतृत्व की अहम भूमिका को समझना चाहिए।

6.10 सन्दर्भग्रन्थसूची :

1. NCTE (2009); *National curriculum framework for teacher education*, New Delhi
2. Fraillon, J. (2004).Measuring Student Well-Being in the Context of Australian Schooling:Discussion Paper. Australia: Ministerial Council on Education, Employment, Training and Youth Affairs. Retrieved from https://www.google.co.in/search?q=Measuring+Student+Well-Being+in+the+Context+of+Australian+Schooling%3A+Discussion+Pa

per&oq=Measuring+Student+Well-Being+in+the+Context+of+Australian+Schooling%3A+Discussion+Paper&aqs=chrome..69i57.5923j0j7&sourceid=chrome&ie=UTF-8

6.11 निबंधात्मकप्रश्न

1. सुविधा प्रदाता तथा सहयोगी के रूप में शिक्षक की भूमिका की एक सैद्धांतिक रूपरेखा खींचिए।
2. सुविधा प्रदाता बनने हेतु शिक्षक के द्वारा किये जाने वाले कुछ महत्वपूर्ण प्रयास लिखिए।
3. छात्र सुखावद स्थिति के महत्वपूर्ण घटकों के विषय में समझकर लिखिए।
4. छात्रों में सुखावद स्थिति की ओर ले जाने में अध्यापक का सहयोग करने वाली गतिविधियों को स्पष्ट करें।

इकाई 7 – परामर्श की प्रक्रिया: अवधारणा, परामर्श के सिद्धान्त, परामर्श उपागम: निर्देशीय, अनिर्देशीय एवं समन्वित

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 परामर्श की प्रक्रिया की अवधारणा
1.4 परामर्श की प्रक्रिया के मुख्य अंग
1.5 परामर्श की प्रक्रिया के मूलभूत-सिद्धान्त
1.6 परामर्श प्रक्रिया के पद
1.7 परामर्शप्रार्थी और परामर्शदाता में सम्बन्ध
1.8 परामर्श के सिद्धान्त
1.9 परामर्श के विभिन्न दृष्टिकोण या विचारधाराएँ
1.9.1 निर्देशीय या परामर्शदाता-केन्द्रित या नियोजक परामर्श
1.9.2 अनिर्देशीय परामर्श या प्रार्थी-केन्द्रित या अनुमत परामर्श
1.9.3 समन्वित या संकलक या समाहारक परामर्श
1.10 सारांश
1.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.12 सन्दर्भ ग्रन्थ
1.13 निबन्धात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

परामर्श का महत्वपूर्ण बिन्दु है जब परामर्श प्रार्थी को अपने महत्व एवं जीवनगत धारणाओं के प्रति विश्वास होने लगता है और इस विश्वास उत्पन्न करने में परामर्श को सहायक होना चाहिए। परामर्श की प्रक्रिया के दो प्रमुख अंग परामर्शदाता और परामर्शप्रार्थी है। परामर्श के लक्ष्यों की प्राप्ति परामर्शप्रार्थी एवम् परामर्शदाता के सम्बन्धों पर निर्भर करती है। परामर्श में विचारों का आदान-प्रदान एक महत्वपूर्ण तत्व है। परामर्शदाता में इतनी योग्यता होनी चाहिए कि वह परामर्शप्रार्थी के मनोभावों को पूर्णरूपेण समझ सके। परामर्शप्रार्थी एवं परामर्श में सामरस तथा मिलने के स्थान का शान्तिपूर्ण होना परामर्श की

सफलता के लिए आवश्यक है। परामर्शदाता को अपने कार्य के प्रति निष्ठावान होना चाहिए। किसी तिथि या प्रणाली के अनुगमन में बँधना उसके लिए आवश्यक नहीं है। कहने का तात्पर्य है कि परामर्श के प्रक्रिया में परामर्शदाता को अनेक अनुभवों से गुजरना पड़ता है। इन अनुभवों से लाभ उठाने के के लिये परामर्श के सत्र की पूर्व तैयारी वांछनीय है तथा परामर्शदाता को परामर्श की प्रक्रिया व परामर्श से सम्बन्धित सिद्धान्तों व विचारधाराओं का ज्ञान होना अति आवश्यक है।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप-

1. परामर्श की प्रक्रिया से सम्बन्धित अवधारणा से अवगत हो सकेंगे।
2. परामर्श की प्रक्रिया के मुख्य अंगों, पदों व सिद्धान्तों की व्याख्या करा सकेंगे ।
3. परामर्शदाता और परामर्शप्रार्थी के सम्बन्धों का वर्णन कर सकेंगे।
4. परामर्श के मुख्य सिद्धान्तों की व्याख्या करा सकेंगे ।
5. निर्देशात्मक, अनिर्देशात्मक व समन्वित परामर्श के मध्य अंतर स्पष्ट कर सकेंगे।

7.3 परामर्श की प्रक्रिया की अवधारणा (Concept of Counselling Process)

परामर्श एक प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत परामर्शप्रार्थी एक व्यावसायिक रूप से प्रशिक्षित व्यक्ति अर्थात् परामर्शदाता के साथ विशिष्ट उद्देश्य को संस्थापित करने के लिए कार्य करता है तथा ऐसे व्यवहारों को सीखता है जिनका अर्जन इन विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक है। इस प्रक्रिया को सम्पन्न करने से पूर्व इसकी प्रक्रिया के पमुख अंगों का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। कोई भी प्रक्रिया किसी न किसी दिशा में एक अथवा अनेक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये ही सम्पन्न की जाती है। अतः लक्ष्य अथवा उद्देश्य किसी प्रक्रिया का मुख्य बिन्दु माना जाता है। इस लक्ष्य को अपने समक्ष रखकर ही प्रयासकर्ता विशिष्ट कार्य का सम्पादन करता है। परामर्श का प्रमुख लक्ष्य विद्यार्थी, अथवा अन्य किसी सेवार्थी में आत्मबोध एवं सामंजस्य की योग्यता का विकास करना है। इस योग्यता के विकसित होने पर वह स्वयं ही अपनी समस्या का समाधान करने योग्य बना जाता है। इस प्रकार लक्ष्य किसी प्रक्रिया की व्यावहारिक क्रियान्वित का प्राथमिक आधार है। इसके अतिरिक्त जिसके लिये प्रयास किया जा रहा है अर्थात् परामर्शदाता एवं परामर्शप्रार्थी भी परामर्श की प्रक्रिया के प्रमुख आधार बिन्दु होते हैं। इसलिये यह कहा जाता है कि परामर्श एक त्रिधुवीय प्रक्रिया है। जिसके तीन प्रमुख अंग है। लक्ष्य, परामर्शदाता एवं परामर्शप्रार्थी। परामर्श की सफलता के लिए उसमें निम्न चार आधारभूत मान्यताओं का होना आवश्यक है।

1. परामर्शदाता का अनुभवी होना- परामर्शदाता के प्रभावशाली ढंग से कार्य करने के के लिए उसका प्रशिक्षित, अनुभवी एवं कार्य के प्रति रूझान रखने वाला होना आवश्यक है।
2. इच्छा जानना- परामर्श के लिए यह स्वीकार करना आवश्यक है कि छात्र परामर्श की प्रक्रिया में भाग लेने का इच्छुक है।
3. आवश्यकता की पूर्ति- परामर्श के द्वारा व्यक्ति की तात्कालिक एवं भविष्य-सम्बन्धी दोनों ही प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति होनी चाहिए।
4. उचित वातावरण- परामर्श की सफलता के लिए उचित वातावरण की उपस्थिति आवश्यक है।

7.4 परामर्श की प्रक्रिया के मुख्य अंग (Main Parts of the Counselling Process)

परामर्श की प्रक्रिया के तीन मुख्य अंग हैं-

i. परामर्श का लक्ष्य
ii. परामर्शप्रार्थी
iii. परामर्शदाता

परामर्श की प्रक्रिया का सबसे महत्वूपर्ण घटक लक्ष्य निर्धारण है। इन लक्ष्यों को परामर्शदाता वातावरण एवं समाज के अनुरूप ही निर्धारित किया जाता है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि परामर्शदाता एवं परामर्शप्रार्थी के सामाजिक , धार्मिक एवं राजनीतिक परिवेश में जो मूल्य एवं आदर्श प्रचलित होंगे, उनके अनुसार ही परामर्श के लक्ष्यों का निर्धारण होगा। लक्ष्यों के निर्धारण में व्यक्ति की आवश्यकताओं एवं रूचियों को उसके परिवेश के सन्दर्भ में देखना होता है। एक प्रकार से परामर्श का लक्ष्य परामर्शप्रार्थी को मूल्यों के पुनरान्वेषण में सहायता देना है।

7.5 परामर्श की प्रक्रिया के मूलभूत-सिद्धान्त (Fundamental Principles of Counselling Process)

मैकडैनियल और शैफ्टल के अनुसार परामर्श प्रक्रिया निम्नलिखित सिद्धान्तों पर आधारित है-

1. स्वीकृति का सिद्धान्त- इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक प्रार्थी को एक व्यक्तित्व के रूप में समझा जाए और उसके साथ वैसा ही व्यवहार किया जाए। व्यक्ति के अधिकारों को परामर्शदाता पूर्ण सम्मान प्रदान करें।
2. लोकतन्त्रीय आदर्शों के साथ निरन्तरता का सिद्धान्त- सभी सिद्धान्त लोकतंत्रीय आदर्शों के साथ जुड़े हुए हैं। लोकतांत्रिक आदर्श व्यक्ति को स्वीकार करने की माँग करते हैं और दूसरे के अधिकारों का उपयुक्त सम्मान चाहते हैं। परामर्श की प्रक्रिया व्यक्ति के सम्मान के आदर्श पर आधारित है। यह व्यक्तिगत विभिन्नताओं को मानने वाली प्रक्रिया है।

3. व्यक्ति के साथ विचार करने का सिद्धान्त- परामर्श व्यक्ति के साथ सोचने पर बल देता है। 'किसके लिये सोचना' और 'क्यों सोचना'- इन दोनों बातों में भेद करना आवश्यक है। यह परामर्शदाता की भूमिका है कि वह प्रार्थी के आसपास की सभी शक्तियों के बारे में सोचे, प्रार्थी की चिन्तन प्रक्रिया में शामिल हो और उसकी समस्या के सम्बन्ध में प्रार्थी के साथ मिलजुल कर कार्य करे।
4. सीखने का सिद्धान्त - परामर्श की सभी विचारधाराऐं परामर्श पक्रिया में सीखने के तत्वों की विद्यमानता को मानते हैं।
5. व्यक्ति के सम्मान का सिद्धान्त- परामर्श ऐसा सम्बन्ध है, जिसमें कुछ आशा बँधती है तथा वातावरण व्यक्ति के अनुकूल होने लगता है। सभी विचारधाराऐं परामर्श के सापेक्ष सम्बन्ध को स्वीकार करती हैं।

7.6 परामर्श प्रक्रिया के पद (Steps in Counselling Process)

परामर्श प्रक्रिया के विलियमसन और डरले ने निम्नलिखित 6 पदों की चर्चा की है-

1. **विश्लेषण (Analysis)** - यह वह प्रक्रिया है जिससे तथ्यों का संकलन किया जाता है ताकि परामर्शप्रार्थी का अध्ययन किया जा सके।
2. **संश्लेषण (Synthesis)** - इस पद में एकत्रित की गई जानकारी को संगठित किया जाता है।
3. **निदान (Diagnosis)** - इस पद में समस्या के कारणों के बारे में निष्कर्ष निकाला जाता है।
4. **पूर्व अनुमान (Prognosis)** - निदान के उपयोग के बारे में कथन देने को पूर्व-अनुमान कहते हैं
5. **परामर्श (Counselling)** - परामर्शदाता और प्रार्थी द्वारा समायोजन के लिये उठाये गये कदमों को इस पद में रखा गया है।
6. **अनुवर्तन (Follow-up)** - परामर्शदाता की सेवाओं की प्रभावशीलता का मूल्यांकन करने या नई समस्याओं के हल में परामर्शप्रार्थी की सहायता करने के प्रयास इस पद में शामिल रहते हैं।

रोजर्स (Rozers) ने भी विभिन्न पदों का निम्नलिखित पदों में संक्षिप्तिकरण किया है-

1. व्यक्ति सहायता के लिये आता है तथा उसने एक अनुमानित कदम उठा लिया है।
2. सहायता-परिस्थिति को प्रायः परिभाषित किया जाता है। प्रार्थी को इस ख्याल से परिचित कराया जाता है कि परामर्शदाता के पास उत्तर नहीं होते हैं । प्रार्थी को स्वयं ही अपने उत्तर ढूँढने होते हैं। परामर्श का समय आना है यदि वह चाहे।

3. परामर्शदाता स्वतंत्र अभिव्यक्ति को प्रोत्साहित करता है। यह स्वतंत्र अभिव्यक्ति समस्या के संदर्भ में होती है। वह चिन्ता तथा अपराधी होने की भावना रोकता है। परामर्शदाता प्रार्थी को यह मानने का प्रयास नहीं करता कि वह गलती पर है या वह सही है। परामर्शदाता प्रार्थी को वैसा ही स्वीकार करता है जैसा वह है। वह केवल स्वतन्त्र अभिव्यक्ति को प्रोत्साहित करता है।
4. परामर्शदाता नकारात्मक भावनाओं को स्वीकार करता है, उन्हें पहचानता और स्पष्ट करता है। परामर्शदाता को प्रार्थी की भावनाओं का उत्तर देना चाहिए।
5. जब व्यक्ति की नकारात्मक भावनाओं की पूर्ण अभिव्यक्ति हो चुकी होती है उसके पश्चात् अनुमानित सकारात्मक अभिव्यक्ति हो।
6. परामर्शदाता सकारात्मक भावनाओं को पहचानता है और उन्हें स्वीकार करता है।
7. इससे स्वयं का बोध और अन्तःदृष्टि होती है।
8. सम्भावित निर्णयों और सम्भावित कार्य-दिशा का स्पष्टीकरण।
9. व्यक्ति द्वारा महत्वपूर्ण सकारात्मक क्रियाओं का प्रारम्भ।
10. आगे फिर अन्तदृष्टि तथा अधिक उपयुक्त बोध का विकास।
11. विकसित स्वतंत्रता की भावना तथा सहायता की घटती हुई आवश्यकता।

ये प्रक्रियायें आवश्यक नहीं कि इसी क्रम में हों। ये पद प्रार्थी-केन्द्रित हैं।

7.7 परामर्श प्रार्थी और परामर्शदाता में सम्बन्ध (Client-Counsellor Relationship)

परामर्श की प्रक्रिया में पारस्परिक सम्पर्क मुख्य साधन माना जाता है। अतः पारस्परिक सम्पर्क की सार्थकता हेतु परामर्शप्रार्थी व परामर्शदाता दोनों को एक-दूसरे को जानना एवं समझना आवश्यक है। दोनो को ही एक-दूसरे का आदर भी करना चाहिए। यदि परामर्शप्रार्थी एवं परामर्शदाता के मध्य समुचित सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाते हैं तो परामर्श की प्रक्रिया सफल नहीं हो सकती है।

परामर्श का महत्वपूर्ण तत्व है - परस्पर विचारों का आदान-प्रदान । यदि विचारों के आदान-प्रदान में कोई विघ्न आता है तो परामर्श अपूर्ण ही रहता है। समुचित परामर्शप्रार्थी-परामर्शदाता सम्बन्धों विकसित करने हेतु कतिपय तकनीकों का विकास किया गया है विलियमसन ने परामर्श प्रविधियों या तकनीकों को निम्नलिखित पांच शीर्षकों के अन्तर्गत वर्णित किया है-

1. **मधुर सम्बन्ध स्थापित करना (Establishing Rapport)** - जब पहली बार प्रार्थी परामर्शदाता के पास आता है तो परामर्शदाता का सबसे पहला कार्य होता है कि उसका स्वागत किया जाए। उसे आरामदेह स्थिति में लाकर प्रार्थी को विश्वास में लेना चाहिए। मधुर

सम्बन्ध स्थापित करने का मुख्य आधार होता है-परमर्शदाता की योग्यता की ख्याति, व्यक्तिगतता का सम्मान तथा साक्षात्कार से पहले विश्वास और विद्यार्थी के साथ सम्बन्धों को विकसित करना।

2. **स्वयं-बोध उत्पन्न करना (Cultivating Self-understanding)** - परामर्शप्रार्थी को स्वयं की योग्यताओं और उत्तरदायित्यों के प्रयोग से पहले ही हो जानी चाहिए। इसके लिये परामर्शदाता को परीक्षण-संचालन और परीक्षण अंकों की व्याख्या का अनुभव होना आवश्यक है। परीक्षण-अंक निदान और पूर्व अनुमान का परामर्श प्रक्रिया में ठोस आधार प्रदान करते हैं।
3. **क्रिया के लिये कार्यक्रम का नियोजन और सुझाव (Advising and Planning a prgoramme of Action)-** परामर्शदाता प्रार्थी के लक्ष्यों, उसकी अभिवृत्तियों या दृष्टिकोणों आदि से प्रारम्भ करता है तथा अनुकूल और प्रतिकूल आंकड़ों या तथ्यों की ओर संकेत करता है। वह साक्षियों या प्रमाणों को तौलता है और वह इस तथ्य को समझता है कि प्रार्थी को कोई विशेष सुझाव क्यों दे रहा है। विलियमसन का मानना है कि परामर्शदाता को अपने दृष्टिकोण का कथन निश्चितता से करना चाहिए। उसे अनिर्णायक की तरह नहीं देखना चाहिए।
4. **व्याख्यात्मक विधि (Explanatory Method)-** व्याख्यात्मक विधि परामर्श में सबसे अधिक वांछित विधि है। इसमें परामर्शदाता ध्यानपूर्वक लेकिन धीरे-धीरे निदानात्मक आंकड़ें को समझता है और उन सम्भावित स्थितियों की ओर संकेत करता है जिनमें प्रार्थी की शक्तियों और क्षमताओं का प्रयोग किया जाता सकता है। इसमें आंकड़ों के उपयोग को सविस्तार और ध्यानपूर्वक तर्क सहित समझाया जाता है। इसके पश्चात् प्रार्थी के निर्णय या रूचि को जानकर साक्षात्कार इस निर्णय को लाकर करने के लिए प्रत्यक्ष सहायता प्रदान कर सकता है इस सहायता में उपचारात्मक कार्य और शैक्षिक या शिक्षण नियोजन का कार्य सम्मिलित होते हैं।
5. **अन्य कार्यकर्ताओं का सहयोग (Referal to other personnel Workers)-** कोई भी परामर्शदाता सभी प्रकार के प्रार्थियों की समस्याओं का समाधान नहीं कर सकता। उसे अपनी सीमाओं को पहचानना चाहिए तथा उसे विशिष्टीकृत सहायता के स्रोतो का ज्ञान होना चाहिए। उसे प्रार्थियों को अन्य उपयुक्त स्रोतों की सहायता प्राप्त करने की सलाह देनी चाहिए।

इन उपरोक्त प्रविधियों के अतिरिक्त परामर्श की अन्य प्रविधियां भी हैं जो निम्नलिखित है-

1. **मौन-धारण (Silence)** - कभी-कभी कई परिस्थितियों में मौन रहकर किसी की बात को सुनना बोलने से अधिक प्रभावशाली होता है। जब प्रार्थी अपनी समस्या का वर्णन कर रहा होता है तब परामर्शदाता मौन धारण कर लेता है। इससे प्रार्थी को यह विश्वास हो जाता है कि

परामर्शदाता प्रार्थी की बात को बड़े गौर से सुन रहा है तथा उस पर गम्भीरता से विचार कर रहा है।

2. **स्वीकृति (Acceptance)-** परामर्शदाता प्रार्थी की बात को अस्थाई स्वीकृति दे। कई बार परामर्शदाता कुछ शब्द इस प्रकार से कह देता है कि उनसे यह मालूम पड़ जाता है कि प्रार्थी जो कुछ कह रहा है उसे वह स्पष्टतः समझ रहा है। परन्तु इन शब्दों को परामर्शदाता इस तरह कहता है जिससे प्रार्थी के बोलने के धारा प्रवाह में कोई रूकावट नहीं आती । उदाहरणार्थ- 'ठीक है', 'बहुत अच्छा', 'हूँ' इत्यादि। कई अवसरों पर परामर्शदाता अपनी स्वीकृति प्रदान करने के लिये कोई शब्द नहीं कहता केवल स्वीकारात्मक ढंग से सिर ही हिला देता है।
3. **स्पष्टीकरण (Clarification)-** कई अवसरों पर परामर्शदाता को चाहिए कि वह प्रार्थी की बातों का या उस दिये गये वर्णन का स्पष्टीकरण करें। परामर्शदाता का यह कर्तव्य है कि वह प्रार्थी को इस बात से परिचित करा दे कि वह उसे समझ रहा है तथा स्वीकार है। परन्तु कभी-कभी परामर्शदाता को यह आवश्यक हो जाता है कि वह प्रार्थी के वर्णन का स्पष्टीकरण करते समय प्रार्थी को किसी प्रकार की जोर-जबरदस्ती का आभास न हो।
4. **पुनर्कथन (Restatement)-** स्वीकृति एवं पुनरावृत्ति दोनों से ही प्रार्थी को यह बोध होता है कि परामर्शदाता उनकी बात को समझ रहा है तथा स्वीकार करता है। पुनरावृत्ति के द्वारा परामर्शदाता उसी बात को दोहराता है जिसे प्रार्थी ने वर्णित किया है परन्तु परामर्शदाता पुनर्कथन के समय किसी प्रकार का संशोधन या स्पष्टीकरण प्रार्थी के मापन में नहीं करता है।
5. **मान्यता (Approval) -** अपनी समस्या के बारे में प्रार्थी विभिन्न प्रकार के विचार व्यक्ति करता है। परामर्शदाता इन विचारों में से कुछ को मान्यता प्रदान कर देता है तथा कुछ को नहीं। जिन विचारों को मान्यता प्रदान कर दी जाती है वे प्रार्थी को अत्यधिक प्रभावित करते हैं। प्रार्थी परामर्शदाता के ज्ञान एवं व्यक्तित्व से प्रभावित होता है। यदि परामर्शदाता बीच-बीच में प्रार्थी के विचारों को मान्यता देता रहता है तो मान्यता प्रभावहीन हो जाती है। इस ओर ध्यान दिया जाना चाहिए।
6. **प्रश्न पूछना (Asking Questions)** - प्रार्थी अपनी समस्याओं के सम्बन्ध में अधिक विचार करने की प्रेरणा देने के लिये परामर्शदाता को कुछ प्रश्न पूछने चाहिए। ये प्रश्न प्रार्थी के वक्तव्य का अंश समाप्त होने के पश्चात् पूछे जाने चाहिए।
7. **हास्य रस (Humour)** - परामर्श के दौरान प्रार्थी के तनाव दूर करने के लिये तथा वार्तालाप को रूचिकर बनाने के लिये हास्य-रस का प्रयोग करना भी एक आवश्यकता सी बन जाती हैं।
8. **सारांश स्पष्टीकरण (Summary Clarification)** - प्रार्थी के वक्तव्य का कुछ भाग लाभकारी नहीं भी हो सकता। इसके कारण समस्या स्वयं ही प्रार्थी को अस्पष्ट दिखाई देती है। ऐसी स्थिति में परामर्शदाता के लिये आवश्यक हो जाता है कि वह प्रार्थी के भाषण को संक्षिप्त करे

तथा उसका संगठन करे जिससे परामर्शप्रार्थी समस्या को अधिक स्पष्ट रूप से समझ सके। परामर्शदाता का प्रयास यही रहना चाहिए कि वह कभी भी अपनी ओर से विचार न जोड़े।

9. **विश्लेषण (Analysis)** - प्रार्थी की समस्या के लिये परामर्शदाता सामधान प्रस्तुत करने की पहल कर सकता है। लेकिन परामर्शदाता प्रार्थी से उस हल पर अमल नहीं करवा सकता। परामर्शदाता प्रार्थी पर ही छोड़ देता है कि वह उस समाधान को स्वीकार करे या अस्वीकार करे या उसमें कुछ संशोधन करे। इस सम्बन्ध में प्रार्थी पर किसी प्रकार का दबाव नहीं डाला जाता।
10. **व्याख्या या विवेचना (Interpretation)** - परामर्शदाता को प्रार्थी के वक्तव्य की ही विवेचना या व्याख्या करने का अधिकार होना चाहिए। उसे अपनी तरफ से कुछ नहीं जोड़ना चाहिए। परामर्शदाता व्याख्या द्वारा प्रार्थी के वक्तव्य का परिणाम निकालता है। इन निष्कर्षो को निकालने में अकेला प्रार्थी असमर्थ होता है। यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि परामर्शदाता द्वारा निकाले गये निष्कर्ष अन्य परीक्षणों द्वारा निकाले गये निष्कर्षों से मेल खा सकते हैं और नहीं भी।
11. **परित्याग (Regression)**- कई बार प्रार्थी जो कुछ सोचता या कहता है वह त्रुटिपूर्ण होता है। इस प्रकार त्रुटिपूर्ण विचारधाराओं को त्यागना चाहिए। इसका परित्याग करने के लिए परामर्शदाता को बड़ी सावधानी से काम लेना चाहिए ताकि प्रार्थी विद्रोही प्रवृत्ति का न हो जाये और इस परित्याग का प्रार्थी उल्टा अर्थ न निकाल ले।
12. **आश्वासन (Assurance)-** परामर्श की सबसे महत्वपूर्ण तथा मनोवैज्ञानिक पक्ष से जुड़ी प्रविधि के रूप में आश्वासन प्रदान करने से प्रार्थी की समस्या हल होने की आशा बँध जाती है। आश्वासन द्वारा परामर्शदाता प्रार्थी के कथनों को स्वीकार भी करता है और स्वीकृति के साथ-साथ अनुमोदित या समर्थन प्रदान करता है।

अभ्यास प्रश्न

1. परामर्श एक _____ प्रक्रिया है।
2. परमर्श के तीन प्रमुख अंग है, _____परामर्शदाता एवं परामर्शप्रार्थी।
3. परामर्श प्रक्रिया के विलियमसन और डरले ने _____पदों की चर्चा की है।
4. परामर्श की प्रक्रिया में_____ मुख्य साधन माना जाता है।
5. परामर्श का महत्वपूर्ण तत्व है _____।

7.8 परामर्श के सिद्धान्त (Principles of Counselling)

सिद्धान्त की व्याख्या प्रायः किन्हीं दृष्टिगोचर घटनाओं के अन्तर्निहित नियमों अथवा दिखायी देने वाले सम्बन्धें के प्रतिपादनों के रूप में की जाती है जिनका एक निश्चित सीमा के अन्दर परीक्षण सम्भव

है। परामर्श के क्षेत्र में सैद्धान्तिक ज्ञान का विशद भण्डार है। परामर्शकर्ता के लिये इन सैद्धान्तिक आधारों का परिचय आवश्यक है। अध्ययन की सुविधा हेतु, दृष्टिकोणों के आधार पर इन्हें चार मुख्य वर्गों में रखा जा सकता है-

1. प्रभाववर्ती सिद्धान्त (Affectively Oriented Theory)
2. व्यवहारवादी सिद्धान्त (Behaviourally Oriented Theory)
3. बोधात्मक सिद्धान्त (Cognitively Oriented Theory)
4. व्यवस्थावादी प्रारूप सिद्धान्त (Systemetic Model Theory)

प्रभाववर्ती सिद्धान्त (Affectively Oriented Theory)

यह सिद्धान्त मूलतः अस्तित्वादी मानववादी दर्शन परम्परा से उत्पन्न हुआ है। इसमें परामर्शप्रार्थी को प्रभावपूर्ण ढंग से समझने पर विशेष बल दिया जाता है। केम्प (1971), राजर्स (1975), बारूथ तथा हूबर (1985) जैसे विद्वान इस सिद्धान्त के प्रमुख समर्थक हैं। उनका मत है कि मानवीय अन्तः क्रिया ही प्रभाववर्ती परामर्शदाता के लिये ध्यान का केन्द्र है। मानवतावादी मनोविज्ञान की शेफर (1978) की प्रमुख मान्यताऐं ही इस सिद्धान्त का आधार है जिन्हें संक्षेप में निम्न रूप से व्यक्त किया जा सकता है-

i. अनुभव की विलक्षणता- वैयक्तिक अनुभव की विलक्षणता तथा वैषयिक वास्तविकता अधिक महत्वपूर्ण है।
ii. समग्रता- व्यक्ति को समग्र रूप से उसके वर्तमान अनुभवों के सन्दर्भों में ही जाना जा सकता है।
iii. सीमाबद्धता- यद्यपि जैवकीय तथा पर्यावरणजनित कारक किन्हीं विशिष्ट रूपों में व्यक्ति को सीमाबद्ध कर सकते हैं फिर भी व्यक्ति को विकसित होने व अस्तित्व निर्माण की क्षमताऐं असीमित रहती हैं। जनतन्त्रीय वातावरण में विशेषतौर पर ऐसा होता है।
iv. आत्म-परिभाषा- मनुष्यता को किसी पदार्थ या तत्व के रूप में सदैव के लिए एक सा परिभाषित नहीं किया जा सकता है। मनुष्यता तो सदैव ही आत्म-परिभाषण की प्रक्रिया में संलग्न रहती है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि प्रभाववर्ती सिद्धान्त की तीन प्रमुख विशेषताऐं हैं- प्रथम, उनकी अस्तित्वादी धारणा, द्धितीय व्यक्तिकेन्द्रित स्वरूप , तृतीय- समग्रतावादी दृष्टिकोण।

व्यवहारवादी सिद्धान्त (Behaviourally Oriented Theory)

प्रभाववर्ती सिद्धान्तों में जहाँ एक ओर बल इस बात पर दिया जाता है कि परामर्शप्रार्थी कैसा अनुभव करता है वहीं दूसरी ओर व्यवहारवादी सिद्धान्त परामर्शप्रार्थी के अवलोकनीय व्यवहारों पर बल देते

हैं। दूसरे शब्दों में, व्यवहारवादी परामर्शप्रार्थी के अनुभवों की अपेक्षा उसके व्यवहारों को जानने व समझने में अधिक रूचि रखते हैं। व्यवहारवादी परामर्शदाता के लिए, भावनाओं या जागरूकता के स्तरों की अन्तर्दृष्टि पर्याप्त नहीं है । वह परिवर्तन के लिए क्रिया या व्यवहार को शब्दों की अपेक्षा अधिक सार्थक स्वीकार करता है। व्यवहारवादी समस्याग्रस्त व्यक्ति के लक्षणों पर अधिक ध्यान देते हैं ये समस्याऐं अधिकांशतः परामर्शप्रार्थी द्वारा अपने व्यवहार करने के ढंग या व्यवहार करने में असफल होने से सम्बन्धित होती है। इस प्रकार, व्यवहारवादी परामर्शदाता मुख्यतः क्रिया पर बल देते हैं।

ग्लेसर तथा जूनिन (1979) के अनुसार 'वास्तविकता-उपचार' पद्धति पर आधारित इस परामर्श को समझने की दृष्टि से निम्न मान्यताओं का ज्ञान होना आवश्यक है-

i. दूसरों को जानना- प्रत्येक व्यक्ति में, दूसरे व्यक्तियों को अनुभव करने , स्नेह पाने व करने तथा अपना व दूसरे का महत्व समझने की मूलभूत मनोवैज्ञानिक आवश्यकता होती है।
ii. सफलता-असफलता का बोध- व्यक्तियों में दूसरों से अपने को अलग अनुभव करने की भी आवश्यकता होती है। अन्य शब्दों में, यह सफल या असफल होने का आत्मबोध है।
iii. अनुत्तरदायी व्यवहार का कारण- अनुत्तरदायी या गैर-जिम्मेदारपूर्ण व्यवहार तब उत्पन्न होता है जबकि या तो व्यक्ति ने उत्तरदायी रूप से अपनी आवश्यकता पूर्ति के बारे में सीखा नहीं होता है अथवा वे उत्तरदायी रूप से आवश्यकता पूर्ति की क्षमता खो चुके होते हैं।
iv. समकालीन व्यवहार पर ध्यान- चूंकि कोई भी विगत व्यवहार या भूतकाल को परिवर्तित नहीं कर सकता अतः ध्यान समकालीन वर्तमान व्यवहार पर दिया जाना चाहिए।
v. व्यवहार परिवर्तन- चूंकि व्यक्ति भावनाओं, संवेगों अथवा अभिवृत्तियों की अपेक्षा व्यवहार को अधिक आसानी से नियन्त्रित कर सकते हैं अतः परामर्श का मुख्य उद्देश्य व्यवहार - परिवर्तन ही होना चाहिए।
vi. उत्तरदायी ढंग से जुड़ाव- चूंकि केन्द्र बिन्दु वर्तमान तथा अन्तर्वैयक्तिक प्रक्रिया परामर्श का लक्ष्य होती है, इसलिए परामर्शदाता का परामर्शप्रार्थी के साथ व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी ढंग से जुड़ना चाहिए।
vii. विकल्प उत्पन्न हेतु सहायता- परामर्शदाता का मूल कार्य, परामर्शप्रार्थी को परिवर्तन हेतु अनेक विकल्प उत्पन्न करने हेतु सहायता प्रदान करना है।
viii. सम्बद्धता- प्रत्येक व्यक्ति सफल, उत्तरदायी तथा लोगों से सम्बद्ध होना चाहता है, यह वृद्धि बल सभी व्यक्तियों में पाया जाता है।
ix. व्यवहार क्षमता- विशिष्ट अधिगम क्रियाओं के माध्यम से व्यक्ति में उत्तरदायी रूप से व्यवहार करने की क्षमताऐं निर्मित की जा सकती है।

इस प्रकार व्यवहारवादी सिद्धान्त परामर्श में मुख्य बल वर्तमान पर देते हैं अर्थात् अभी व्यक्ति क्या कर रहा है तथा उसके सफल होने के प्रयासों की दिशा क्या है? व्यक्ति में अपने व्यवहार में परिवर्तन लाने की योजना बनाने की क्षमता जाग्रत कर, उसको उत्तरादायी व्यवहार चुनने में समर्थ बनाया जा सकता है।

बोधात्मक सिद्धान्त (Cognitively Oriented Theory)

प्रभाववर्ती तथा व्यवहारवादी सिद्धान्तों से पृथक बोधात्मक सिद्धान्त में यह स्वीकार किया जाता है कि संज्ञान या बोध व्यक्ति के संवेगों व व्यवहारों के सबसे प्रबल निर्धारक है। व्यक्ति जो सोचता है उसी के अनुसार अनुभव व व्यवहार करता हैं। बोधात्मक सिद्धान्त की एक अन्य लोकप्रिय एवं प्रचलित विधा कार्य-सम्पादन विश्लेषण सिद्धान्त पर आधारित है। इसमें व्यवहार की समझ इस मान्यता पर निर्भर करती है कि सभी व्यक्ति अपने पर विश्वास सीख सकते हैं, अपने लिए चिन्तन या विचार कर सकते हैं, अपने निर्णय ले सकते हैं तथा अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने में समर्थ है। इस सिद्धान्त की सामान्य परिकल्पनाओं को हेरिस ने निम्न चार रूपों में दर्शाया है-

i. मैं ठीक हूँ , आप भी ठीक हैं - यह एक स्वस्थ मानसिक दशा है।
ii. मैं ठीक नहीं हूँ , आप भी ठीक नहीं हैं- यह जीवन में निराशावादी दृष्टिकोण रखने वाले व्यक्तियों की मनोदशा है।
iii. मैं ठीक हूँ , आप ठीक नहीं हैं- यह उस व्यक्ति की मनोस्थिति है जो कि दूसरे को अपने दुखों का कारण स्वीकार करता है।
iv. मैं ठीक नहीं हूँ आप ठीक हैं- यह लोगों की सामान्य मनोस्थिति है जबकि वे अन्यों की तुलना में अपने को शक्तिहीन अनुभव करते हैं।

परामर्शदाता इसके अन्तर्गत परामर्शप्रार्थी का, उसी नष्ट अहं दशा के पुनर्निर्माण हेतु प्रेरित करता है। समयानुकूल अहं दशा के उपयोग की प्रणाली अपनाने में सहायता करता है तथा उसे जीवन में सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाने व विकसित करने की क्षमता दृढ़ करने में सबलता प्रदान करने में सहायता देता हे।

व्यवस्थावादी प्रारूप सिद्धान्त (Systemetic Model Theory)

व्यवस्थावादी सिद्धान्त की प्रमुख विशेषता परामर्श का विभिन्न चरणों में संयोजित होना है। चरणों के अनुरूप इस सिद्धान्त में परामर्श की विभिन्न अवस्थाऐं स्वीकार की गयी है। सभी अवस्थाऐं एक-दूसरे से जुड़ी व अन्तः क्रियाशील मानी जाती हैं। यही व्यवस्था-प्रारूप मूलतः इस सिद्धान्त का आधार है व परामर्श की एक विशिष्ट प्रविधि का जनक है। संक्षेप में इन अवस्थाओं को इस प्रकार से जाना जा सकता है-\

i. प्रथम अवस्था- समस्या अन्वेषण (Problem Exploration)

ii. द्वितीय अवस्था- द्धिआयामी समस्या परिभाषा (Two-Dimensional Problem Definition)
iii. तृतीय अवस्था- विकल्पों का अभिज्ञान करना (Identification of Alternatives)
iv. चतुर्थ अवस्था- आयोजना (Planning)
v. पंचम अवस्था- क्रिया-प्रतिबद्धता (Action Commitment)
vi. षष्ठम अवस्था- मूल्यांकन एवं फीडबैक (Assessment and Feedback)

इस सिद्धान्त की प्रमुख मान्यता यह है कि व्यक्ति जीवन में एकीकरण के उच्चतम स्तर की प्राप्ति हेतु सदैव संलग्न रहता है। इसलिए परामर्श की व्यवस्था व्यावहारिक होनी चाहिए जो कि एकीकरण की एक ऐसी व्यवस्था की कल्पना में सक्षम हो जिसके द्वारा समकालीन जगत तथा उद्विकसित होने वाले व्यक्ति, दोनों के ही विषय में इस लाभदायी अभिमत का निर्माण हो सके।

अभ्यास प्रश्न

6. नप्रभाववर्ती सिद्धान्त मूलतः _____दर्शन परम्परा से उत्पन्न हुआ है ।
7. व्यवहारवादी सिद्धान्त परामर्शप्रार्थी के_____व्यवहारों पर बल देते हैं।
8. बोधात्मक सिद्धान्त की एक अन्य प्रचलित विधा _____ विश्लेषण सिद्धान्त पर आधारित है।
9. व्यवस्थावादी सिद्धान्त की प्रमुख विशेषता परामर्श _____ में संयोजित होना है।

7.9 परामर्श के विभिन्न दृष्टिकोण या विचारधाराएँ (Different School of Thoughts in Counselling)

परामर्श प्रक्रिया की प्रकृति को देखते हुए तथा परामर्शदाता की भूमिका को देखते हुए परामर्श की तीन प्रमुख विचारधाराएँ हैं जो कि निम्नलिखित हैं-

1. निर्देशीय या परामर्शदाता-केन्द्रित या नियोजक परामर्श
2. अनिर्देशीय या प्रार्थी केन्द्रित या अनुमत परामर्श
3. समन्वित परामर्श

निर्देशीय या परामर्शदाता-केन्द्रित या नियोजक परामर्श (Directive or Counsellor Centred or Prescriptive Counselling)

इस विचारधारा के मुख्य प्रवर्तक मिर्निसोटा विश्वविद्यालय के ई0जी0 विलियमसन हैं इस प्रकार इस विचारधारा के अन्तर्गत परामर्शदाता प्रार्थी की समस्या को हल करने का मुख्य उत्तरादायित्व अपने ऊपर लेता है। इस प्रक्रिया में परामर्शदाता समस्या की खोज और उसे परिभाषित करता है, निदान करता है तथा समस्या के उपचार के बारे में बताता है।

निर्देशीय परामर्श की अवधारणाएँ (Basic Assumptions of Direvtive Counselling)

एन्ड्रीयूस और विली के अनुसार निर्देशीय परामर्श की मूलभूत अवधारणाएँ निम्नलिखित हो सकती हैं-

i. सलाह देने की सक्षमता- परामर्शदाता के पास श्रेष्ठ प्रशिक्षण, अनुभव और सूचना होती है। वह समस्या के समाधान के बारे में सलाह देने के लिये अधिक सक्षम है।
ii. परामर्श एक बौद्धिक प्रक्रिया है- किसी प्रार्थी की कुसमायोजनता से उसकी बौद्धिक योग्यता पूर्णतया नष्ट नहीं होती । अतः परामर्श प्राथमिक रूप से बौद्धिक प्रक्रिया है। यह व्यक्ति के व्यक्तित्व के संवेगात्मक पक्षों की बजाय बौद्धिक पक्षों पर बल देता है।
iii. प्रार्थी की समस्या समाधान में अक्षमता- परामर्श की यह अवधारणा भी है कि प्रार्थी में सदा ही समस्या समाधान की क्षमता नहीं होती।

इस प्रकार हम देखेते हैं कि इसमें प्रत्यक्ष और व्याख्यात्मक विधियों की सलाह दी जाती है। इस प्रकार के परामर्श में व्यक्ति की अपेक्षा समस्या पर ध्यान हो और प्रार्थी सारी प्रक्रिया में सहयोग करे। प्रार्थी को परामर्शदाता के अधीन कार्य करना होता है न कि उसके साथ मिलकर।

निर्देशीय परामर्श के सोपान (Steps in Directive Counselling)

निर्देशीय परामर्श के निम्नलिखित छः सोपान दिए हैं-

i. **विश्लेषण (Analysis)** - विश्लेषण के अन्तर्गत परामर्श के बारे में सही जानकारी प्राप्त करने के लिए अनेक स्रोतों द्वारा आधार-सामग्री एकत्रित की जाती है।
ii. **संश्लेषण (Synthesis)-** द्वितीय सोपान में संकलित आधार सामग्रियों को क्रमबद्ध, व्यवस्थित एवं संक्षेप में प्रस्तुत किया जाता है। जिससे परामर्शप्रार्थी के गुणों, न्यूनताओं समायोजन एवं कुसमायोजन की स्थितियों का पता लगाया जा सके।
iii. **निदान (Diagnosis)** - निदान के अन्तर्गत परामर्शप्रार्थी द्वारा अभिव्यक्ति समस्या के कारण तत्वों तथा उनकी प्रकृति के बारे में निष्कर्ष निकाले जाते हैं।
iv. **पूर्व अनुमान (Prognosis)** - इसमें परामर्शप्रार्थी की समस्या के सम्बन्ध में भविष्यवाणी की जाती है
v. **परामर्श या उपचार (Counselling or Treatment)** - पंचम सोपान में परामर्शदाता परामर्शप्रार्थी के समायोजन तथा पुनः समायोजन के बारे में वांछनीय प्रयास करता है।

vi. **अनुवर्तन (Follow-Up)** - इसमें परामर्शप्रार्थी की नयी समस्याओं के पुनः घटित होने की सम्भावनाओं से निपटने में सहायता की जाती है और परामर्शप्रार्थी को प्रदान किए गए परामर्श की प्रभावशीलता का मूल्यांकन किया जाता है।

निर्देशीय परामर्श की विशेषताएँ (Characterstics of Directive Counselling)

i. प्रक्रिया में परामर्शदाता मुख्य भूमिका निभाता है।
ii. वह प्रार्थी को सलाह प्रदान करता है।
iii. इस प्रक्रिया के केन्द्र-बिन्दु में व्यक्ति नहीं, बल्कि समस्या है।
iv. प्रार्थी परामर्शदाता के अधीन कार्य करता है न कि साथ।
v. इस परामर्श में , जिन विधियों का प्रयोग किया जाता है वे प्रत्यक्ष, प्रभावी और व्याख्यात्मक होती हैं।
vi. परामर्श व्यक्ति के व्यक्तित्व के संवेगात्मक पक्ष की बजाय बौद्धिक पक्ष पर अधिक बल देता है।

निर्देशीय परामर्श की सीमाएँ (Limitiation of Directive Counselling)

i. इस प्रक्रिया में प्रार्थी अधिक निर्भर होता है वह कुसमायोजन की नई समस्याओं का समाधान करने के भी अयोग्य होता है।
ii. क्योंकि प्रार्थी परामर्शदाता से कभी भी स्वतन्त्र नहीं हो पाता, यह उत्तम और प्रभावी निर्देशन नहीं है।
iii. जब तक व्यक्ति स्वयं के अनुभवों द्वारा कुछ दृष्टिकोणों या अभिवृत्तियों का विकास नहीं कर लेता तब तक वह स्वयं निर्णय नहीं ले सकता। इस प्रकार के अनुभव तथा दृष्टिकोणों के विकास का इस प्रकार के निर्देशन कार्यक्रम में सदा अभाव रहता है।
iv. परामर्शदाता प्रार्थी को भविष्य में गलतियों को करने से बचाने में असमर्थ रहता है।
v. परामर्शप्रार्थी के बारे में जानकारियों का अभाव रहता है जिससे गलत परामर्श सम्भव है।

अनिर्देशीय परामर्श या प्रार्थी-केन्द्रित या अनुमत परामर्श (Non-Directive or Client-Centered or Permissive Counselling)

निर्देशीय परामर्श के विपरीत अनिर्देशात्मक परामर्श परामर्शप्राथी-केन्द्रित होता है। इस प्रकार के परामर्श में परामर्शप्रार्थी को बिना किसी प्रत्यक्ष निर्देश के आत्मोपलब्धि एवं आत्मसिद्धि तथा आत्मनिर्भरता की ओर उन्मुख किया जाता है। इस सिद्धान्त को प्रतिपादित करने तथा इसे सर्वप्रचलित करने का श्रेय कार्ल आर रोजर्स (Carl R. Rogers) को जाता है।

अनिर्देशीय परामर्श की मूलभूत अवधारणाएँ (Basic Assumptions in Non-Directive Counselling)

i. व्यक्ति की मर्यादा में विश्वास (Belief in the dignity of man) - रोजर्स व्यक्ति की मान-मर्यादा में विश्वास रखता है। वह व्यक्ति को स्वयं निर्णय लेने में सक्षम मानता है तथा ऐसे करने के उसके अधिकार को स्वीकार करता है।

ii. वास्तवीकरण की ओर प्रवृत्ति (Tendancy toward Acutualization)- रोजर्स ने इस बात पर बल दिया कि व्यक्ति की वृद्धि और विकास की क्षमता व्यक्ति की वह आवश्यक विशेषता है जिस पर परामर्श ओर मनोचिकित्सा विधियाँ निर्भर करती हैं।

iii. व्यक्ति विश्वास योग्य है (Man in Trustworthy) - रोजर्स व्यक्ति का मानना है कि व्यक्ति विश्वास योग्य है क्योंकि व्यक्ति कुछ शक्तियों के साथ पैदा होता है जिन पर नियंत्रण करना आवश्यक है यदि स्वस्थ व्यक्तित्व विकास होने देना है।

iv. व्यक्ति अपनी बुद्धि से अधिक विवकेशील है (Man is wiser than his intellect)- व्यक्ति अपनी बुद्धि का उपयोग करते हुए विवकेशील होकर समस्याओं के सम्बन्ध में सही निर्णय ले सकता है।

अनिर्देशीय परामर्श के सोपान (Steps in Non-Directive Counselling)

i. **वार्तालाप (Conversation)** - प्रथम सोपान में परामर्शदाता तथा परामर्शप्रार्थी के बीच अनेक बैठकों में अनौपचारिक रूप से विभिन्न विषयों पर बातचीत होती है। अनेक बार ये दोनों किसी उद्देश्य के मिलते हैं लेकिन प्रथम सोपान का मुख्य उद्देश्य है- परस्पर सौहार्द की स्थापना करना है जिससे परामर्शप्रार्थी बिना किसी संकोच से अपनी बात को कहने हेतु मानसिक रूप से तैयार हो सके। परामर्शप्रार्थी द्वारा यह प्रयास किया जाता है कि वह परामर्शप्रार्थी के साथ मित्र. के समान सम्बन्ध स्थापित कर ले और उसके समक्ष ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दे कि मित्र-चिकित्सा की पद्धति को प्रयुक्त किया जा सके।

ii. **जाँच-पड़ताल (Probing)-** परामर्शप्रार्थी की वैयक्तिक समस्या, परिस्थिति एवं सन्दर्भों के सम्बन्ध में सविस्तार जाँच-पड़ताल की व्यवस्था की जाती है। इसलिए परामर्शदाता विभिन्न परोक्ष प्रविधियों का प्रयोग करता है।

iii. **संवेगात्मक अभिव्यक्ति (Emotional Release)** - परामर्शप्रार्थी की व्यवस्थाओं , भावनाओं तथा मानसिक तनावों को अभिव्यक्त करने हेतु उसे अवसर प्रदान करना ही इस सोपान का मुख्य उद्देश्य है।

iv. **परोक्ष रूप से प्रदान किए गए सुझावों पर चर्चा (Discussion on Indirectly given Suggestion)-** इस सोपान में परामर्शप्रार्थी परामर्शदाता द्वारा दिए गए सुझावों को एक आलोचनात्मक दृष्टि से देखता है।

v. **योजना का प्रतिपादन (Project Formulation)-** इसमें परामर्शदाता को स्वयं की समस्या का हल प्राप्त करने हेतु एक वास्तविक योजना का निर्माण करने का अवसर प्रदान किया जाता है। इस योजना के स्वरूप , प्रभाव इत्यादि के सम्बन्ध में दोनों विचार-विमर्श करते हैं।

vi. **योजना का क्रियान्वयन एवं मूल्यांकन (Project Implementation and Evaluation)-** षष्ठम् सोपान के अन्तर्गत परामर्शप्रार्थी द्वारा बनाई गई योजना को क्रियान्वित किया जाता है तथा उसकी प्रभावशीलता ज्ञात करने के लिए आत्म-मूल्यांकन की भी व्यवस्था भी इस सोपान में की जाती हैं।

अनिर्देशीय परामर्श की प्रमुख विशेषताएँ (Main Characteristics of Non-Directive Counselling)

i. यह प्रार्थी-केन्द्रित परामर्श है।
ii. यह इस सिद्धान्त पर आधारित होता है कि व्यक्ति में इतनी क्षमता और शक्ति होती है जिससे कि उसकी वृद्धि और विकास हो सके ताकि वह व्यक्ति वास्तविकता में परिस्थितियों का सामना कर सके।
iii. इस परामर्श विचारधारा में परामर्शदाता सबसे अधिक निष्क्रिय होता है।
iv. व्यक्ति जैसा है वैसा ही स्वीकार किया जाता है और वह अपने किसी भी दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करने में स्वतंत्र है।
v. इसके द्वारा मनोवैज्ञानिक समायोजन में सुधार होता है।
vi. इसके प्रयोग से मनोवैज्ञानिक तनाव कम होते है
vii. इस प्रकार के परामर्श में सुरक्षात्मकता में कमी आती है।
viii. इस प्रकार के परामर्श में प्रार्थी स्वयं के चित्र में और स्वयं के बारे में वांछित या आदर्श चित्र में बहुत अधिक निकटता होती है।
ix. प्रार्थी का व्यवहार संवेगात्मक रूप से अधिक परिपक्व माना जाता है।
x. प्रार्थी-केन्द्रित परामर्श में परामर्शदाता का सामान्य लक्ष्य होता है- प्रार्थी के स्वयं के संगठन और कार्यशीलता में परिवर्तन लाना है।
xi. इस परामर्श में सम्पूर्ण उत्तरदायित्व प्रार्थी या व्यक्ति पर ही रहता है।

अनिर्देशीय परामर्श की सीमाएँ (Limitation of Non-Directive Counselling)

i. यह परामर्श मनोविश्लेषण की तरह गहरा नहीं होता।
ii. प्रार्थी को अपने वर्तमान दृष्टिकोणों की स्वतंत्र अभिव्यक्ति की आज्ञा होती है, लेकिन इसमें यह बताने का प्रयास नहीं किया जाता कि ये वर्तमान दृष्टिकोण क्यों होते हैं। इसमें भूतकाल के बारे में कोई खोज नहीं, कोई सुझाव नहीं, पुनः शिक्षा का कोई प्रयास नहीं होता।
iii. परामर्शदाता को लचीलेपन की आज्ञा का अभाव भी इस परामर्श की एक कमी है।

iv. प्रार्थी-केन्द्रित सिद्धान्त की मूलभूत कमी यह है कि इसमें इस बात की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता कि उद्दीपक स्थिति और वातावरण की प्रकृति व्यवहार को किस प्रकार प्रभावित करती है।
v. प्रार्थी -केन्द्रित परामर्श सिद्धान्त के अन्तर्गत बहुत सी परामर्श-परिस्थितियाँ सफलतापूर्वक नहीं आती।
vi. यह अधिक समय खर्च करने वाली प्रक्रिया है। एक बार शुरू करने के पश्चात् प्रार्थी अपना संवाद समाप्त हीं नहीं करता। इससे कई अन्य व्यक्ति परामर्श लेने से वंचित रह जाते हैं।
vii. प्रार्थी के साधनों, निर्णयों और बुद्धिमता पर निर्भर नहीं रहा जा सकता।
viii. कई बार परामर्शदाता की निष्क्रियता से प्रार्थी अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने में हिचकिचाहट अनुभव करता है।

समन्वित या संकलक या समाहारक परामर्श (Eclectic Counselling)

जो परामर्शदाता निर्देशीय अथवा अनिर्देशीय विचारधाराओं से सहमत नहीं है उन्होंने परामर्श के एक अन्य प्रारूप का विकास किया है जिसे संग्रही या समन्वित परामर्श कहा जाता है। संग्रही परामर्श में निर्देशीय एवं अनिर्देशीय दोनों प्रारूपों की अच्छी बातों को ग्रहण किया गया है। एक प्रकार से यह दोनों के बीच का परामर्श प्रारूप है जिसे मध्यमार्गीय कहा जा सकता है।

इस प्रकार के परामर्श में परामर्शदाता न तो अधिक सक्रिय होता है और न ही अधिक निष्क्रिय हें इस प्रकार के परामर्श के मुख्य प्रवर्तक एफ0 सी0 थोर्न हैं इस प्रकार के परामर्श में व्यक्ति की आवश्यकताओं और उसके व्यक्तित्व का अध्ययन परामर्शदाता द्वारा ही किया जाता है। इसके पश्चात् परामर्शदाता उन प्रविधियों का चयन करता है जो व्यक्ति के लिये अधिक उपयोगी या सहायक है।

इस प्रकार के परामर्श -प्रक्रिया में परामर्शदाता पहले निर्देशीय परामर्श विधि के अनुसार शुरू कर सकता है तथा कुछ समय बाद अनिर्देशीय परामर्श विधि का अनुसरण कर सकता है। या इसके विपरीत जैसी स्थिति चाहे। इस प्रकार समन्वित परामर्श में दोनों परामर्शदाता और प्रार्थी सक्रिय और सहयोगात्मक होते हैं। दोनो बारी-बारी से वार्तालाप करते हैं और संयुक्त रूप से समस्या का समाधान करते हैं।

इस प्रकार के परामर्श में जो प्रविधियां प्रयोग की जाती हैं- वे है पुनः विश्वास, सूचना प्रदान करना, केस-हिस्ट्री, परीक्षण आदि।

समन्वित परामर्श के सोपान (Steps in Eclectic Counselling)

समन्वित परामर्श के सोपान निम्नलिखित हैं-

i. प्रार्थी की आवश्यकताओं और व्यक्तित्व की विशेषताओं का अध्ययन (Study of the needs and personality characteristics of the client)- इस विचारधारा के अन्तर्गत

परामर्शदाता पहले-पहल प्रार्थी की आवश्यकताओं के बारे में छानबीन करता है। इसी सोपान के अन्तर्गत वह व्यक्ति के व्यक्तित्व की विशेषताओं के बारे में जानकारी एकत्रित करता है।

ii. प्रविधियों का चयन (Selection of Techniques)- इस सोपान के अन्तर्गत आवश्यकतानुसार प्रविधियों का चयन किया जाता है तथा उनका प्रयोग किया जाता है। इन प्रविधियों का प्रयोग व्यक्ति की आवश्यकताओं के अनुसार ही किया जाता है।

iii. प्रविधियों का प्रयोग (Application of Techniques)& - चयन की गई प्रविधियों का प्रयोग विशिष्ट परिस्थितिों में ही किया जाता है। जिन प्रविधियों को चुना जाता है उनकी उपयोगिता प्रार्थी की परिस्थिति के अनुसार ही देखी जाती है।

iv. प्रभावशीलता का मूल्यांकन (Evaluation of Effectiveness) - इस सोपान के अन्तर्गत प्रभावशीलता का मूल्यांकन विभिन्न विधियों से किया जाता है।

v. परामर्श की तैयारी (Preparations for Counselling) - इस सोपान के अन्तर्गत पथ-पदर्शन के लिये आवश्यक तैयारी की जाती है।

vi. प्रार्थी और अन्य व्यक्ति की राय प्राप्त करना (Seeking the opnion of the Client and other related people) - परामर्श सम्बन्धी कार्यक्रम एवं अन्य उद्देश्यों तथा विषयों के बारे में प्रार्थी तथा उससे सम्बन्धित अन्य व्यक्तियों से राय प्राप्त की जाती है।

समन्वित परामर्श की विशेषताएँ (Characteristics of Eclectic Counselling)

थार्न (Thorne) के अनुसार समन्वित परामर्श की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

i. इसमें वस्तुनिष्ठ एवं समन्वयपरक विधियों का प्रयोग किया जाता है।

ii. परामर्श के प्रारम्भ में प्रार्थी की सक्रियता वाली प्रविधियों का प्रयोग अधिक होता है और इसमें परमर्शदाता निष्क्रिय होता है।

iii. इसमें कार्य-कुशलता एवं उपचार प्राप्त करने को विशेष महत्व प्रदान किया जाता हैं।

iv. इसके प्रयोग में अल्पव्यय के सिद्धान्त को ध्यान में रखा जाता है।

v. इस प्रकार के परामर्श में समस्त विधियों और प्रविधियों के प्रयोग के लिये परामर्शदाता में व्यावसायिक कुशलता एवं दक्षता का होना अनिवार्य होता है।

vi. प्रार्थी की आवश्यकता को ध्यान में रखकर ही यह निर्णय लिया जाता है कि कब निर्देशीय विधि का प्रयोग किया जाए और कब अनिर्देशीय विधि का।

vii. प्रार्थी को अवसर उपलब्ध कराने पर बल दिया जाता है ताकि वह स्वयं समस्या का हल खोज सके।

समन्वित परामर्श की सीमाएँ (Limitation of Eclectic Counselling)

i. परामर्श का यह प्रकार अस्पष्ट और अवसरवादी है।

ii. दोनों निर्देशीय और अनिर्देशीय परामर्शों को मिश्रित नहीं किया जा सकता।

iii. इसमें यह प्रश्न उठता है कि प्रार्थी को कितनी स्वतन्त्रता प्रदान की जाये। इसके बारे में कोई निश्चित नियम नहीं हो सकता।

अभ्यास प्रश्न

10. परामर्श प्रक्रिया की _____ प्रमुख विचारधाराएँ हैं।
11. निर्देशीय परामर्श विचारधारा के मुख्य प्रवर्तक मिर्निसोटा विश्वविद्यालय के _____ हैं।
12. निर्देशीय परामर्श प्रक्रिया में _____ मुख्य भूमिका निभाता है।
13. अनिर्देशात्मक परामर्श _____ केन्द्रित होता है।
14. अनिर्देशीय सिद्धान्त को प्रतिपादित करने श्रेय _____ को जाता है।
15. अनिर्देशात्मक परामर्श विचारधारा में परामर्शदाता सबसे अधिक _____ होता है।
16. समन्वित परामर्श को _____ कहा जा सकता है।
17. समन्वित परामर्श मुख्य प्रवर्तक _____ हैं।
18. समन्वित परामर्श में _____ एवं समन्वयपरक विधियों का प्रयोग किया जाता है।

7.10 सारांश

परामर्श एक त्रिध्रुवीय प्रक्रिया है। जिसके तीन प्रमुख अंग है। लक्ष्य, परामर्शदाता एवं परामर्शप्रार्थी। परामर्श की सफलता के लिए उसमें निम्न चार आधारभूत मान्यताओं का होना आवश्यक है- (1) इच्छा जानना (2) परामर्शदाता का अनुभवी होना (3) उचित वातावरण (4) आवश्यकता की पूर्ति- परामर्श की प्रक्रिया के तीन मुख्य अंग हैं-परामर्श का लक्ष्य, परामर्शप्रार्थी एवं परामर्शदाता। परामर्श की प्रक्रिया का सबसे महत्वूपर्ण घटक लक्ष्य निर्धारण है। एक प्रकार से परामर्श का लक्ष्य परामर्शप्रार्थी को मूल्यों के पुनरान्वेषण में सहायता देना है। मैकडैनियल और शैफ्टल के अनुसार परामर्श प्रक्रिया निम्नलिखित सिद्धान्तों पर आधारित है- (1) स्वीकृति का सिद्धान्त (2) व्यक्ति के सम्मान का सिद्धान्त (3) व्यक्ति के साथ विचार करने का सिद्धान्त (4) लोकतन्त्रीय आदर्शों के साथ निरन्तरता का सिद्धान्त (5) सीखने का सिद्धान्त परामर्श प्रक्रिया के विलियमसन और डरले ने निम्नलिखित 6 पदों की चर्चा की है- (1) विश्लेषण (2) संश्लेषण (3) निदान (4) पूर्व अनुमान (5) परामर्श (6) अनुवर्तन। परामर्श का महत्वपूर्ण तत्व है - परस्पर विचारों का आदान-प्रदान। यदि विचारों के आदान-प्रदान में कोई विघ्न आता है तो परामर्श अपूर्ण ही रहता है। समुचित परामर्शप्रार्थी-परामर्शदाता सम्बन्धों विकसित करने हेतु कतिपय तकनीकों का विकास किया गया है विलियमसन ने परामर्श प्रविधियों या तकनीकों को निम्नलिखित पांच शीर्षकों के अन्तर्गत वर्णित किया है- ;1 मधुर सम्बन्ध स्थापित करना ;2 स्वयं-बोध उत्पन्न करना ;3 क्रिया के लिये कार्यक्रम का नियोजन और सुझाव ;4 व्याख्यात्मक विधि ;5 अन्य कार्यकर्ताओं का सहयोग। इन उपरोक्त प्रविधियों के अतिरिक्त परामर्श की अन्य प्रविधियां भी हैं

जो निम्नलिखित है- (1) मौन-धारण (2) स्वीकृति (3) स्पष्टीकरण (4) पुनर्कथन (5) मान्यता (6) प्रश्न पूछना (7) हास्य रस (8) सारांश स्पष्टीकरण (9) विश्लेषण (10) व्याख्या या विवेचना (11) परित्याग (12) आश्वासन।

परामर्शकर्ता के लिये सैद्धान्तिक आधारों का परिचय आवश्यक है। अध्ययन की सुविधा हेतु, दृष्टिकोणों के आधार पर इन्हें चार मुख्य वर्गों में रखा जा सकता है-

1. प्रभाववर्ती सिद्धान्त -यह सिद्धान्त मूलतः अस्तित्वादी मानववादी दर्शन परम्परा से उत्पन्न हुआ है। इसमें परामर्शप्रार्थी को प्रभावपूर्ण ढंग से समझने पर विशेष बल दिया जाता है। केम्प (1971), राजर्स (1975), बारूथ तथा हूबर (1985) जैसे विद्वान इस सिद्धान्त के प्रमुख समर्थक हैं। उनका मत है कि मानवीय अन्तः क्रिया ही प्रभाववर्ती परामर्शदाता के लिये ध्यान का केन्द्र है। मानवतावादी मनोविज्ञान की शेफर (1978) की प्रमुख मान्यताऐं ही इस सिद्धान्त का आधार है।
2. व्यवहारवादी सिद्धान्त -प्रभाववर्ती सिद्धान्तों में जहाँ एक ओर बल इस बात पर दिया जाता है कि परामर्शप्रार्थी कैसा अनुभव करता है वहीं दूसरी ओर व्यवहारवादी सिद्धान्त परामर्शप्रार्थी के अवलोकनीय व्यवहारों पर बल देते हैं। दूसरे शब्दों में, व्यवहारवादी परामर्शप्रार्थी के अनुभवों की अपेक्षा उसके व्यवहारों को जानने व समझने में अधिक रूचि रखते हैं। व्यवहारवादी परामर्शदाता के लिए, भावनाओं या जागरूकता के स्तरों की अन्तर्दृष्टि पर्याप्त नहीं है। वह परिवर्तन के लिए क्रिया या व्यवहार को शब्दों की अपेक्षा अधिक सार्थक स्वीकार करता है। व्यवहारवादी समस्याग्रस्त व्यक्ति के लक्षणों पर अधिक ध्यान देते हैं ये समस्याऐं अधिकांशतः परामर्शप्रार्थी द्वारा अपने व्यवहार करने के ढंग या व्यवहार करने में असफल होने से सम्बन्धित होती है। इस प्रकार, व्यवहारवादी परामर्शदाता मुख्यतः क्रिया पर बल देते हैं।
3. बोधात्मक सिद्धान्त-प्रभाववर्ती तथा व्यवहारवादी सिद्धान्तों से पृथक बोधात्मक सिद्धान्त में यह स्वीकार किया जाता है कि संज्ञान या बोध व्यक्ति के संवेगों व व्यवहारों के सबसे प्रबल निर्धारक है। व्यक्ति जो सोचता है उसी के अनुसार अनुभव व व्यवहार करता हैं। बोधात्मक सिद्धान्त की एक अन्य लोकप्रिय एवं प्रचलित विधा कार्य-सम्पादन विश्लेषण सिद्धान्त पर आधारित है। इसमें व्यवहार की समझ इस मान्यता पर निर्भर करती है कि सभी व्यक्ति अपने पर विश्वास सीख सकते हैं, अपने लिए चिन्तन या विचार कर सकते हैं, अपने निर्णय ले सकते हैं तथा अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने में समर्थ है।
4. व्यवस्थावादी प्रारूप सिद्धान्त -इस सिद्धान्त की प्रमुख मान्यता यह है कि व्यक्ति जीवन में एकीकरण के उच्चतम स्तर की प्राप्ति हेतु सदैव संलग्न रहता है। इसलिए परामर्श की व्यवस्था व्यावहारिक होनी चाहिए जो कि एकीकरण की एक ऐसी व्यवस्था की कल्पना में सक्षम हो

जिसके द्वारा समकालीन जगत तथा उद्विकसित होने वाले व्यक्ति, दोनों के ही विषय में इस लाभदायी अभिमत का निर्माण हो सके।

परामर्श प्रक्रिया की प्रकृति को देखते हुए तथा परामर्शदाता की भूमिका को देखते हुए परामर्श की तीन प्रमुख विचारधाराएँ हैं जो कि निम्नलिखित हैं-

1. निर्देशीय या परामर्शदाता-केन्द्रित या नियोजक परामर्श -इस विचारधारा के मुख्य प्रवर्तक मिर्निसोटा विश्वविद्यालय के ई0जी0 विलियमसन हैं इस प्रकार इस विचारधारा के अन्तर्गत परामर्शदाता प्रार्थी की समस्या को हल करने का मुख्य उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेता है। इस प्रक्रिया में परामर्शदाता समस्या की खोज और उसे परिभाषित करता है, निदान करता है तथा समस्या के उपचार के बारे में बताता है।
2. अनिर्देशीय परामर्श या प्रार्थी-केन्द्रित या अनुमत परामर्श -निर्देशात्मक परामर्श के विपरीत अनिर्देशात्मक परामर्श परामर्शप्राथी-केन्द्रित होता होता है। इस प्रकार के परामर्श में परामर्शप्रार्थी को बिना किसी प्रत्यक्ष निर्देश के आत्मोपलब्धि एवं आत्मसिद्धि तथा आत्मनिर्भरता की ओर उन्मुख किया जाता है। इस सिद्धान्त को प्रतिपादित करने तथा इसे सर्वप्रचलित करने का श्रेय कार्ल आर रोजर्स (Carl R. Rogers) को जाता है।
3. समन्वित या संकलक या समाहारक परामर्श -जो परामर्शदाता निर्देशात्मक अथवा अनिर्देशात्मक विचारधाराओं से सहमत नहीं है उन्होंने परामर्श के एक अन्य प्रारूप का विकास किया है जिसे संग्रही या समन्वित परामर्श कहा जाता है। संग्रही परामर्श में निर्देशात्मक एवं अनिर्देशात्मक दोनों प्रारूपों की अच्छी बातों को ग्रहण किया गया है। एक प्रकार से यह दोनों के बीच का परामर्श प्रारूप है जिसे मध्यमार्गीय कहा जा सकता है।

7.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. त्रिधुवी
2. समस्या
3. 6
4. पारस्परिक सम्पर्क
5. परस्पर विचारों का आदान-प्रदान
6. अस्तित्ववादी मानववादी
7. अवलोकनीय
8. कार्य-सम्पादन
9. विभिन्न चरणों
10. तीन

11. ई0जी0 विलियमसलन
12. परामर्शदाता
13. परामर्शप्रार्थी
14. कार्ल रोजर्स
15. निष्क्रिय
16. मध्यवर्गीय
17. एफ0 सी0 थोर्न
18. वस्तुनिष्ठ

7.12 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. डॉ0 आशा रावत- वृतिक निर्देशन तथा रोजगार सूचना, आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ, 2012
2. एम0एल0 मित्तल- कैरियर निर्देशन एवं रोजगार सूचना, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ, 2010
3. डॉ0 एस0सी0 ओबराय- शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन एवम् परामर्श, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ, 2010
4. डॉ0 सीताराम जायसवाल- शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा, 2012
5. डॉ0 रामपाल सिंह; डॉ0 राधाबल्लभ उपाध्याय- शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन-विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा, 2004
6. डॉ0 आर0 ए0 शर्मा- निर्देशन एवं परामर्श के मूल तत्व, आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ, 2009

7.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. परामर्श की प्रक्रिया की अवधारणा और पदों का विवरण दें।
2. परामर्शदाता और परामर्शप्राथी के मध्य सम्बन्धों की चर्चा कीजिए।
3. परामर्श के सिद्धान्तों की व्याख्या करें।
4. परामर्श की प्रमुख विशेषतायें बताएँ। निर्देशात्मक परामर्श अनिर्देशात्मक परामर्श से किस प्रकार भिन्न है?
5. परामर्श के क्षेत्र में प्रचलित किन्हीं दो सिद्धान्तों का संक्षिप्त विवरण दीजिए।
6. संक्षिप्त टिप्पणी लिखें-
   i. निर्देशात्मक परामर्श
   ii. अनिर्देशात्मक परामर्श
   iii. समन्वित परामर्श

इकाई 8 समूह निर्देशन- अर्थ, प्रत्यय, परिभाषा, सिद्धान्त, समूह निर्देशन प्रक्रिया एंव तकनीकी

5.12 उद्देश्य
5.13 समूह निर्देशन- अर्थ, परिभाषा
5.14 समूह निर्देशन का उद्देश्य एवं महत्व
5.15 समूह निर्देशन प्रक्रिया
5.16 समूह निर्देशन की समस्याएं एवं लाभ
5.17 समूह निर्देशन के सिद्धान्त
5.18 समूह निर्देशन के आवश्यक तत्व
5.19 समूह निर्देशन की क्रियाओं का आयोजन
5.20 समूह निर्देशन की प्रविध् (तकनीकि)
5.21 सारांश
5.22 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.23 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
5.24 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

वर्तमान बदलते परिदृश्य में मानव के विकास के साथ-साथ विद्यार्थी जीवन के प्रत्येक स्तर एंव प्रत्येक पक्ष पर निर्देशन की आवश्यकता महसूस होती है। निर्देशन एक व्यवसायिक प्रक्रिया के साथ-साथ सामूहिक तथा व्यक्तिगत रूप से सम्पन की जाने वाली प्रक्रिया है। यह व्यक्ति विशेष को नहीं ब्लकि किसी भी व्यक्ति, बालक को किसी समय और उम्र में दी जा सकती है। कोठारी आयोग (1964-66) ने स्पष्ठ रूप से निर्देशन को शिक्षा का अंग कहा एंव इसको प्राथमिक स्तर से लेकर माध्यमिक स्तर तक के शिक्षकों को प्रशिक्षित करने की बात कही और वित्तिय सुविधाओं को देखते हुए आगामी वर्षों में प्रत्येक माध्यमिक विद्यालयों में अतिथि परामर्श कर्ताओं द्वारा शिक्षकों को निर्देशन के कार्यों के बारे में परिचय कराया जाए इसके अतिरिक्त प्रत्येक जिला स्तर के किसी विद्यालय पर निर्देशन कार्यक्रमों का आयोजन किए जाने की बात कही । विश्व के बदलते परिदृश्य में बालक के मस्तिष्क का बदलना स्वभाविक है जैसे विश्वास, अभिवृति मूल्यों में परिवर्तन स्वाभाविक है, और उसे समझने की

आवश्यकता होती है इस प्ररिप्रेक्ष्य में निर्देशन की भी आवश्यकता महसूस होती है बदलते परिदृश्यों के कारण निर्देशन की आवश्यकता और बढ़ जाती है।

विकास का पक्ष चाहे वो शैक्षिक व्यवसायिक, व्यक्तिगत, समाजिक, धार्मिक पक्षों के साथ-साथ विद्यालय के वातावरण में परिवर्तन होने पर निर्देशन की आवश्यकता होती है। विद्यार्थियों की विभिन्न प्रकार की समस्याएं उत्तपादकता आदि के कारण भी निर्देशन की आवश्यकता महसूस होती है।

अपने व्यापक रूप में निर्देशन में विभिन्न प्रकार के शैक्षिक आयोजन के द्वारा व्यक्ति को उसकी खामियों एंव अभिवृतियों से अवगत कराना, समायोजन करना ताकि वास्तविक परिदृश्य में वह खुद को समायोजित कर सके। व्यक्तिगत दृष्टिगत के साथ-साथ सामूहिक दृष्टिकोण से निर्देशन की आवश्यकता पड़ती है। अगर हम प्रकार की बात करें तो निर्देशन व्यक्तिगत एंव सामूहिक दो प्रकार से होता है।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्धयन करने के पश्चात आप -

1. समूह निर्देशन का अर्थ जान पाऐंगे।
2. समूह निर्देशन की परिभाषित करा सकेंगे।
3. समूह निर्देशन के सिद्धान्त की व्याख्या कर सकेंगे ।
4. समूह निर्देशन की प्रक्रिया को अपने शब्दों में लिख सकेंगे ।
5. समूह निर्देशन की तकनीकि का विवरण कर सकेंगे।
6. समूह निर्देशन की आवश्यकता एंव महत्व को बता सकेंगे।
7. व्यवहारिक रूप से समूह निर्देशन की विभिन्न प्रकार की समस्या को समझ सकेंगें।

8.3 समूह निर्देशन – अर्थ एवं परिभाषा

समूह निर्देशन, निर्देशन कार्यक्रम का ही एक भाग है। निर्देशन प्रक्रिया का महत्वपूर्ण उद्देश्य व्यक्तिगत रूप से किसी व्यक्ति को खुद निर्देशित करना, खुद का ज्ञान, करना एंव खुद का समान्यिकरण करना होता है। जिसका कुछ भाग सामूहिक संरचना में ही प्राप्त किया जा सकता है। समूह निर्देशन सामूहिक जीवन परिदृश्य में किसी निर्देशन कर्त्ता द्वारा एक समय पर विभिन्न विद्यार्थियों के समूहों को निर्देशित किया जाता है ।

शैक्षिक तथा व्यवसायिक योजनाओं के चयन, क्रियान्वयन, एंव आयोजन तथा विकास से सम्बधित विभिन्न पक्षों में सामूहिक वर्तालाप अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

"समूह निर्देशन से तात्पर्य ऐसे निर्देशन से है जिसमें एक से अधिक व्यक्तियों का समूह, समूह के प्रत्येक व्यक्तियों की समस्याओं के समाधान के प्ररिप्रेक्ष्य में निर्देशित होते हैं/विचार करते हैं''

समूह निर्देशन, निर्देशन का एक रूप है। जिसमें निर्देशनकर्ता एक से अधिक व्यक्ति जो एक ही आयु समूह एवं समस्या के होते है, को निर्देशित करता है समूह निर्देशन कहलाता है। सामान्यतः निर्देशन की

प्रारम्भिक अवस्था में जब एक से अधिक व्यक्तियों के समूह को किसी एक ही विषय पर निर्देशन दिया जाए तो उसे समूह निर्देशन कहा जाता है।

शैक्षिक जनसंख्या के बढ़ते दबाव को देखते हुए सामूहिक निर्देशन, निर्देशन के क्षेत्र में उभरता हुआ एक महत्वपूर्ण निर्देशन है। जिसके द्वारा मितव्यतिता रूप से अधिक से अधिक विद्यार्थियों को सामूहिक रूपों से आत्मनिर्देशन, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक रूप में प्रदान किया जाता है। निसन्देह सामूहिक निर्देशन व्यक्तिगत निर्देशन से महत्वपूर्ण है।

जब शैक्षिक व्यवसायिक तथा व्यक्तिगत निर्देशन के लिए एक या एक से अधिक व्यक्तियों को किसी परिस्थित विशेष में समूह के रूप में निर्धारित किया जाता है तो उसे समूह निर्देशन की संज्ञा दी जाती है। यह सामूहिक क्रियाओं द्वारा निर्देशन की प्रक्रिया कही जाती है।

समूह निर्देशन की परिभाषा

रॉवर हापोक के अनुसार ''सामूहिक निर्देशन वह कोई भी सामूहिक क्रिया हो जो कुछ निर्देशन कार्यक्रम को सुविधा देने या सुधार करने के लिए सम्पन्न की जाती है''।

जेल वार्टस ने कहा है कि:- सामूहिक निर्देशन को साधारणतया इस प्रकार प्ररिभाषित किया जा सकता है कि यह सामूहिक अनुभवों का व्यक्ति के उत्तम विकास में सहायता देने एवं इच्छित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु चेतना पूर्ण प्रयोग है।

ए०जे० जोन्स (1951) निर्देशन किसी भी समूह का वह उधम या क्रिया है जिसका प्राथमिक उद्देष्य समूह के प्रत्येक व्यक्ति की सहायता करना ताकि वो अपनी समस्या का समाधान कर सके एवं प्रभावपूर्ण समायोजन कर सके। इसके अर्न्तगत समूह सूचना दी जाती है जो व्यक्तिगत सूचना के विपरीत होती है। परन्तु यह सूचना व्यक्ति विशेष के लिए हो सकती है।

समूह परीक्षण व्यक्तिगत परीक्षण है ना कि किसी समूह का परीक्षण है। समूह निर्देशन केवल न्यायोचित ही नहीं बल्कि अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

क्रो० एण्ड क्रो० समूह निर्देशन समूह परिस्थितियों में प्रयोग किया जाने वाले विचार है। जिसमें निर्देशन सेवा को विद्यालय समूह, या विद्यार्थियों के समूह पर किया जाता है।

लीस्टर डाउनिंग ने सामूहिक निर्देशन के सम्बन्ध में लिखा है- सामूहिक निर्देशन, निर्देशन सेवा का वह अंग है जो एक कुशल परामर्शदाता के निर्देशन में नवयुवक को अन्यों के साथ विचार विनिमय एवं अनुभवों में आदान-प्रदान करता है जिनमें अन्तराभूति विकसित होती है। आत्मबोध की सुविधा मिलती है। परिपक्वता में वृद्धि होती है, कार्य करने के लिए तर्कसंगत निर्णय लिये जाते है। इसमें ऐसा वातावरण मिलता है जिसमें मनोचिक्तिसा लाभ प्राप्त किए जाते है और सामाजिक कुशलता का विकास

होता है। सामूहिक निर्देशन का अन्तिम लक्ष्य व्यक्तिगत विकास ही है उन्होंने यहां तक कहा कि सामूहिक निर्देशन संगठित निर्देशन कार्यक्रम का ही एक अंग जिसमें क्रियाएं सम्मिलित की जाती है संगठित निर्देशन कार्यक्रम अनेक छात्रों का परस्पर मिलन होता है। इसमें सूचनाएं प्राप्त करते है, विचारों का आदान-प्रदान होता है, भविष्य की योजना बनाते हैं और निर्णय लेते है।

सार रूप में यह कहा जाता सकता है कि सामूहिक निर्देशन समूह वास्तव में व्यक्तियों के एकत्रितकरण को निर्देशित करता है जिसमें व्यक्ति आपसी प्रत्यक्षीकरण के आधार पर व्यक्तिगत विकास करते है। समूह निर्देशन जैसी क्रियाओं का अपने अन्दर समाहित करता है जो किसी समूह परिस्थित में की जाएं तथा व्यक्तिगत रूप से सामूहिक परिस्थित में व्यक्ति को निर्देशन किया जाए समूह किसी भी प्रकार का हो सकता है परन्तु निर्देशन का उद्देश्य समूह के प्रत्येक सदस्यों के लिए सामान्य होगा।

8.4 सामूहिक निर्देशन के उद्देश्य एवं महत्त्व

समूह निर्देशन क्रियाओं के सफल संचालन के लिए यह आवश्यक है कि क्रियाओं के आयोजन के लिए ध्यानपूर्वक योजना तैयार की जाए जिसमें प्राथमिक रूप से समूह के प्रत्येक व्यक्ति को समूह निर्देशन के उद्देश्यों से अवगत कराया जाए तथा उद्देश्यों का निर्धारण किया जाए। सामान्यतः उद्देश्यों में समस्या या विद्यालय की अलग-अलग पृष्ठभूमि के कारण अन्तर होता है इसलिए उद्देश्यों में भिन्नता आ जाती है। समूह निर्देशन के कुछ प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार है-

1. विद्यार्थियों को ऐसी सूचना प्रदान करना जिससे विद्यार्थी नये विद्यालय से परिचित हो सके।
2. विद्यार्थी विद्यालय के पाठ्यक्रम क्रियाएं, नियमों एवं विद्यालय के संस्कारों से परिचित हो सके।
3. ऐसी सूचनाएं व सामग्री उपलब्ध कराना ताकि छात्र खुद व्यक्तिगत परामर्श के लिए आ सके।
4. छात्रों को सामूहिक क्रियाओं में प्रभावपूर्ण भागीदारी करने में सहायता प्रदान करना।
5. छात्रों को ऐसे अवसर प्रदान करना ताकि समूह में प्राप्त साक्ष्यों एवं प्राप्त आलोचनाओं का खुद मूल्यांकन कर सके।
6. छात्रों को खुद समूह के सदस्य के रूप मे विकसित करने के लिए सहायता करना।
7. शिक्षकों को ऐसा व्यवहार प्रदान करना जिसमें शिक्षक व्यक्तिगत परामर्श के लिए बहुत बड़ी मात्रा में सूचना एकत्रित कर सके।
8. ऐसे व्यक्तियों के लिए सामूहिक चिकित्सा प्रदान करना जो बाहरी वातावरण में समायोजन स्थापित न कर सके।
9. वस्तुनिष्ठ आधार पर व्यक्तिगत सहायता प्रदान करना जबकि समस्या का स्वरूप सामूहिक हो।
10. छात्रों को ऐसे अवसर प्रदान करना ताकि वे अपने व्यवहारों को समूह के मूल्यों के अनुकूल कर सके।
11. एक जैसी समस्याओं की पहचान मे सहायता करना।

12. समायोजन से सम्बन्धित समस्याओं के लिए लाभदायी सूचनाएं प्रदान करना।
13. व्यक्तिगत परामर्श की संरचना तैयार करना
14. लोगों की सामान्य समस्याओं की पहचान तथा उसका विश्लेषण कर समस्या से सम्बन्धित सार्थक उपायों को ढूंढने में सहायता करना।
15. सूचनाओं को एकत्रित करना ताकि व्यक्ति अपनी समस्या से सम्बन्धित उन समस्याओं में से समाधान ढूँढ सके।
16. ऐसे कार्यक्रमों का आयोजन करना जिसमें व्यक्ति एक समूह में हो तथा एक दूसरे से अन्तः क्रिया करके उसमें विचारों एवं अनुभवों से लाभ प्राप्त कर सके।
17. ऐसे वातावरण का निर्माण करना जो व्यक्तियों को अपने विचार व्यक्त करने के अवसर प्रदान कर सकें।
18. व्यक्तियों, छात्रों में आत्मविश्वास सामाजिक कुशलता में वृद्धि करने के उद्देश्य से सामूहिक क्रियाओं का आयोजन करना।

इसके अतिरिक्त आर्थर ई० ट्रैक्सलर ने सामूहिक निर्देशन के चार उद्देश्य बताएं हैं-

1. **अभिविन्यास** - छात्रों को समाज के बदलते परिदृश्य एवं नवीन परिस्थित एवं अनुभवों के ज्ञान कराने से है।
2. **सीखने के अनुभवों की व्यवस्था करना**- सामूहिक निर्देशन के द्वारा कुछ ऐसे अनुभव छात्रों को प्रदान किये जाते है जिससे उनकी अधिगम क्षमता में वृद्धि अच्छी आदतों का विकास नवीन परिस्थितियों को समझने की क्षमता विकसित हो।
3. **स्वंय निर्देशन के विचारों की उत्पत्ति**- सामूहिक निर्देशन की प्रक्रिया के दौरान व्यक्ति निजी रूप से अपनी समस्याओं पर विचार करने लगता है जिससे उसके अन्दर स्वंय निर्देशत होने का दृष्टिकोण विकसित होने लगता है।
4. **समायोजन-** सामूहिक निर्देशन का एक उद्देश्य व्यक्ति में समायोजन से सम्बन्धित समस्याओं को हल करना शामिल किया जाता है।

समूह निर्देशन का महत्व

1. राबर्ट एच. नाप ने समूह निर्देशन के महत्व को बताते हुए कहा है कि यदि सार्थक अभिवृद्धि एवं अनुभव बड़ी संख्या में बच्चों को प्रदान किया जाए तो बच्चों को किसी समूह विशेष में रखना पड़ेगा और बहुत कम समय में विद्यार्थियों के एक बड़े समूह को सूचना प्रदान कर दी जायेगी।

2. परामर्श दाता अपने विद्यार्थियों की सामान्य पृष्ठभूमि से सम्बन्धित जानकारी व उनकी समस्याओं को प्राप्त कर ले तो वो इस जानकरी से विद्यार्थियों के बहुत बड़े समूह पर सामान्यीकरण कर सकता है।
3. समूह निर्देशन विद्यार्थियों के अभिवृत्ति सुधार व व्यवहार में परिवर्तन लाने मे सहायक होता है।
4. इसके द्वारा विद्यालय में नामांकित नये छात्रों को विद्यालय के कार्यक्रम, विद्यालय का इतिहास, परम्परा, नियमों एवं शैक्षिणक, सामाजिक तथा विद्यालय की पाठ्य सहगामी क्रियाओं से अवगत कराया जा सकता है।
5. समूह निर्देशन विभिन्न प्रकार की नेतृत्वपूर्ण प्रशिक्षण देने में भी सहायक है।
6. बालकों के व्यक्तित्व के कुछ पक्ष ऐसे होते है। जिसको निरीक्षण या जांच समूह में लगाया जा सकता है। शिक्षक चाहे तो समूह निर्देशन की क्रियाओं का प्रयोग कर उसकी व्यक्तिगत विशेष ताओं का पता लगा सकता है।
7. व्यक्तिगत परामर्श के लिए समूह निर्देशन की प्रविधियों का प्रयोग करके पर्याप्त मात्रा में परामर्श दिया जा सकता है।
8. एक शिक्षक या परामर्श दाता समूह उपागम द्वारा अपने अधिकतम समय को बचा सकता है तथा व्यक्तिगत रूप से समस्या ग्रसित बालक पर अधिक ध्यान दे सकता है।
9. समूह निर्देशन विद्यार्थियों को अपनी समस्याओं व चिन्ताओं को व्यक्त करने तथा दबी हुई भावनाओं को सामूहिक परिस्थिति में स्वतन्त्र रूप से चर्चा करने में भी सहयोगी होता है।

८.५ समूह निर्देशन प्रक्रिया

समूह निर्देशन प्रक्रिया का आयोजन करने के लिए निर्देशनकर्त्ता ऐसे निर्देशन लेने वाले व्यक्तियों/छात्र का चुनाव करता है, जो सामान्यतः शैक्षिक, आयु एवं भौगोलिक परिदृश्य में भिन्न-भिन्न होते हैं परन्तु निर्देशन से सम्बन्धित समस्या सामान्य अथवा एक जैसी होती है। निर्देशनकर्त्ता समस्त सदस्यों की विभिन्न आवश्यकताओं का विभिन्न उपकरणों द्वारा आकलन करते हुए समूह निर्देशन के लिए स्थान समय एवं समूह के आधार को निर्धारण करना तथा दिए जाने वाले निर्देशन विषय पर समूह के समस्त सदस्यों को अवगत कराता है तथा निर्देशन परिप्रेक्ष्य के सन्दर्भ मे परिणामों का आकलन करता है।

८.६ समूह निर्देशन की समस्याएं एवं लाभ

समूह निर्देशन की निम्न समस्याएं हैं -

1. गृह व विद्यालय के समायोजन से समस्या।
2. शैक्षिक योजना से सम्बन्धित समस्या।
3. रोजगार से सम्बन्धित समस्या
4. आर्थिक एवं व्यवसायिक समस्या

5. पारिवारिक समस्या आकलन करता है।

समूह निर्देशन के लाभ

समूह निर्देशन की विभिन्न क्रियाओं का आयोजन एवं उपागमों के अध्ययन के उपरान्त निम्न लाभ प्राप्त होते हैं-

समूह निर्देशन के निम्नलिखित लाभ है-

1. समूह निर्देशनकर्ता कुशलता के साथ तथा अत्यन्त कम समय में विद्यार्थियों को सूचना प्रदान करने व उनकी समस्याओं को पहचानने तथा विभिन्न कठिन समस्याओं से सम्बन्धित प्रति उत्तरों को ढूँढने में सफल होता है।
2. समूह निर्देशन शिक्षक अथवा परामर्श दाता को सामूहिक परिस्थिति में बालक के सामाजिक दृष्टिकोण एवं व्यवहारों को अध्ययन करने के लिए अवसर उपलब्ध कराता है।
3. विद्यार्थियों की एक जैसी समस्याओं को किसी समूह विशेष के सामने चर्चा करने व समस्या से सम्बन्धित उत्तर ढूँढने मे मदद करता है।
4. समूह निर्देशन में समस्त विद्यार्थियों के समक्ष सुझाव रखे जाते है तथा समस्त विद्यार्थी उसे आसानी से स्वीकार करते है तथा अपने विचारों को रखते है।
5. समूह निर्देशन प्रक्रिया के दौरान सामान्य छात्र अन्य छात्रों से विभिन्न प्रकार के ज्ञान प्राप्त करते है।
6. समूह निर्देशन में एक जैसी समस्या पर सामूहिक उत्तर प्राप्त होते है।
7. समूह निर्देशन व्यक्तिगत परामर्श के लिए तैयार करता है।
8. समूह निर्देशन के द्वारा शिक्षक छात्रों की बहुत बड़ी संख्या से सम्पर्क बना सकता है।
9. निर्देशन का यह प्रकार मितव्ययी एवं सार्थक है।
10. विद्यार्थियों से सम्पर्क बनाने में सहायक है।
11. विद्यार्थियों को एक जैसी समस्या पर चर्चा करने के लिए अवसर प्रदान करता है।
12. यह विद्यार्थियों के अभिवृत्ति एवं व्यवहार में सुधार लाता है।
13. यह विद्यार्थियों में जागरूकता लाता है ताकि वे अपनी आवश्यकता को पहचान सके।
14. समूह निर्देशन में आपसी अन्तक्रिया के परिणाम स्वरूप समूह के प्रत्येक सदस्य एक दूसरे से कुछ न कुछ सीखते रहते हैं।
15. समूह निर्देशन के द्वारा निर्देशनकर्ता साथ-साथ विद्यार्थी दोनों को ही समय के साथ प्रयास एवं धन की बचत होती है।

8.7 समूह निर्देशन के सिद्धांत

विषय का सार्थक होना

सबसे पहले जिस विषय अथवा प्रकरण पर निर्देशन दिया जाना है उस पर यह विचार करना आवश्यक होता है कि जिस समूह के लिए निर्देशन कार्यक्रम का आयोजन किया जाता है वह विषय समूह के सदस्यों की समस्याओं के अनुकूल है या नहीं। उदाहरण के लिए-समूह का नेतृत्व करने वाला या सलाहकर्ता ने यह निर्णय लिया कि नवीन छात्रो के साथ 'शिष्टता' विषय पर चर्चा की जायेगी परन्तु यह विषय सभी के लिए समान रूप् से महत्वपूर्ण नही होगा और परिणाम भी अप्रत्याशित अथवा अभिप्रेरित करने वाला नहीं होगा तथा समूह के सदस्य भी विषय में रूचि नहीं लेगें। तब निर्देशनकर्ता पुनः विषय को चर्चा के लिए प्रस्तुत करेगा, तो यह पायेगा की सामान्य शिष्टता विषय पर चर्चा में समूह के कुछ सदस्य हैं जो रूचि लेते है और कुछ सदस्य रूचि नहीं लेते हैं।

इस प्रकार समूह निर्देशन की क्रिया तुरन्त असफल हो जायेगी। अतः निर्देशनकर्ता को ऐसे विषय का चुनाव करना चाहिए जिसको समूह के सदस्य आसानी से स्वीकार कर सकें।

सक्रिय सहभागिता आवश्यक है

छात्रों द्वारा प्रभावपूर्ण समूह निर्देशन के लिए सक्रिय सहभागिता आवश्यक है। इसमें यह आवश्यक होता हैं कि निर्देशनकर्ता की प्रतिक्रियाओं का प्रति उत्तर छात्रों द्वारा दिया जाए। जिसको प्राप्त करना निर्देशनकर्ता के लिए एक कठिन कार्य है। समूह निर्देशन का द्वितीय सिद्धान्त सक्रिय सहभागिता, शिक्षकों के अनुसार निष्चित रूप से कठिन सिद्धान्त है। जिसका सफल होना समूह कार्य के लिए आवश्यक है। यदि समूह के सभी सदस्यों के साथ अन्तःक्रिया प्रतीत न हो तो वास्तविक निर्देशन की प्रक्रिया प्रतीत नहीं होती है। हमें जो ज्ञान प्राप्त है इसी के अनुसार हम रहते है ना कि हमने क्या सुना, या क्या चर्चा किया, दोनों ही महत्वपूर्ण नहीं है। किसी कार्य में सहभागिता की महत्ता इस प्रकार समझी जा सकती है कि जब विद्यार्थी परिषद सम्मेलन का आयोजन किया जाता है तब उस समय विद्यार्थियों की जो प्रतिक्रियायें होती है वो निर्णय लेने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

प्रयोजन की तैयारी

निर्देशन कर्ता या आयोजन कर्ता के खुद के लिए यह आवश्यक होता है कि वह इस प्रकार तैयारी करे व योजना बनाये ताकि वह छात्रों में रूचि जागृत कर सके, तथा निर्देशन सामग्री का निर्माण कर सके। विद्यार्थियों का प्रयास आवश्यक है। समूह निर्देशन की क्रिया विद्यार्थियों के प्रयास के अभाव में न तो सार्थक हो सकती है और न ही उसका उनको कोई लाभ या सहायता प्राप्त हो सकती है। अतः समूह के निर्देशन कर्ता को समूह के सदस्यों के समक्ष विषय पर चर्चा करना आवश्यक है।

समूहकार्य और व्यक्तिगत परामर्श संपुरक के रूप में

व्यक्तिगत परामर्श के लिए आवश्यक नहीं है कि समूह कार्य का आयोजन किया जाए क्योंकि दोनों का अपना महत्वपूर्ण योगदान समूह निर्देशन में होता है।

इसके अतिरिक्त आर. ए. शर्मा ने समूह निर्देशन के छः सिद्धान्तों का बताया है-

1. समूह निर्देशन का प्रयोग परामर्श के अनुपूरक के रूप में होना चाहिए न कि प्रतिस्थापन के रूप में।
2. जैसे भी सम्भव हो परामर्श दाता को समूह के समस्त सदस्यों को इस प्रकार प्रोत्साहित करना चाहिए की प्रत्येक सदस्या व्यक्तिगत परामर्श के लिए अभिप्रेरित हो सके।
3. विभिन्न पक्षों में समूह के सदस्यों का चुनाव इस प्रकार करना चाहिए ताकि समजातीय समूह का निर्माण हो सके।
4. विद्यार्थियों के परिचय के लिए परियोजना का संचालन आवश्यक है।
5. समूह निर्देशन के लिए नियुक्त व्यक्ति को समूह निर्देशन की तकनीकियों से पूर्णतः परिचित होना चाहिए।
6. समूह निर्देशन का प्रयोग पूरक निर्देशन के रूप में करना चाहिए ताकि परामर्श प्रतिस्थापन के रूप में स्वीकार किया जा सके।

जैसा सम्भव हो निर्देशनकर्त्ता को यह चाहिए की समूह के प्रत्येक सदस्यों को व्यक्तिगत निर्देशन के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।विजक रूप में समूह निर्देशन की परियोजना से विद्यार्थियों को अवगत करना चाहिए। समूह निर्देशन देने वाला व्यक्ति समूह निर्देशन की प्रक्रिया से पूर्णतः परिचित होना चाहिए।

४.४ समूह निर्देशन के आवश्यक तत्व

1. परामर्श दाता का विद्याथियों के साथ उचित सम्बन्ध होना चाहिए।
2. परामर्श दाता विद्यार्थियों को स्वीकार करने वाला होना चाहिए।
3. परामर्शदाता समूह के विचारों ध्यानपूर्वक सुनने वाला होना चाहिए।
4. परामर्श दाता का दृष्टिकोण समस्या के प्रति सकारात्मक होना ।
5. प्रभावपूर्ण समापन प्रक्रिया।

४.९ समूह निर्देशन की क्रियाओं का आयोजन

आधुनिक समूह निर्देशन कार्यक्रम में इस बात पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है कि समूह के प्रत्येक सदस्य अपने व्यक्तिगत स्तर पर व्यक्तिगत व सामाजिक सम्बन्धों के लिए महत्वपूर्ण है। तथा वे अपनी रूचि अभिक्षमता, योग्यता अनुभव, आवश्यकता के अनुकूल सीखने के लिए सक्षम है। जिसके कारण

समूह निर्देशन की क्रियाओं के आयोजन के लिए एक प्रारूप विकसित करना मुश्किल है। तथा क्रियाओं का आयोजन विद्यालय की परिस्थिति, संगठन नामांकन की संख्या, वित्तीय स्थिति प्रतिछात्रों पर कार्य की स्थिति व शिक्षक प्रशासक भी समूह निर्देशन आदि कारकों पर निर्भर करती है व समूह निर्देशन के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। एक सफल कार्यक्रम तब कहा जायेगा जब प्रारम्भ से लेकर अन्तः तक की क्रियाओं का सफल आयोजन हो सके। मूल रूप से समूह निर्देशन की क्रियाओं का आयोजन शैक्षिक स्तरों के विभिन्न प्रकार व विभिन्न समूह के अनुसार किया जाता है।

स्तरानुसार समूह निर्देशन क्रियाओं का आयोजन इस प्रकार है-

1. प्राथमिक स्तर पर समूह निर्देशन क्रियाओं का आयोजन।
2. माध्यमिक स्तर पर समूह निर्देशन क्रियाओं का आयोजन।
3. विभिन्न समूहों के आधार पर निर्देशन क्रियाओं का आयोजन।
4. वैकल्पिक रूप से समूह का निर्माण एवं निर्देशन क्रियाओं का आयोजन।

प्राथमिक स्तर पर सामूहिक निर्देशन की क्रियाओं का आयोजन

प्राथमिक स्तर पर सामूहिक निर्देशन की क्रियाओं के आयोजन के मुख्यतः दो उद्देश्य होते हैं-

1. प्राथमिक स्तर पर विद्यालय का यह प्रमुख कार्य है कि वह प्रत्येक छात्र से सम्बन्धित उसकी समस्त सूचनाओं को एकत्रित करे ताकि केवल वह स्वंय ही नहीं बल्कि सम्बन्धित विद्यालय के शिक्षक , परामर्श दाता साथ ही साथ माध्यमिक स्तर के परामर्श दाता भी इससे लाभ प्राप्त कर सकें।
2. प्राथमिक विद्यालयों का यह द्वितीय महत्वपूर्ण दायित्व है कि वह विद्यार्थियों को अधिकतम व्यक्तिगत व सामाजिक समायोजन प्राप्त करने के लिए वतावरण उपलब्ध करा सकें।

प्राथमिक स्तर पर निर्देशन क्रियाओं का आयोजन करने के लिए ध्यान देने वाली सावधानियां

1. विद्यालय में छात्रों को नांमकन से पूर्व एवं बाद में अनुस्थापन कार्यक्रम का आयोजन करना चाहिए। जिसमें विद्यालय में किसी प्रकार की क्रियाओं का आयोजन किया जाना, विद्यालय का वार्षिक कार्यक्रम क्या है इत्यादि बातों का उल्लेख होता है।
2. मुख्य रूप से विद्यालय के परामर्श दाता के असफल होने में सूचनाओं का महत्वपूर्ण स्थान होता है। क्योंकि किसी भी व्यक्ति के बारें में यदि प्राप्त सूचनाएं अपर्याप्त है तो उचित निर्देशन नहीं हो सकता इसलिए क्रियाओं के आयोजन से पहले विद्यालय में उपस्थित समस्त दस्तावेज, जो संचयी हो को सुरक्षित एवं संजोकर रखना चाहिए।
3. विद्यालय में एक निर्देशन एवं परामर्श प्रकोष्ठ की स्थापना की जानी चाहिए जो शिक्षकों को विद्यार्थियों से सम्बन्धित समस्त दस्तावेजों को उपलब्ध करा सके और जांच सूची अथवा चेक लिस्ट का निर्माण भी करे।

4. छात्रों की व्यक्तिगत दस्तावेज में उनकी मानसिक विकास एवं अभिवृद्धि का मापन, लम्बाई व वजन आदि विकासात्मक विशेष ताओं का भी अभिलेख रखना चाहिए।

माध्यमिक स्तर पर निर्देशन क्रियाओं का आयोजन

माध्यमिक स्तर पर अधिकतम सामूहिक निर्देशन क्रियाओं का आयोजन कक्षा में ही विभिन्न्न क्रियाओं के माध्यम से शिक्षकों द्वारा कराया जाता है। यदि शिक्षकों द्वारा अनुस्थापन कार्यक्रम का आयोजन सफलतापूर्वक किया गया हो तो माध्यमिक स्तर में शिक्षकों द्वारा विद्याथियों के आत्मप्रत्य के विकास तथा उनके सकारात्मक पक्ष व नकारात्मक पक्ष को पहचानने में अपना योगदान दे सकते है। सामान्यतः माध्यमिक स्तर पर निर्देशन क्रियाओं के आयोजन का कार्य प्राथमिक स्तर से ही आरम्भ हो जाता है। जिसमें विद्यालय प्रबन्ध का यह दायित्व होता है कि वो छात्रों के विकासात्मक अभिलेखों व सूचनाओं को संग्रहित करे तथा विद्यार्थियों को अवगत कराये जिससे विद्यार्थी अपना व्यक्तित्व एवं सामाजिक समायोजन अच्छी प्रकार कर सके।

- इसके अन्तर्गत विद्यालयों में निर्देशन प्रकोष्ठ की स्थापना की जाती है जिसका मुख्य कार्य शिक्षकों, विद्यार्थियों पाठ्यक्रम, सहपाठयक्रम, पाठ्य- सहगामी क्रियाएं, तथा सामान्य निर्देशन कार्यक्रम के बीच एक आर्दश लोकतान्त्रिक सम्बन्ध स्थापित करना।
- इसके अर्न्तगत निर्देशन इकाई को संस्थागत पाठ्यक्रम में रखा जाना चाहिए तथा निर्देशन से सम्बन्धित विभिन्न विषय वस्तु को पाठ्यक्रम में शामिल करना चाहिए।
- सामान्य निर्देशन पाठ्यक्रम को छात्र केन्द्रित, व्यापक और लोचपूर्ण बनाना चाहिए।
- छात्रों को समुदाय व समूह आधारित कार्यक्रमों में सहभागिता बढ़ाने पर बल देना चाहिए।
- छात्रों को अच्छे सार्वजनिक सम्बन्धों के लिए अवसर उपलब्ध कराना चाहिए।

समूह निर्देशन की क्रियाओं का आयोजन मूल रूप से निम्न बिन्दुओं को शामिल करता है-

1. आवश्यकताओं का आंकलन करना- किसी समूह की सामान्य समस्याओं को जानने के लिए उस समूह से सम्बन्धित प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकताओं का आकलन जरूरी होता है। जिसकी विभिन्न प्रकार के परीक्षण उपकरणों द्वारा जैसे प्रश्नावली, साक्षात्कार, निरीक्षण, का प्रशासन कर आवश्यकताओं का आकलन किया जा सकता है।
2. समूह निर्देशन का स्थान समय, एवं समूह के आकार का निर्धारण- समूह निर्देशन के लिए यह आवश्यक होता है। समूह की क्रियाओं के आधार का आकार निश्चित किया जाए तथा निर्देशन के लिए उचित समय एवं स्थान पर भी चर्चा की जाए।

3. सदस्यों का चुनाव एवं विशिष्टकरण- समूह निर्देशन के लिए सहगामी सदस्यों का चयन बहुत ही महत्वपूर्ण होता है और सदस्यों को अपने दायित्व एवं कार्यों से परिचित भी होना आवश्यक होता है।
4. सदस्यों का अभिविन्यास- समूह के लक्ष्य का सभी सदस्यों का पता होना तथा उद्देश्यों का मापनीय दृष्टिकोण से स्पष्ट होना भी आवश्यक है।
5. क्रियाओं का नियोजन एवं प्राप्त किए गये परिणामों का मूल्यांकन- यदि क्रियाओं का आयोजन उद्देश्यों के अनुरूप करना है तो उसका नियोजन लक्ष्यों के परिप्रेक्ष्य में आवश्यक है।

निष्कर्ष

समूह निर्देशन क्रियाओं को शत प्रतिशत सफल बनाने के लिए विद्यालय व समुदाय से सम्पर्क आवश्यक है क्योंकि बालक का विकास एवं उसकी अभिवृतियों का निर्माण विद्यालय एवं विद्यालय के बाहर भी होता है। या यू कहे की बालक का विकास सम्पूर्ण वातावरण की आपसी अन्तःक्रियाओं का परिणाम होता है। और वातावरण में विद्यालय की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। छात्रों के व्यक्तिगत व्यवहार, निर्देशन कार्यक्रम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है।

समूह निर्देशन क्रियाएं निदानात्मकता की अपेक्षा निरोधक होती है। जो किसी न किसी रूप में निर्देशन कार्यक्रम को प्रभावित करती हैं। समूह निर्देशन यह प्रयास करता है कि युवाओं को इस प्रकार तैयार किया जाए की आने वाली समस्या का समाधान कर सके। इसके लिए विभिन्न प्रकार की सूचनाएं उपलब्ध कराई जा सकती है।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि केवल समूह निर्देशन की क्रियाओं का आयोजन कर निर्देशन के सम्पूर्ण कार्यक्रम को सफल नहीं बनाया जा सकता।

8.10 निर्देशन की प्रविधि या तकनीकी

समूह निर्देशन कर्ता द्वारा समूह निर्देशन के लिए विभिन्न प्रकार की तकनीकी का प्रयोग किया जाता है। यह प्रविधि समूह की प्रकृति के आधार पर परिवर्तित होती रहती है। उचित प्रविधि का चुनाव करने के लिए शिक्षक के छात्रों की रूचि से परिचित होना चाहिए तथा उस प्रविधि में विद्यार्थियों की रूचि भी होनी चाहिए। कुछ महत्पूर्ण एवं प्रभाव पूर्ण समूह निर्देशन की क्रियाओं का वर्णन इस प्रकार है- प्रविधियों के प्रयोग से पहले निम्न क्रियाओं का आयोजन आवश्यक है-

1. प्रथम समूह की बैठक

   कौशल युक्त समूह निर्देशन कर्ता समूह के लिए प्राथमिक बैठक को अत्यन्त महत्वपूर्ण मानते है, तथा उनका कहना है कि समूह निर्देशन कर्ता को अत्यन्त शीघ्र समूह की प्रथम बैठक करानी चाहिए जो निष्चित योजना के अर्न्तगत हो तथा इस योग्य हो कि विद्यार्थी की रूचि

का पता लगा सके तथा समूह निर्देशन के लिए सदस्य ऐच्छिक रूप से शामिल हो सके सदस्यों की प्रथम बैठक सम्पर्क स्थापित करने के लिए भी उचित मानी जाती है।

2. समूह नेतृत्वकर्ता की प्रक्रिया
   अनुभवी समूह परामर्श कर्ता समूह की प्रक्रियाओं का हमेषा अभ्यास करते रहते है ताकि उचित समय पर समूह का नेतृत्व किया जा सके। यह एक महत्वपूर्ण कार्य होता है कि समूह के युवा सदस्यों को समूह के अनुकूल नियन्त्रित किया जा सके इसके लिए समूह निर्देशन अत्यन्त आवश्यक हो जाता है।

प्रो. फिटज ने समूह निर्देशन आयोजन कर्ता व संगठनों की समूह निर्देशन प्रक्रिया के दौरान होने वाली त्रुटि को ध्यान में रखते हुए निम्न सुझाव दिये-

- समूह के सदस्यों पर अत्यधिक मानसिक दबाव न दें।
- संक्षिप्त सुरक्षा प्रदान करना आवश्यक।
- अत्यधिक एवं न्यूनतम समूह व्यवहार के मानको का निर्धारण करना
- अत्यधिक सगंठनात्मक
- समूह संगठन का निर्माण
- शोध समिति का गठन जिसके द्वारा उपयोगी सूचनाओं को एकत्रित किया जा सके।
- प्राप्त सुझावों को लागू करना।
- समूह के कार्यषील सदस्यों का निर्माण
- समितियों का गठन
- समितियों का प्रभावपूर्ण उपयोग
- चर्चा करने वाले सदस्यों का प्रषिक्षण
- चर्चा के लिए विषय का चुनाव अग्रिम होना चाहिए ताकि चर्चा की नेतृत्व करने वाला पूर्णत तैयार हो।
- अत्यधिक बातचीत को स्वीकार नही करना चाहिए।
- यदि सम्भव हो तो समस्त सदस्यों की सहभागिता सुनिष्चित होनी चाहिए।
- जिस बिन्दु पर चर्चा हो रही है उस पर समूह की परख होना आवश्यक है।
- समूह के विचारों को आगे की तरफ ले जाना चाहिए।
- संक्षिप्त कथन प्रस्तुत होना चाहिए न कि भाषण।
- हवा में की जाने वाली चर्चा नही होनी चाहिए।

- विचारों में भिन्नता की पहचान होनी चाहिए।
- बैठक समाप्ति से पहले चर्चाओं का सामान्यीकरण किया जाना चाहिए।
- समूह चर्चा के लिए तैयारी होनी चाहिए।
- समूह में सदस्यों को प्रश्न पूछने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।
- मुद्रित साम्रगी के प्रयोग में कुशलता होनी चाहिए।

समूह निर्देशन की प्रविधि के रूप में विभिन्न प्रकार के तकनीकों का प्रयोग किया गया है-

i. सभा का आयोजन
ii. कैरियर सम्मेलन
iii. श्रव्य-दृष्य सामग्री
iv. सामूहिक क्रियाएं
v. निर्देशन की नैदानिक विधि
vi. समूह प्रतिवेदन
vii. समूह विचार विर्मश
viii. समस्या समाधान
ix. व्याख्या समाधान
x. औपचारिक विचार विमर्श
xi. व्याख्यान
xii. प्रश्नावली
xiii. सम्मेलन
xiv. नाटक का आयोजन
xv. व्यवसायिक सूचनाएं
xvi. चिकित्सीय परामर्श

1.सभा का आयोजन

सार्थक रूप से समूह निर्देशन के लिए सभाओं का आयोजन को प्रविधि के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। जिसके लिए निम्न क्रियाओं का आयोजन करना पड़ता है-

सभा के उद्देश्य- सभा के उद्देश्यों को समझे बिना, परामर्श दाता सभा के आयोजन का प्रभावपूर्ण प्रयोग, निर्देशन कार्यक्रम के लिए नही कर सकता। सामान्यतः निम्न उद्देश्यों के परिप्रेक्ष्य में सभा का आयोजन किया जाता है-

i. छात्र या व्यक्ति समूह के दूसरे सदस्यों की क्रियाओं में रूचि ले सके।
ii. अच्छी आदतों के विकास के लिए।
iii. अच्छे नेतृत्व कर्ता के विकास के लिए।
iv. सार्वजनिक रूप से बौद्धिक विचारों के विकास के लिए।
v. एक साथ पाठ्य सहगामी क्रियाओं से सम्बन्धित सूचना प्रदान करने के लिए।
vi. विद्यालय के समस्त कार्यों में रूचि पैदा करने के लिए
vii. समूह निर्देशन के अन्तर्गत महत्वपूर्ण विषयों पर चर्चा के लिए।
viii. नाटक के रूप में विद्यालय के संस्कारों एवं विचारों को प्रकाश में लाने के लिए।
ix. विद्यालय में समस्याओं के समाधान के लिए।
x. कक्षा में प्रोत्साहन देने के लिए।

सावधानी के साथ सभा के आयोजन की आवश्यकता

यदि शिक्षक या परामर्श दाता विद्यालय में विभिन्न प्रकार की सभाओं का आयोजन सफलतापूर्वक करना चाहता है। तो उसे निष्चित रूप से आयोजन से पूर्व योजना बनानी होगी जिसमें निम्न बातों का ध्यान रखना होगा-

1. सभा का आयोजन पूर्व निर्धारित समय के अनुसार होना चाहिए।
2. प्रत्येक सदस्यों को यह पता होना चाहिए की सभा का आयोजन किस लिए किया जा रहा है।
3. कार्यक्रम समयानुसार तैयार होना चाहिए।
4. कार्यक्रम शैक्षिक रूप से सार्थक होना चाहिए।
5. कार्यक्रम मे कोई अवरोध नहीं होना चाहिए।
6. सभी स्तर की सामग्री उचित स्थान पर होना चाहिए।

समूह निर्देशन की प्रविधि एक शिक्षक से दूसरे शिक्षक के लिए भिन्न होती रहती है तथा उस शिक्षक के भी प्रविधियों में अन्तर होता है। जब वो विभिन्न समूहों को निर्देषित करता है।

समूह निर्देशन तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक निर्देशनकर्ता शिक्षक प्रभावपूर्ण तरीके से समूह में सहभागिता न करे। सार्थक सहभागिता असम्भव है। अगर समूह में सदस्य की कोई अपनी भूमिका नहीं है। समूह निर्देशन कर्ता को समूह चर्चा, सभाओं का आयोजन, सामाजिक क्रियाओं के लिए इससे सम्बन्धित कौशलों में प्रशिक्षित होना आवश्यक है।

2.कैरियर सम्मेलन

कैरियर सम्मेलन प्रविधि परामर्श दाता द्वारा किसी समूह को सूचना देने की महत्वपूर्ण प्रविधि के रूप में प्रयोग की जाती है। इस प्रकार के सम्मेलनों में अत्यधिक मात्रा में सफल व्यक्तियों द्वारा विभिन्न प्रकार के व्यवस्याओं की व्याख्या, व प्रष्नों का जवाब दिया जाता है।

इस प्रकार के सम्मेलनों की अवधि न्यूनतम एक दिन या इससे अधिक होती है। परामर्श दाता द्वारा विद्यालय के शिक्षक एवं विद्यार्थी दोनों से सहायता प्राप्त कर इस सम्मेलन के आयोजन के लिए तैयारी करता है।

सम्मेलन का आयोजन

सम्मेलन के आयोजन में परामर्श के लिए रखे गये विषय अथवा समस्या के अनुकूल विषय विशेष ज्ञ वक्ता का चुनाव किया जाता है। जिसके द्वारा विद्यार्थियों के किसी भी प्रकार के विषय से सम्बन्धित सन्देह को स्पष्ट शब्दों में दूर करने व समझाने का प्रयास करता है जो वर्तमान परिप्रेक्ष्य के बिल्कुल अनुकूल हो इसके अतिरिक्त व्यवसाय आधारित फिल्मों, प्रर्दशनियाँ का आयोजन भी बीच-बीच में होता रहता है।

सम्मेलन के आयोजन में ध्यान रखने वाली सावधानियां

सम्मेलन में समय का विशेष ध्यान रखना पड़ता है। विषय की महत्ता के अनुकूल समय का आवंटन आवश्यक है। इसका विशेष ध्यान रखना चाहिए।

- चर्चा के लिए विषय के चुनाव में भी विशेष ध्यान रखना होता है। इसमें इस बात का ध्यान रखना पड़ता हैं की जिस कार्य के लिए अथवा जिस विषय पर सम्मेलन का आयोजन किया जा रहा है उस विषय की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, कार्यों के प्रकार सम्मेलन के लिए आवश्यक संसाधनों की उपलब्धता, इत्यादि पर विशेष ध्यान दिया जाता है।
- यदि आवश्यक हो तो आयोजनकर्ताओं के लिए विशेष प्रषिक्षण की भी व्यवस्था की जानी चाहिए।
- आवश्यक तानुसार पेषेवर व्यक्तियों, कर्मचारियों को आमन्त्रित करना चाहिए।
- सूचना के लिए विभिन्न माध्यमों के प्रयोग की कुषलता पर भी ध्यान देना आवश्यक होता है।

कैरियर सम्मेलन से लाभ

- इस प्रकार के सम्मेलन से विद्यालय समुदाय शिक्षक विद्यार्थी सबके मध्य प्रत्यक्ष अन्तःक्रिया होती जिससे सभी लाभान्वित होते है। तथा समस्या व उसके निदानों से अवगत होते है।

- विद्यार्थियों को विभिन्न व्यवसायिक समस्याओं पर विशेष ज्ञों की राय जानने व सुनने का अवसर मिलता है।
- अभिभावक अपने बच्चों के भविष्य के लिए उचित परामर्श लेने के लिए जागरूक हो जाते है।
- विद्यार्थियों के अन्तर्गत अभिप्रेरणा का भाव जागृत होता है।
- विभिन्न प्रकार के निर्देशन के लिए गठित अभिकरण अपने उद्देश्यों एवं दायित्वों के प्रति जागरूक होते है।

3.श्रव्य-दृष्य सामग्री

निर्देशन की इस प्रविधि के अन्तर्गत छात्रों को सूचना प्रदान करने के लिए चलचित्र, फिल्म स्ट्रिप, फोटोग्राफ, टेप, रिकार्डर और पोस्टर का प्रयोग कर उन्हें शैक्षिक एवं व्यावसायिक सूचनाएं प्रदान की जा सकती है। सम्मेलनों द्वारा यह सुझाव प्राप्त होता है। कि शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन के लिए श्रव्यदृष्य साम्रगी का प्रदर्षन किया जा सकता है जिससे छात्रों में इन साम्रगी को देखकर दर्शाये गए चित्रों पर विशेष ण करने, विचार करने की भावना जागृत होती है। जिससे छात्र खुद निर्देषित हो सकते हैं।

श्रव्यदृष्य साम्रगी के लाभ

- श्रव्य-दृष्य सामग्री के द्वारा विभिन्न परिस्थितयों में वास्तविक सूचनाएं प्रदान की जा सकती है।
- अन्य प्रकियाओं की अपेक्षा यह प्रविधि सूचना प्रदान करने के लिए सरल मानी जाती है।
- चलचित्रों के द्वारा छात्रों के विभिन्न ज्ञानेन्द्रियों को एकत्रित कर सक्रिय सूचना प्रदान की जाती है।
- इसके द्वारा छात्रों के समय की बचत एवं उनकी रूचि में वृद्धि की जाती है।
- छात्रों में वैज्ञानिक प्रवृति का विकास होता है।

4.सामूहिक क्रियाएं

शैक्षिक एवं व्यावसायिक सम्मेलनों द्वारा सामूहिक निर्देशन के लिए निम्न क्रियाओं के आयोजन का सुझाव दिया गया जिसका उद्येष्य भी सामूहिक निर्देशन देना होता है।

जैसे संगीत समूह, आर्ट क्लब,व्यवसाय,बाह्य खेल,वैज्ञानिक समाज,विद्यालय के प्रकाषन आदि क्रियाओं का आयोजन कर निर्देशन की प्रविधि के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

5.निर्देशन की नैदानिक विधि

इस विधि के अंतर्गत निर्देशन की प्रकिया को अत्यंत व्यापक रूप से लिया जाता है जिसमें विभिन्न प्रकार के आंकड़ों की सविस्तार व्याख्या के लिए मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

इस विधि में साथी समूह के दोस्तों, अभिभावक व शिक्षकों के विचारों को महत्व देते हुए आलोचनात्मक तर्क दिए जाते है। प्राप्त आकडों के छटनीकरण की प्रकिया में वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग किया जाता है। जिससे आंकडों को अधिकतम सार्थक एवं वैध ठहराया जा सके इसके व्याख्या के लिए साख्यिंकीय प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है।

नैदानिक निर्देशन विधि के महत्वपूर्ण चरण

i. आंकड़ों का संग्रह- आंकडों का संग्रह के अन्तर्गत निम्न बातों के संग्रह पर विशेष ध्यान दिया जाता है। व्यक्ति में अभिक्षमता,अभिवृद्धि, व्यक्तित्व के शील गुण इत्यादि।
ii. आकड़ों का विष्लेषण - विष्लेषण के लिए ऐसे आंकड़ों का चुनाव किया जाता है जो समस्या के समझने व व्याख्या करने के लिए सहयोगी हो
iii. आंकड़ों का संष्लेषण- आंकड़ों का इस प्रकार संयोजन किया जाता है कि आंकड़ों की प्रकृति के आधार पर व्यक्ति की समस्या का पता लगाया जा सके।
iv. निदान- आंकड़ों की प्रकृति व व्यक्ति की शैक्षिक एवं व्यवसायिक संरचना द्वारा व्यक्ति की समस्याओं का निदान किया जाता है।
v. सलाह- इसके अर्न्तगत परामर्श लेने वाले को अभिप्रेरित तथा समस्या के परिप्रेक्ष्य में उचित सलाह दी जाती है।
vi. जांच करना- दिये गये उपचारों की जांच की जाती है।
vii. मूल्यांकन- यह परामर्श का अन्तिम चरण होता है, जो जांच से सम्बन्धित होता है।

6.समूह विचार विमर्श

ऐसी प्रविधि में किसी समस्या के परिप्रेक्ष्य में सदस्यों द्वारा आपस में विचार विमर्श करके उचित समाधान ढुंढने का प्रयास किया जाता है। जैसे माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों को विभिन्न करियर के विषय में जानकारी होती है। किसी विषय पर समूह विचार विमर्श का आयोजन किया जा सकता है जिसमें समूह के सदस्य बिना किसी झिझक एवं डर के विषय पर चर्चा कर सके।

7.समस्या समाधान

व्यक्तिगत समस्याओं के समाधान के साथ-साथ सामान्य समस्या का समाधान करने के लिए समस्या समाधान विधि का प्रयोग निम्न चरणों में किया जा सकता है-

- समस्या की उत्पति, समस्या की व्याख्या पर प्रकाश।
- सार्थक तथ्यों के आधार पर समस्या समाधान के लिए कार्यविधि करना।
- एकत्रित आंकड़ों के सन्दर्भ में समस्या का विश्लेषण करना।
- सम्भावित उत्तरों की सूची तैयार करना एवं उनका मूल्यांकन करना।
- समूह में उत्तरों की स्वकारिता की स्थिति जानना।

8.अभिनय

छोटे समूह में अभिनय का प्रयोग निर्देशन की तकनीकी के रूप में किया जा सकता अभिनय प्रविधि एक विधि होती है। जिसके माध्यम से वास्तविक जीवन में अभिनय कर किसी विचार में परिवर्तन लाया जा सकता है। इसके लिए समूह के सभी सदस्यों का अभिनय एवं समस्या से अवगत होना आवश्यक है इसके बाद अभिनय का आंबटन एवं सदस्यों को तैयार करना तथा निष्कर्ष एवं पृष्ठपोषण का आयोजन करना।

9.समूह प्रतिवेदन

समूह प्रतिवेदन को समूह निर्देशन की प्रविधि के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। उदाहरण के लिए किसी बड़े समूह के सदस्यों को दो छोटे-छोटे सदस्यों के समूहों में बांटकर प्रत्येक समूह के सदस्यों को मदद करते हुए प्ररतिवेदन समस्या से सम्बन्धित उत्तर तैयार करने को कहा जाए उसके बाद प्राप्त प्रतिवेदन को किसी बड़े समूह के निर्देशन के लिए प्रयोग किया जाए।

10.औपचारिक विचार विमर्श

औपचारिक विचार विमर्श निर्देशन के क्षेत्र में योग्य प्रशिक्षित अध्यापकों द्वारा समूह की समस्या पर किया जा सकता है। यह विमर्श वांछित उद्देश्यों पर केन्द्रित होता है जिसके द्वारा समूह के समस्त व्यक्तियों पर लाभ पहुंचता है।

यह समूह निर्देशन की एक अन्य तकनीकी है जिसमें निश्चित विषय पर रोचक रूप से निर्देशन दिया जा सकता है जैसे साक्षात्कार में कैसे प्रवेश किया जाए? परीक्षा की तैयारी कैसे की जाए? आदि बातों के लिए छात्रों को निर्देशन दिया जा सकता हैं।

अभ्यास प्रश्न

2. समूह निर्देशन क्या है?

3. _____ के अनुसार समूह निर्देशन समूह परिस्थितियों में प्रयोग किया जाने वाले विचार है। जिसमें निर्देशन सेवा को विद्यालय समूह, या विद्यार्थियों के समूह पर किया जाता है।
4. _____ने समूह निर्देशन के महत्व को बताते हुए कहा है कि यदि सार्थक अभिवृद्धि एवं अनुभव बड़ी संख्या में बच्चों को प्रदान किया जाए तो बच्चों को किसी समूह विशेष में रखना पड़ेगा और बहुत कम समय में विद्यार्थियों के एक बड़े समूह को सूचना प्रदान कर दी जायेगी।
5. समूह निर्देशन की क्रियाओं का आयोजन मूल रूप से किन बिन्दुओं को शामिल करता है?
6. समूह निर्देशन क्रियाएं_____ की अपेक्षा _____ होती है।
7. समूह निर्देशन की प्रविधि के रूप में किन्हीं पाँच प्रकार की तकनीकों के नाम लिखिए।
8. समूह प्रतिवेदन को _____ की प्रविधि के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

8.11 सारांश

सारांश रूप में यह कहा जा सकता है कि सामूहिक निर्देशन, निर्देशन का एक अंग एवं भाग जिसमें एक आवश्यकता के विभिन्न व्यक्तियों का चयन कर एक समूह का निर्धारण किया जाता है तथा विषय विशेषज्ञ को बुलाकर सामान्य समस्या पर विचार विमर्श किया जाता है। समूह के सभी सदस्यों की समस्याएं एक समान होती है जिस पर वे आपस में अन्तः किया करते हैं और स्वनिर्देशित होते हो समूह निर्देशन कहलाता है। मूल रूप से समूह निर्देशन के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के आंकड़ों का संग्रह करने वाली विधियों को प्रयोग कर आंकड़ों का संग्रह किया जाता है। तथा प्रविधि के रूप में समूह निर्देशन, वृत्तिका अनौपचारिक विचार विमर्श, नाटक, समस्या समाधान आदि विधि का प्रयोग समूह निर्देशन के लिए किया जाता है।

8.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. समूह निर्देशन, निर्देशन का एक रूप है। जिसमें निर्देशनकर्ता एक से अधिक व्यक्ति जो एक ही आयु समूह एवं समस्या के होते है, को निर्देशित करता है समूह निर्देशन कहलाता है।
2. क्रो॰ एण्ड क्रो
3. राबर्ट एचनाप .
4. समूह निर्देशन की क्रियाओं का आयोजन मूल रूप से निम्न बिन्दुओं को शामिल करता है-
   i. आवश्यकताओं का आंकलन करना
   ii. समूह निर्देशन का स्थान समय, एवं समूह के आकार का निर्धारण

iii. सदस्यों का चुनाव एवं विशिष्टकरण
iv. सदस्यों का अभिविन्यास
v. क्रियाओं का नियोजन एवं प्राप्त किए गये परिणामों का मूल्यांकन

5. निदानात्मकता, निरोधक
6. समूह निर्देशन की प्रविधि के रूप में किन्हीं पाँच प्रकार की तकनीकों के नाम हैं-
   i. सभा का आयोजन
   ii. कैरियर सम्मेलन
   iii. श्रव्यदृष्य सामग्री
   iv. सामूहिक क्रियाएं
   v. निर्देशन की नैदानिक विधि
7. समूह निर्देशन

8.13 सन्दर्भ ग्रंथ

1. शर्मा आर ए॰ एंव चतुर्वेदी शिखा (2008) निर्देशन एंव परामर्श के मूल तत्व आर लाल बुक डिपो मेरठ।
2. जयसवाल सिताराम (2010) शिक्षा में निर्देशन एंव परामर्श अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा।
3. अग्रवाल जे॰ सी॰ (1991) शैक्षिक एंव व्यवसायिक निर्देशन एंव परामर्श सेवा डांबा हाऊस नई दिल्ली।
4. भटनागर आर॰ पी॰ शिक्षा में निर्देशन एंव परामर्श।
5. सिंह राज (1994) शैक्षिक एंव व्यवसायिक निर्देशन।
6. कोचर एस के (1901) भारतीय शिक्षा में निर्देशन।

8.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. समूह निर्देशन से आप क्या समझते हैं। समूह निर्देशन की विभिन्न प्रविधियों का वर्णन कीजिए।
2. समूह निर्देशन की क्रियओं का आयोजन कैसे किया जाता है?
3. समूह निर्देशन के कोई पांच उद्देश्य लिखो।
4. समूह निर्देशन के विभिन्न सिद्धांतों का वर्णन कीजिए।

इकाई 9: समूह परामर्श बनाम व्यक्तिगत परामर्श , एक अच्छे परामर्श की विशेषताएँ, समायोजन हेतु परामर्श

9.1 प्रस्तावना
9.2 उदेश्य
9.3 समूह परामर्श बनाम व्यक्तिगत परामर्श
9.3.1 समूह परामर्श अर्थ, अवधारणाएँ, उदेश्य, चरण, अवस्थाएँ
9.3.2 समूह परामर्श के लाभ और सीमाएँ
9.3.3 व्यक्तिगत परामर्श अर्थ, उदेश्य, चरण
9.3.4 व्यक्तिगत परामर्श के लाभ एवं सीमाएँ
9.3.5 समूह परामर्श व व्यक्तिगत परामर्श का तुलनात्मक अध्ययन
9.4एक अच्छे परामर्श की विशेषताएँ
9.4.1 अच्छे परामर्श हेतु उपबोधक की भूमिका
9.4.2 अच्छे परामर्श हेतु उपबोध्य की भूमिका
9.5समायोजन के लिए परामर्श
9.5.1 समायोजन का अर्थ
9.5.2 समायोजन की आवश्यकता
9.5.3 समायोजन के लिए परामर्श की भूमिका
9.6सारांश
9.7शब्दावली
9.8अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.9संदर्भ ग्रन्थ
9.10 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

आप अब तक परामर्श की अवधारणा को भली भाँति समझ चुके हैं। यह जान चुके हैं कि परामर्श की प्रक्रिया में उपबोधक द्वारा परामर्श सेवा प्रदान कर उपबोध्य में आत्मसमझ के विकास, अन्तःदृष्टि के विकास व समायोजन की क्षमता के विकास में सहायता किया जाता है।

अब आपको यह समझना है कि सहायता प्रदान करने की यह प्रक्रिया दो विधियों द्वारा सम्पन्न की जाती है। प्रथम विधि में, उपबोधक केवल एक व्यक्ति को सहायता प्रदान करने के लिए परामर्श कार्य सम्पन्न करता है, इसे व्यक्तिगत परामर्श कहते है व द्वितीय विधि में, उपबोधक परामर्श की क्रिया को समूह में सम्पन्न करता है जिसे समूह परामर्श कहते हैं। वास्तव में परामर्श की क्रिया को सदैव से व्यक्ति या उपबोध्य केन्द्रित माना जाता रहा है। परन्तु बदलते समय व परिस्थितियों के अनुसार परामर्श में भी नवीन तरीकों का प्रयोग बढ़ा हैं इस क्रम में परामर्श के क्षेत्र में समूह परामर्श की अवधारणा का प्रयोग भी बढ़ चला है। अतः इस इकाई में आपको समूह परामर्श व व्यक्तिगत परामर्श को स्पष्ट रूप से समझाने का प्रयास कराया जाएगा। पुनः आपको यह समझना भी आवश्यक है कि परामर्श के लक्ष्यों को तभी प्राप्त किया जा सकता है जब परामर्श अच्छे व प्रभावशाली ढ़ंग से सम्पन्न हो। अतः इस इकाई में आपको एक अच्छे परामर्श की विशेषताओं से परिचित कराया जाएगा। इसके अतिरिक्त इस इकाई में समायोजन के लिए परामर्श की आवश्यकता को भी समझाने का प्रयास भी किया जाएगा।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप समूह परामर्श एवं व्यक्तिगत परामर्श के महत्त्व को समझा सकेंगे। प्रभावशाली परामर्श के प्रमुख विशेषताओं को समझा सकेंगे व समायोजन के लिए परामर्श की भूमिका की व्याख्या कर सकेंगे।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

1. समूह परामर्श की अवधारणाएँ, आवश्यकता एवं उदेश्यों को व्यक्त कर सकेंगे।
2. व्यक्तिगत परामर्श की अवधारणा, आवश्यकता एवं उदेश्यों को व्यक्त कर सकेंगे।
3. व्यक्तिगत परामर्श व समूह परामर्श की तुलना कर सकेंगे।
4. प्रभावी उपबोधक की विशेषताओं का उल्लेख कर सकेंगे।
5. ऐसे मामलों की पहचान कर सकेंगे जहाँ व्यक्ति को समायोजन क्षमता के विकास हेतु परामर्श के माध्यम से सहायता की आवश्यकता है।

9.3 समूह परामर्श बनाम व्यक्तिगत परामर्श

हम पहले ही समझ चुके हैं कि परामर्श की प्रक्रिया दो प्रकार की विधियों के द्वारा सम्पन्न की जाती है जिन्हे हम क्रमशः समूह परामर्श एवं व्यक्तिगत परामर्श कहते हैं। अब हम समूह परामर्श व व्यक्तिगत परामर्श के संबंध में विस्तृत ज्ञान प्राप्त करने के लिए दोनों का क्रमशः अलग-अलग व बारीकी से अध्ययन करेंगे।

9.3.1 समूह परामर्श अर्थ, अवधारणाएँ, उदेश्य, चरण, अवस्थाएँ

परामर्श के क्षेत्र में समूह परामर्श की अवधारणा नवीनतम है। वर्त्तमान समय में समाज के सभी सेवा क्षेत्रों में, जिसमें विद्यालय, महाविद्यालय, मानसिक स्वास्थ्य संस्थान और दूसरे मानव सेवा एजेंसीयां सम्मिलित हैं, समूह परामर्श की प्रक्रिया का उपयोग बढ़ता जा रहा है।

संबंधित अध्ययन के क्रम में आगे बढ़ने से पूर्व हम यह समझ लेने का प्रयास करेंगे कि समूह परामर्श की आवश्यकता क्यों महसुस की जा रही है। वास्तव में मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है तथा वह अपनी समस्याओं का समाधान समूह की मदद से अधिक बेहतर ढ़ंग से कर सकता है। मनुष्य सबसे अधिक प्रेम व जुड़ाव का भुखा होता है। मनुष्य की इस आवश्यकता की संतुष्टि समूह में होती है। व्यक्ति जब खुद की पहचान को खोने लगता है तब समूह व्यक्ति के चिंतन करने की प्रक्रिया को पुर्नव्यवस्थित करता है। समूह व्यक्ति के आत्म चेतना के विकास में सहायता करता है। इनके अतिरिक्त समूह परामर्श के बढ़ रहे उपयोग के पीछे एक सोंच यह भी है कि वैसे उपबोध्य जो व्यक्तिगत रूप से परामर्श में खुद को सहज नहीं पाते हैं उनके लिए समूह परामर्श विशेष रूप से लाभदायक है। समूह में बैठने से उपबोध्य की निजी पहचान छिप जाती है और वह इसी वजह से अधिक स्वाभाविक रूप से अनुक्रिया करता है। आर्थिक दृष्टिकोण से भी देखा जाए तो यह कम खर्चीली है, क्योंकि धन के रूप में संसाधनों और प्रशिक्षित कार्मिकों की सदैव कमी रहती है। इसलिए यदि एक ही समय में व्यक्तियों के पूरे समूह को परामर्श प्रदान किया जाए तो यह अत्यंत लाभदायक सिद्ध होगा। इनके अतिरिक्त एक तथ्य यह भी है कि समूह परामर्श कुछ विशेष अभिवृत्तियों, धारणाओं, भावनाओं, आवश्यकताओं आदि में बदलाव लाने में सहायक होती है। ऐसे व्यक्तियों के लिए समूह परामर्श बड़े स्तर पर लाभदायक है जो अंतःव्यक्ति अंतःक्रियाओं में शर्मीले या आक्रामक है, समूहों में उत्तेजित या असुविधा अनुभव करते हैं या सामाजिक अपेक्षाओं के प्रति अनिच्छुक है। समूह परामर्श से किशोरों को भी अधिक लाभ पहुँचता है जिनके लिए मित्र समूह का विशेष महत्त्व है। पुनः समूह परामर्श से समाज के कुछ विशेष वर्ग जैसे नशा करने वाले, उत्पीड़ित वर्ग या ऐसे कुछ अन्य वर्ग अधिक फायदा उठा सकते हैं।

समूह परामर्श का अर्थ

समूह परामर्श में एक छोटे समूह के सदस्य सम्मिलित होते हैं जो अपने विशिष्ट लक्ष्यों को लेकर एकत्रित होते हैं, आपस में अपनी समस्याओं को बाँटते हैं, तदनुभूति पूर्ण व्यवहार का अदान-प्रदान करते हैं। एक दूसरे को सहारा देते हैं और अपने व्यवहार के परिवर्त्तन हेतु व अंतर्वैयक्तिक समस्याओं के समाधान हेतु उपयोगी कौशलों के विकास करने में सहायता प्राप्त करते हैं।

इस प्रकार समूह परामर्श वह प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत व्यक्तियों का समूह उपबोधक के साथ मिलजूल कर वैयक्तिक और अंतर्वैयक्तिक समस्याओं को दूर करने की कला सीखते हैं। इस प्रक्रिया में कुछ उपबोध्य अपनी समस्याओं की मिलजुल कर खोजबीन करते हैं और उनका विश्लेषण भी करते

हैं जिससे समस्याओं को वे बेहतर तरीके से समझ सकें; समस्याओं का सामना करना सीख सकें और उपलब्ध विकल्पों में से सही विकल्प का चयन कर सकें और अंतिम निर्णय भी ले सकें। समूह परामर्श उपबोघ्यों को एक-दूसरे के निकट लाने में सहायता प्रदान करता है और उन्हें संवेगात्मक सहयोग प्रदान करता है, ताकि वे अपने-आप को और अन्य व्यक्तियों को समझ सकें। जैसे-जैसे समूह संबंध सुदृढ़ बनते हैं, समान निर्देश के अंतर्गत सामूहिक उदेश्यों की प्राप्ति पर आधारित भावना विकसित होती चली जाती है।

इस क्रम में **डिंकमायर एवं काल्डवेल** के विचार भी उल्लेखनीय हैं जो समूह परामर्श को छात्र के स्वाभाविक विकास की प्रक्रिया को तीव्र व प्रभावशाली बनाने का साधन मानते हैं। उनके अनुसार ''यह प्रत्येक छात्र को ऐसी अन्तर्वैयक्तिक प्रक्रिया में सम्मिलित होने का अवसर देता है जिसके द्वारा वह अपने सम-समूह के साथ कार्य करते हुए, अपनी विकासात्मक समस्याओं से अधिक सामर्थ्य से समाधान हेतु तैयार होता है।''

समूह परामर्श की अवधारणाएँ

समूह परामर्श कुछ विशेष अवधारणाओं पर आधारित है-

1. व्यक्तियों में समूह के सदस्यों में परस्पर विश्वास रखने और उनके विश्वास को प्राप्त करने की आवश्यक प्रतिभा क्षमता होनी चाहिए।
2. सदस्यों का एक-दूसरे के साथ सरोकार होना चाहिए।
3. प्रत्येक व्यक्ति में यह स्वाभाविक क्षमता होनी चाहिए कि वह आत्म परिवर्त्तन का उत्तरदायित्व ले सके।
4. समूह के सदस्यों में समूह गतिशीलता को समझने व ग्रहण करने की योग्यता होनी चाहिए।
5. सदस्यों में समस्या के स्व-समाधान करने की योग्यता का विकास होना चाहिए।
6. समूह परामर्श में कुछ नैतिक मूल्यों का भी विशेष रूप से धन रखा जाना चाहिए। जैसे-

समूह परामर्श में अधिक गोपनीय व अत्यंत व्यक्तिगत समस्याओं को नहीं रखा जाना चाहिए। समूह में केवल उन्हीं समस्याओं पर विचार विमर्श होना चाहिए जो प्रकृति में कम संवेदनशील व सामाजिक रूप में स्वीकृति योग्य हों।

समूह के सदस्यों में नैतिक जिम्मेवारियां होनी चाहिए जैसे सदस्यों के प्रति ईमानदारी व सम्मानपूर्ण भावना, नियमितता, समयबद्धता, विचारों की स्पष्टता, दूसरों को पृष्ठपोषण देना, गोपनीयता को बनाए रखना आदि।

समूह का कोई सदस्य बिना पूर्व सूचना दिए व समूह छोड़ने का वैद्य कारण दिए बिना समूह नहीं छोड़ सकता है।

समूह परामर्श का उदेश्य

समूह परामर्श की प्रक्रिया के कुछ महत्त्वपूर्ण उद्देश्य हैं जिनकी प्राप्ति हेतु उपबोधक प्रयासरत रहते हैं। ये उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

1. व्यक्ति में सामूहिक निर्णय लेने की क्षमता का विकास करना।
2. आत्म निर्देशन द्वारा सीखने के अवसर प्रदान करना।
3. व्यक्ति में आवश्यकताओं एवं समस्याओं को पहचानने की शक्ति का विकास करना।
4. व्यक्ति को दूसरे व्यक्तियों एवं उनकी समस्याओं को समझने हेतु तैयार करना।
5. व्यक्ति में सामाजिक कौशलों का विकास करना।
6. संसाधनों के मितव्ययी एवं कुशलता पूर्वक उपयोग करने की क्षमता को प्रोत्साहित करना।
7. व्यक्ति में सहयोग व सद्भाव की भावना का विकास करना।
8. एक समय में एक साथ अधिक-से-अधिक छात्रों को लाभ पहुँचाना।
9. विद्यार्थियों के अनैतिक व्यवहारों, दृष्टियों एवं प्रवृत्तियों में परिष्करण कर उन्हें वांछनीय मान्यताओं एवं मानकों की ओर अग्रसरित करना।
10. व्यक्ति को सामाजिक समायोजन हेतु सहायता प्रदान करना।
11. व्यक्ति को शैक्षिक व व्यावसायिक चयन संबंधी निर्णय लेने में सहायता प्रदान करना।
12. व्यक्ति में आत्मविश्वास, विचारों को अभिव्यक्त करने व श्रवण की कला का विकास करना।
13. वैयक्तिक व अंतर्वैयक्तिक समस्याओं को सामूहिक प्रयास से दूर करने की क्षमता का विकास करना।

समूह परामर्श के चरण

समूह परामर्श की क्रिया को क्रमिक चरणों में सम्पन्न करने पर यह अधिक उपयोगी व सफल साबित होती है। ये चरण निम्नलिखित हैं-

- समय व स्थान का निर्धारण
- सदस्यों को आपस में परिचित कराना
- उद्देष्यों एवं लक्ष्यों का स्पष्टीकरण
- उपबोधक द्वारा वार्त्तालाप के शीर्षक की प्रस्तावना
- सदस्यों द्वारा अपने-अपने विचारों को रखना
- विचार-विमर्ष करना
- निष्कर्ष
- अगली सभा के संबंध में निर्णय

1. समय व स्थान का निर्धारण-इस चरण में उपबोधक परामर्श हेतु समय व स्थान का निर्धारण करता है और सभी सदस्यों को इसकी सूचना प्रदान करता है।
2. सदस्यों का परिचय- इस चरण में उपबोधक मुख्य रूप से दो कार्य करता है-
   - सभी सदस्यों का स्वागत करना
   - सभी सदस्यों का परिचय करवाना
   - उद्देश्यों एवं लक्ष्यों का स्पष्टीकरण-
3. इस चरण में उपबोधक परामर्श के उदेश्यों एवं लक्ष्यों के संबंध में सभी सदस्यों से स्पष्ट रूप से बातचीत करता है।
4. वार्त्तालाप के शीर्षक की प्रस्तावना-इस चरण में उपबोधक वार्त्तालाप के शीर्षक की प्रस्तावना देता है।
5. समूह सहभागिता- इस चरण में सदस्यगण अपने-अपने विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। सभी सदस्यों के सक्रिय सहभागिता हेतु समूह का आकार अपेक्षाकृत छोटा होना चाहिए। लगभग छह से दस सदस्यों को ही किसी एक समूह में शामिल करना चाहिए। बड़े समूहों को नियंत्रित करना कठिन होता है।
6. विचार-विमर्ष- इस चरण में समूह के सभी सदस्यों को अपनी-अपनी शंकाओं के निवारण हेतु संबंधित विषय पर वाद-विवाद कराया जाता है तथा यह अवसर प्रदान कराया जाता है कि वे अपने संदेहों को दूर करें।
7. निष्कर्ष-अंत में अपबोधक बातचीत का सारांशीकरण करता है एवं संभावित नतीजे पर पहुँचता है। यह निष्कर्ष अगले बातचीत (आवश्यकता महसुस किए जाने पर) के लिए आधार का काम करता है।
8. अगले सभा के संबंध में निर्णय- इस चरण में समूह परामर्श हेतु अगले मुलाकात के संबंध में निर्णय लिया जाता है तथा इसके लिए समय एवं स्थान का भी चयन कर लिया जाता है।

समूह परामर्श की अवस्थाएँ

समूह परामर्श प्रक्रिया को विभिन्न अवस्थाओं में विभाजित किया जा सकता है। ये अवस्थाएँ है:

निर्माण की अवस्था- इस अवस्था में निम्नलिखित कार्य सम्पन्न किए जाते हैं-

- सूचना, विज्ञापन व पोस्टर आदि का प्रयोग कर व्यक्तियों को समूह के बारे में जागरूक बनाना व सदस्य बनने हेतु तैयार करना।
- उपबोधक द्वारा उपयुक्त समूह का चयन करना
- समूह के सदस्यों को एक दूसरे से परिचित करवाना
- समूह क्रियाशीलता के उदेश्यों एवं लक्ष्यों का स्पष्टीकरण करना

- क्रियाशीलता हेतु समय सारणी की रूपरेखा तैयार करना व स्थान तय करना

प्रारंभिक अन्वेषण अवस्था- इस अवस्था में उपबोधक समूह के सदस्यों को जो अभी तक एक दूसरे से अपरिचित होते है, आपस में खुलकर घुलने-मिलने के लिए तैयार करने हेतु अनुकूल वातावरण का निर्माण करता है। उपबोधक अपनी भूमिका की व्याख्या के साथ-साथ समूह के सदस्यों की भूमिका का वर्णन करता है। सौहार्द पूर्ण वातावरण का निर्माण कर व सदस्यों के विश्वास को जीतकर उन्हें खुलकर अभिव्यक्त करने हेतु प्रेरित करता है। सदस्यों के अपेक्षाओं के बारे में पता लगाता हैं
अवस्थान अवस्था- इस अवस्था को अपेक्षाकृत कठिन माना जाता है। इस अवस्था में उपबोध्य समूह के प्रति व उपबोधक के प्रति अपने नकारात्मक सोचों व प्रवृत्तियों का खुलकर प्रदर्शन करते हैं। ऐसी अवस्था में उपबोधक अपने परामर्श कौशल का परिचय देते हुए बुद्धिमतापूर्ण ढंग से सदस्यों को अपने द्वंद्वों का समाधान करने हेतु प्रेरित करता हैं

कार्यकारी अवस्था-इस अवस्था में सदस्य समूह से घनिष्ठ रूप से जुड़ जाते हैं। दूसरे सदस्यों की समस्याओं के प्रति अधिक जागरूक हो जाते हैं। इस अवस्था में समूह उत्पादक रूप धारण कर लेता है और महत्त्वपूर्ण समस्याओं के गूढ़ अध्ययन के प्रति वचनबद्ध हो जाता है और समूह में होने वाली अंतःपरिवर्त्तनों पर पूरा ध्यान देता है। इस अवस्था में सदस्य उपबोधक पर कम निर्भर करते हैं और विशिष्ट व्यक्तिगत लक्ष्यों व समूह लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए ध्यान केंद्रित करना शुरू कर देते हैं। समूह व सदस्य एक दूसरे से आसानी से तर्क-वितर्क कर सकते हैं और चुनौतियों को बदलाव लाने के ठोस साधनों के रूप में स्वीकार करना पसंद करते हैं।

समेकन और समाप्ति की अवस्था- यह अवस्था सारांशीकरण व समूह अनुभवों के समन्वयीकरण का होता है। इस अवस्था में सदस्यगण अपने-अपने अनुभवों को आपस में बाँटते हैं। समूह परामर्श के द्वारा प्राप्त अधिगम व स्वयं में विकसित अंतःदृष्टि के बारे में दूसरों को सूचना प्रदान करते हैं। साथ ही इनका प्रयोग वे अपने व्यावहारिक जीवन में किस प्रकार करेंगे, इनकी जानकारी प्रदान करते हैं। सदस्य समूह परामर्श के दौरान प्राप्त अनुभव व अधिगम का प्रयोग अपने-अपने क्षेत्रों में कार्य, करने के अवधारणात्मक रूपरेखा को विकसित करने में किस प्रकार करेंगे, इसके लिए उपबोधक उन्हें सहायता प्रदान करता हैं

अनुगमन सत्र- परामर्श सत्र के समाप्त होने के कुछ समय पश्चात् उपबोधक उपबोध्यों का अनुगमन कर यह जाँच करने का प्रयास करता है कि उपबोध्यों के व्यवहार में वांछनीय परिवर्त्तन हुआ है या नहीं अर्थात् परामर्श प्रदान करने में उसे सफलता प्राप्त हुई है या नहीं।

9.3.2 समूह परामर्श के लाभ और सीमाएँ

लाभ

i. यह विविध रूपों से कम खर्चीला है क्योंकि समूह परामर्श के अन्तर्गत एक साथ व्यक्तियों की बड़ी संख्या को उपबोधक द्वारा लाभान्वित किया जा सकता है। इससे समय की भी बचत होती है।
ii. इससे व्यक्तियों को अपनी अभिवृत्तियों, आदतों तथा निर्णयन को समाजीकृत करने में सहायता मिलती है।
iii. इसमें दूसरे सदस्यों के साथ अधिगम व अनुभव को बाँटने हेतु स्वस्थ वातावरण प्राप्त होता है जिससे कि छात्रों में आत्मविश्वास बढ़ता है।
iv. समूह परामर्श में व्यक्ति को हर कार्य एवं व्यवहार को ऐसे सीखने की प्रेरणा मिलती है जैसे वह वास्तविक जीवन में कोई कार्य कर रहा है।
v. इसमें अच्छे मानवीय संबंध स्थापित करने व सामूहिक निर्णय लेने की भावना का विकास होता है।

सीमाएँ

i. समूह परामर्श में अत्यंत व्यक्तिगत और निजी समस्याओं को उजागर नहीं किया जा सकता है।
ii. समूह परामर्श के दौरान स्थिति को नियंत्रित करना उपबोधक के लिए कठिन कार्य है।
iii. इसमें सदस्यों के अवधान को प्राप्त करने हेतु सृजनात्मक तकनीकों का उपयोग नहीं किया जाता है।
iv. समूह परामर्श सभी के लिए उपयुक्त नहीं है। कुछ व्यक्ति समूह में भय महसूस करते हैं व कुछ व्यक्तियों में सहनशक्ति का स्तर अत्यंत निम्न होता है और वे समूह की मांगों के अनुरूप व्यवहार बदलने में सक्षम नहीं होते।

कुछ बिन्दुओं को नजरअंदाज कर दिया जाए तो समूह परामर्श वास्तव में अधिगम अनुभव प्राप्त करने का प्रभावशाली रूप है जो व्यक्तियों कोई महत्त्वपूर्ण मानवीय गुणों का विकास करता है। इसमें सदस्य अपने अनुभवों को बाँटते है व दूसरों से सीख सकते हैं। व्यक्ति यह जान पाता है कि बहुत सारे लोग हैं जो समान समस्याओं का सामना कर रहे हैं, वह ही अकेला संघर्ष नहीं कर रहा है। समूह परामर्श विशेषकर विद्यालय एवं महाविद्यालय के वातावरण में अधिक सफलतापूर्वक सम्पन्न किया जा सकता है जहाँ छात्र समूह में सीखने में सहजता व आनंद की अनुभूति करते हैं।

9.3.3 व्यक्तिगत उपबोधनः अर्थ, उदेश्य व चरण

समूह परामर्श की अवधारणा को हम भली-भाँति समझ चुके हैं। हम यह भी समझ चुके हैं कि कुछ परिस्थितियों में समूह परामर्श का उपयोग फलदायी नहीं होता है। बहुत सारी परिस्थितियाँ ऐसी होती है जहाँ परामर्श व्यक्तिगत रूप में देना अधिक श्रेयस्कर है। व्यक्ति की कुछ समस्याएँ अत्यंत निजी होती है। इसके समाधान के लिए उसे व्यक्तिगत परामर्श की आवश्यकता होती है। जैसे- शारीरिक

स्वास्थ्य रोग (संबंधी) की समस्याएं, मानसिक एवं सांवेगिक समस्याएँ (चिंता, अवसाद, क्रोध आदि संबंधी), घरेलु समस्याएँ (घरेलु हिंसा, पति-पत्नी के बीच मतभेद) वैवाहिक व पूर्व वैवाहिक समस्याएँ, आर्थिक व व्यावसायिक समस्याएँ, शिक्षा संबंधी समस्याएँ (विषय चयन, समायोजन आदि से संबंधी समस्याएँ) आदि।

व्यक्तिगत परामर्श का अर्थ

व्यक्तिगत परामर्श वह प्रक्रिया है जिसमें उपबोधक उपबोध्य के साथ आमने-सामने बैठकर अधिक सक्रिय, प्रत्यक्ष, वैयक्तिक व फोकस होकर उपबोध्य में स्वयं को पहचानने व स्वयं को समझने की शक्ति व समायोजन करने की क्षमता के विकास में सहायता प्रदान करता है।

यह एक परस्पर साझी प्रक्रिया है जिसमें उपबोधक व इच्छित उपबोध्य के बीच अनूठा व गोपनीय सहायतार्थ संबंध का विकास होता है। व्यक्तिगत परामर्श की प्रक्रिया में परामर्श की शुरूआत उपबोधक सहायता की ईच्छा रखने वाले उपबोध्य की समस्याओं को समझने व उन समस्याओं का उपबोध्य के जीवन पर पड़ने वाले भावी प्रभावों को पहचानने से करता है। तत्पश्चात् उपबोधक व उपबोध्य मिलकर लक्ष्यों को निर्धारित करते हैं तथा लक्ष्यों को प्राप्त करने की दिशा में कार्य प्रारम्भ करते हैं। इस क्रम में उपबोधक प्रयासरत रहता है कि उपबोध्य में अंतःदृष्टि का विकास हो और वह अपनी समस्या का समाधान स्वयं बंहतर ढंग से कर सके। परामर्श सत्र समाप्त होने के कुछ समय पश्चात् उपबोधक अनुगमन द्वारा परामर्श की सफलता व असफलता की भी जाँच करता है।

व्यक्तिगत परामर्श के उदेश्य

i. व्यक्ति में आत्म समझ का विकास करना।
ii. व्यक्ति में समायोजन की योग्यता का विकास करना।
iii. व्यक्तिगत जीवन से संबंधित समस्याओं के सन्दर्भ में निर्णय लेने की क्षमता का विकास करना।
iv. व्यक्ति को अपने अंतःद्वन्दों व नकारात्मक भावनाओं पर विजय प्राप्त करने हेतु तैयार करना।
v. व्यक्ति में सकारात्मक मनोवृत्ति का विकास करना।
vi. व्यक्ति में समाजिक, सांवेगिक व आध्यात्मिक लब्धि का विकास करना।

व्यक्तिगत परामर्श के चरण

1. उपबोधक सौहार्दपूर्ण वातावरण का निर्माण करता है, जिसमें उपबोध्य अपने विचारों को खुलकर अभिव्यक्त करता है।
2. उपबोधक समस्याजन्य दशाओं को परिभाषित करता है।
3. उपबोध्य को अपने विचारों व भावनाओं की अभिव्यक्ति हेतु स्वतंत्रता प्रदान करता है।
4. उपबोधक उपबोध्य के सकारात्मक व नकारात्मक भावों का वर्गीकरण करता है।
5. उपबोधक तकनीकों की सहायता से आँकड़ों का संग्रहण करता है।

6. आँकड़ों के संग्रहण के पश्चात् उपबोधक संबंधित समस्याओं का अध्ययन एवं मूल्यांकन करता है।
7. अध्ययन एवं मूल्यांकन के उपरान्त वास्तविक समस्या के समाधान की दिशा में व्यक्ति को परामर्श प्रदान करता है।
8. उपबोध्य में अन्तःदृष्टि का विकास होता है।
9. उपबोधक अनुगमन का कार्य करता है।

9.3.4 व्यक्तिगत परामर्श के लाभ एवं सीमाएँ

लाभ-

1. इसमें उपबोधक को सिर्फ एक उपबोध्य को सहायता देनी होती है अतः उपबोध्य, अधिक सरोकार व अवधान प्राप्त करता है।
2. उपबोधक को सूचना एकत्रित करने में आसानी होता है तथा वह अधिक प्रभावी ढंग से उपबोध्य को सहायता प्रदान करता है।
3. निजी व अधिक संवेदनशील समस्याओं का समाधान हो पाता है।
4. उपबोध्य के विचारों एवं व्यवहारों को उपबोधक अधिक बंहतर ढंग से समझ पाता है।
5. इसमें उपबोध्य अपने पसंद के अनुसार अपनी जीवन में परिवर्त्तन लाने की शक्ति को प्राप्त कर पाता है।
6. इसमें उपबोधक को अनुगमन एक उपबोध्य का करना होता है तो यह कार्य भी उपबोधक अधिक आसानी से व प्रभावपूर्ण ढंग से करता है।

सीमाएँ-

1. व्यक्तिगत परामर्श में उपबोध्य बहुत सारे अधिगम अनुभवों को प्राप्त करने से वंचित रह जाता है जो वह समूह में वह बेहतर ढंग से करता हैं
2. इसमें उपबोध्य में बहुत सारे सामाजिक कौशलों एवं मानवीय गुणों का विकास नहीं हो पाता है।
3. इसमें संसाधन, समय व शक्ति अधिक व्यय होता हैं
4. इसमें उपबोध्य अंतर्व्यक्तिगत संबंधों को बेहतर ढंग से नहीं समझ पाते हैं।

9.3.5 समूह परामर्श और व्यक्तिग परामर्श का तुलनात्मक अध्ययन

समूह परामर्श व व्यक्तिगत परामर्श का तुलनात्मक अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि दोनों प्रकार के परामर्श के मध्य कुछ समानताएँ व कुछ विभिन्नताएँ हैं।

समानताएँ

1. दोनों का उद्देश्य समान है अर्थात् उपबोध्य में स्वयं को पहचानने व स्वयं को समझने की क्षमता का विकास करना है।
2. दोनों में परामर्श हेतु बहुत सारे समान तकनीकों का प्रयोग होता है।
3. दोनों में गोपनीयता को बनाए रखने की नैतिक जिम्मेवारी होती है।
4. दोनों प्रकार के परामर्श में उपबोधक को सौहार्दपूर्ण वातावरण का निर्माण करना आवश्यक होता है।
5. दोनों माध्यमों से परामर्श प्राप्त करने वाले व्यक्ति सामान्य हैं जो तनाव, मायूसी, कुंठा, उत्तेजना या अन्य विकासपरक समस्याओं से संघर्ष करने की चेष्टा कर रहे हैं।

विभिन्नताएँ

1. व्यक्तिगत परामर्श एकैकी तथा मुखाभिमुख संबंध को दर्शाता है जिसमें उपबोधक केवल एक उपबोध्य के साथ आमने-सामने बैठकर परामर्श देता है। लेकिन समूह परामर्श में उपबोधक उपबोध्यों की बड़ी संख्या को एक साथ परामर्श प्रदान करता है।
2. व्यक्तिगत परामर्श में उपबोध्य सिर्फ सहायता की प्राप्ति करता है जबकि समूह परामर्श में उपबोध्य दूसरों को भी सहायता भी प्रदान करता है।
3. समूह परामर्श में समूह गतिकी के सिद्धांत के काफी अनुप्रयोग शामिल होते हैं, जबकि व्यक्तिगत परामर्श में उपबोधक और उपबोध्य का आपसी संबंध अत्यंत महत्त्वपूर्ण होता हैं
4. व्यक्तिगत परामर्श में अधिक संवेदनशील निजी व गोपनीय समस्याओं को रखा जाता है जबकि समूह में प्रकृति में कम संवेदनशील व सामाजिक रूप से स्वीकृत योग्य समस्याओं को रखा जाता है।

इस प्रकार हम स्पष्ट रूप से समझ चुके हैं कि व्यक्तिगत परामर्श व समूह परामर्श की अपने-अपने लाभ व अपनी-अपनी सीमाएँ हैं। दोनों में कुछ समानताएँ व कुछ विभिन्नताएँ हैं। यह कहना अत्यंत कठिन है कि दोनों में अधिक श्रेष्ठ व उपयोगी कौन है। वास्तव में दोनों के अपने-अपने महत्त्व है। कुछ परिस्थितियों में समूह परामर्श अधिक प्रभावशाली होता है वहीं कुछ परिस्थितियों में व्यक्तिगत परामर्श अधिक उपयोगी माना जाता है।

अभ्यास प्रश्न

1. समूह परामर्श से क्या अभिप्राय है?
2. समूह परामर्श प्रक्रिया के कौन-कौन से चरण हैं?
3. समूह परामर्श के दो लाभ बताइए?
4. व्यक्तिगत परामर्श के क्या-क्या उद्देश्य हैं?
5. व्यक्तिगत परामर्श व समूह परामर्श के मध्य दो अंतर बताइए?
6. समूह परामर्श में कौन-कौन से दो नैतिक मूल्यों का ध्यान रखा जाना चाहिए?

7. समूह परामर्श की सीमाएँ कौन सी हैं।
8. परामर्श केवल एकैकी स्थिति में ही दिया जा सकता है।(सत्य/असत्य)
9. समूह परामर्श में उपबोध्य की सहायतार्थ व्यावसायिक विशेषज्ञों का समूह होता है।(सत्य/असत्य)
10. समूह परामर्श मदिरापान करने वालों के लिए उपयुक्त हैं। (सत्य/असत्य)
11. समूह परामर्श में समूह के सदस्य एक दूसरे के प्रति सरोकार नहीं रखते हैं।(सत्य/असत्य)
12. व्यक्तिगत परामर्श में एक उपबोध्य उपबोधक के साथ आमने-सामने बैठकर परामर्श प्राप्त करता है।(सत्य/असत्य)
13. व्यक्तिगत परामर्श में धन व समय की बचत होती है। (सत्य/असत्य)

9.4 एक अच्छे परामर्श की विषेषताएँ

अब आप यह भली-भाँति समझ चुके हैं कि परामर्श चाहे व्यक्तिगत विधि द्वारा प्रदान किया जाए या समूह विधि द्वारा, इसका अंतिम उद्देश्य होता है व्यक्ति के संज्ञानात्मक, भावात्मक व क्रियात्मक तीनों पक्षों का विकास कर उनके व्यवहार में अपेक्षित परिवर्त्तन लाना। इस उद्देश्य की पूर्त्ति सफलतापूर्वक तभी हो सकती है जब परामर्श की प्रक्रिया प्रभावशाली हो। परामर्श की प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाने में दो व्यक्तियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। प्रथम स्वयं उपबोधक जो परामर्श की प्रक्रिया का प्रथम आधार बिन्दु है तथा द्वितीय उपबोध्य जो परामर्श की प्रक्रिया का द्वितीय महत्त्वपूर्ण आधार बिन्दु है। इस इकाई में हम एक अच्छे परामर्श हेतु भूमिका का निर्वाह करने वाले दोनों महत्त्वपूर्ण आधार बिन्दुओं के बारे में विस्तार से चर्चा करेंगे।

9.4.1 एक अच्छे परामर्श हेतु उपबोधक की भूमिका

परामर्श की प्रक्रिया का एक बड़ा भार उपबोधक के कंधों पर होता है। उपबोधक कुशल, योग्य, निपुण एवं प्रभावशाली होता है तभी वह पूर्ण रूप से नकारात्मकता से घिर चुके उपबोध्य में सकारात्मक मनोवृत्ति का विकास करता है। उपबोधक ही अपने पहचान को लगभग खो चुके उपबोध्य को उसमें मौजुद योग्यताओं एवं शक्तियों का बोध करवाता है व उन्हे जीवन के विभिन्न विपरित परिस्थितियों से जुझने के लिए पुनः तैयार करता है।

इस प्रकार देखा जाए तो उपबोधक परामर्श रूपी गाड़ी को सही दिशा में ले जाते हुए सही गंतव्य तक पहुंचाने में कुशल चालक की भूमिका का निर्वाह करता है। यहां हमें यह समझना भी आवश्यक है कि परामर्श रूपी गाड़ी को सही गंतव्य तक पहुंचाने हेतु चालक रूपी उपबोधक में व्यक्तित्व के कुछ विशिष्ट गुणों, योग्यता, उत्तरदायित्वों का बोध व परामर्श भी निपुणता जैसी विशेषताओं का होना

आवश्यक है। आइए अब हम अच्छे उपबोधक के उपयुक्त विशेषताओं के बारे में विस्तृत से जानने का प्रयास करेंगे।

उपबोधक के व्यक्तित्व की विषेषताएँ

एक अच्छे उपबोधक में व्यक्तित्व संबंधी किन-किन विशेषताओं का होना आवश्यक है, इस संबंध में पूर्व में कई अध्ययन हो चुके है। इस क्रम में अमेरिका के नेशनल वोकेशनल गाइडैन्स एसोसिएशन के अनुसार एक अच्छे उपबोधक में आम व्यक्तियों की समस्याओं में रूचि रखना, सहनशक्ति व संवेदनशीलता का होना, संवेगात्मक स्थिरता और वस्तुनिष्ठता का होना जैसी विशेषताएं होनी चाहिए। इसी प्रकार हरमिन और पालसेन (1950) द्वारा बताई गई विशेषताएं हैं; उपबोध्य को समझना, उससे सहानुभूति भरा और दोस्ताना व्यवहार करना, विनोदशील होना स्थिरता, सहनशक्ति, वस्तुनिष्ठता, सत्यनिष्ठ, चतुराई, निष्पक्षता, सफाई, शांतचित्त रहना, खुले विचारों का होना, दयालु, खुशमिजाज, सामाजिक चातुर्य और मनःसंतुलन। पुनः उपबोधक शिक्षा और पर्यवेक्षण संघ द्वारा बताई गई विशेषताएं हैं-

प्रत्येक व्यक्ति में विश्वास रखना, व्यक्तिगत मानव मूल्यों के प्रति वचनबद्धता, विश्व की ओर जागरूकता, उदार मानसिकता, स्वयं को समझना, वृत्तिक वचनबद्धता। इसी प्रकार वाइट्स (1957) सिंडरे एवं सिंडरे (1961) और स्टाइलर (1961) के अनुसार अच्छे उपबोधक में व्यक्तित्व संबंधी विशेषताएं हैं- व्यक्तियों की सहाता करने में रूचि रखना, प्रातक्षिक संवेदनशीलता, वैयक्तिक समंजन, वैयक्तिक सुरक्षा, अकृत्रिमता।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि एक अच्छे उपबोधक में व्यक्तित्व संबंधी निम्नलिखित विशेषताएँ होनी चाहिए-

1. संवेदनशीलता-एक अच्छे उपबोधक को उपबोध्य के समस्याओं के प्रति संवेदनशील होना चाहिए।
2. अवबोध-एक अच्छे उपबोधक में उपबोध्य की भावनाओं को भावात्मक रूप से समझने का गुण होना चाहिए। दूसरे शब्दों में एक अच्छा उपबोधक उपबोध्य से भावनात्मक रूप से जुड़ जाता है।
3. धैर्य- एक अच्छे उपबोधक को धैर्यवान होना चाहिए। उपबोध्य से पूरी सूचना प्राप्त करने से लेकर स्वयं द्वारा प्रदान की गई सूचनाओं को उपबोध्य द्वारा स्पष्ट रूप से समझ लेने तक उपबोधक को अत्यंत धैर्यता का परिचय देना चाहिए।
4. रूचि एंव तत्परता-एक अच्छे उपबोधक में व्यक्तियों की सहायता करने में रूचि व तत्परता होनी चाहिए।
5. सुसमायोजित व्यक्तित्व-एक अच्छे उपबोधक को सुसमायोजित व्यक्ति होना चाहिए। उसका संवेगात्मक व्यवहार संतुलित होना चाहिए। अलग-अलग परिस्थितियों के

अनुसार उसे अपने स्वभाव तथा कार्यशैली में परिवर्त्तन लाने की पर्याप्त क्षमता होनी चाहिए।

6. स्वीकरण- एक अच्छे उपबोधक को उपबोध्य के कथनों, भावनाओं व व्यवहार को बिना अच्छा या बुरा मूल्यांकित किए स्वीकार करना चाहिए।
7. नैतिक मूल्य- उपबोधक में नैतिकता का भी समावेश होना आवश्यक है जिससे कि वह उपबोध्य द्वारा दिए गए गुप्त सूचनाअइों को बिना उसकी सहमति के किसी के समझ प्रकट ना करे।
8. अकृत्रिमता- उपबोधक को उपबोध्य के साथ वास्तविक संबंध स्थापित करने में सक्षम होना चाहिए। उसके व्यवहार में कहीं से भी मिलावट या कृत्रिमता का बोध नहीं होना चाहिए।

उपबोधक की योग्यता एवं अभ्यास

एक अच्छे उपबोधक को उपयुक्त योग्यताधारी व प्रशिक्षित होना चाहिए। जहां तक योग्यता का प्रश्न है तो उपबोधक को परामर्श में विशिष्टीकरण के साथ मनोविज्ञान से स्नातकोत्तर और परामर्श अभ्यास एवं कौशलों में डिप्लोमाधारी होना चाहिए। एक अच्छे उपबोधक को आत्मविकास, व्यक्तिगत विभिन्नता, अभिप्रेरण, संवेग, प्रत्यक्षीकरण, संज्ञानात्मक प्रक्रिया आदि संप्रत्ययों का गहन ज्ञान होना चाहिए। उपर्युक्त योग्यता के अतिरिक्त उपयुक्त प्रशिक्षण व नियमित अभ्यास एक अच्छे उपबोधक का निर्माण करती है। उपबोधक को कुछ विशिष्ट क्षेत्रों में विशेष प्रशिक्षण प्राप्त करना आवश्यक है जैसे- शैक्षिक परामर्श , व्यावसायिक परामर्श , पूर्व वैवाहिक व वैवाहिक परामर्श , मनोवैज्ञानिक वातावरण में समायोजन, पारिवारिक परामर्श , मादक द्रव्य व्यसनिकों व मद्य व्यसनिकों का परामर्श विशिष्ट बालकों का परामर्श आदि।

उत्तरदायित्वों एवं कर्त्तव्यों का बोध

एक अच्छे उपबोधक को अपने उत्तरदायित्वों एवं कर्त्तव्यों का भली-भाँति ज्ञान होना चाहिए, तभी वह अपने व्यवहार को सही दिशा में निर्देशित करते हुए परामर्श के लक्ष्यों को प्राप्त कर सकेगा। एक अच्छे विद्यालय उपबोधक को साक्षात्कार, परामर्श सत्र का संचालन, रूचि व अभिक्षमता परीक्षण और मूल्यांकन के अन्य विधियों का समय-समय पर उपयोग कर छात्रों को शैक्षिक व वृत्तिक लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायता प्रदान करने हेतु सदैव प्रयासरत रहना चाहिए।

इस दिशा में उपबोधक को कुछ महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों का आश्यक रूप से बोध होना चाहिए जैसे-

छात्रों के शैक्षिक विकास से संबंधी कर्त्तव्य

i. उपबोधक को अधिगम प्रक्रियाएँ और शैक्षिक वातावरण व विकास कार्यक्रमों का बोध होना।

ii. छात्रों को सीखने व उपलब्धि प्राप्त करने हेतु प्रेरित करना।
iii. छात्रों को विद्यालय व मित्र समूह से समायोजन में सहायता प्रदान करना।
iv. विद्यालय के सभी मुख्य पक्षों पर विद्यार्थी के बारे में जानकारी एकत्रित करना।
v. छात्रों के शैक्षिक प्रगति को बढ़ाने वाले विधियों एवं प्रविधियों का समय-समय पर प्रयोग करना।
vi. छात्रों को उनकी योग्यताओं, रूझानों तथा रूचियों के अनुसार पाठ्यक्रम के चुनाव में सहायता करना।

छात्रों के वृत्तिक विकास से संबंधी कर्त्तव्य

i. उपबोधक को वृत्तिक विकास सिद्धांतों व वृत्तिक विकास कार्यक्रम का नियोजन, व्यवस्थापन, क्रियान्वयन, प्रशासन, मूल्यांकन का बोध होना।
ii. छात्रों को व्यवसाय चयन, व्यावसायिक प्रशिक्षण व्यावसायिक अवसरों, व्यावसायिक नियुक्तियों के बारे में सूचना प्रदान करना।
iii. वृत्तिक परामर्श प्रक्रिया, तकनीकों, संसाधनों व उपकरणों का विधिवत प्रयोग करना।
iv. वृत्तिक विकास के विभिन्न चरणों एवं अवस्थाओं का बोध होना।

छात्रों के व्यक्तिगत एवं सामाजिक विकास से संबंधी कर्तव्य

i. छात्रों में स्वस्थ व सकारात्मक मनोवृत्ति व अन्तर्वैयक्तिक संबंधों को सुदृढ़ बनाने वाले कौशलों का विकास करना।
ii. छात्रों में प्रभावशाली संप्रेषण हेतु आवश्यक कौशलों के विकास में सहायता करना।
iii. छात्रों को स्वयं को पहचानने, स्वयं निर्णय लेने व समस्या का स्वयं समाधान करने की क्षमता का विकास करना।
iv. छात्रों को व्यक्तिगत एवं सामाजिक समायोजन में सहायता करना।
v. छात्रों में सांवेगिक, सामाजिक व आध्यात्मिक लब्धि के विकास हेतु सहायता प्रदान करना।

उपर्युक्त दायित्वों के अलावा एक अच्छे उपबोधक को परामर्श के क्षेत्र में नित्य हो रहे नए-नए शोधों से अवगत रहना चाहिए तथा समय-समय पर उनका अनुप्रयोग अपने कार्य करने के तरीके में सुधार करने हेतु करना चाहिए।

परामर्श की प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाने हेतु उपबोधक में कुछ महत्त्वपूर्ण कौशलों का होना आवश्यक है। इन आवश्यक कौशलों का वर्गीकरण तीन प्रमुख श्रेणियों में किया गया है-

संज्ञानात्मक पक्ष से संबंधी कौशल- इसके अन्तर्गत ध्यान देकर सुनने का कौशल, नेतृत्व कौशल, परावर्त्तन कौशल, सारांशीकरण, कौशल आमना-सामना करने का कौशल, अर्थापन कौशल, सूचना प्रदान करने का कौशल आदि सम्मिलित है।

भावात्मक पक्ष से संबंधी कौशल- इसके अन्तर्गत भावात्मक सहारा प्रदान करने का कौशल, तदनुभूति, पूर्ण व्यवहार का कौशल, सौहार्दपूर्ण वातावरण के निर्माण का कौशल, मित्रवत व्यवहार का कौशल, प्रोत्साहित करने का कौशल, केन्द्रीकरण का कौशल आदि कौशल सम्मिलित हैं।

क्रियात्मक पक्ष से संबंधी कौशल- इसके अन्तर्गत समस्या समाधान कौशल, निर्णय लेने का कौशल नियोजित कार्य करने का कौशल व्यवहार परिवर्त्तन कौशल, विसंवेदनीकरण का कौशल आदि सम्मिलित है।

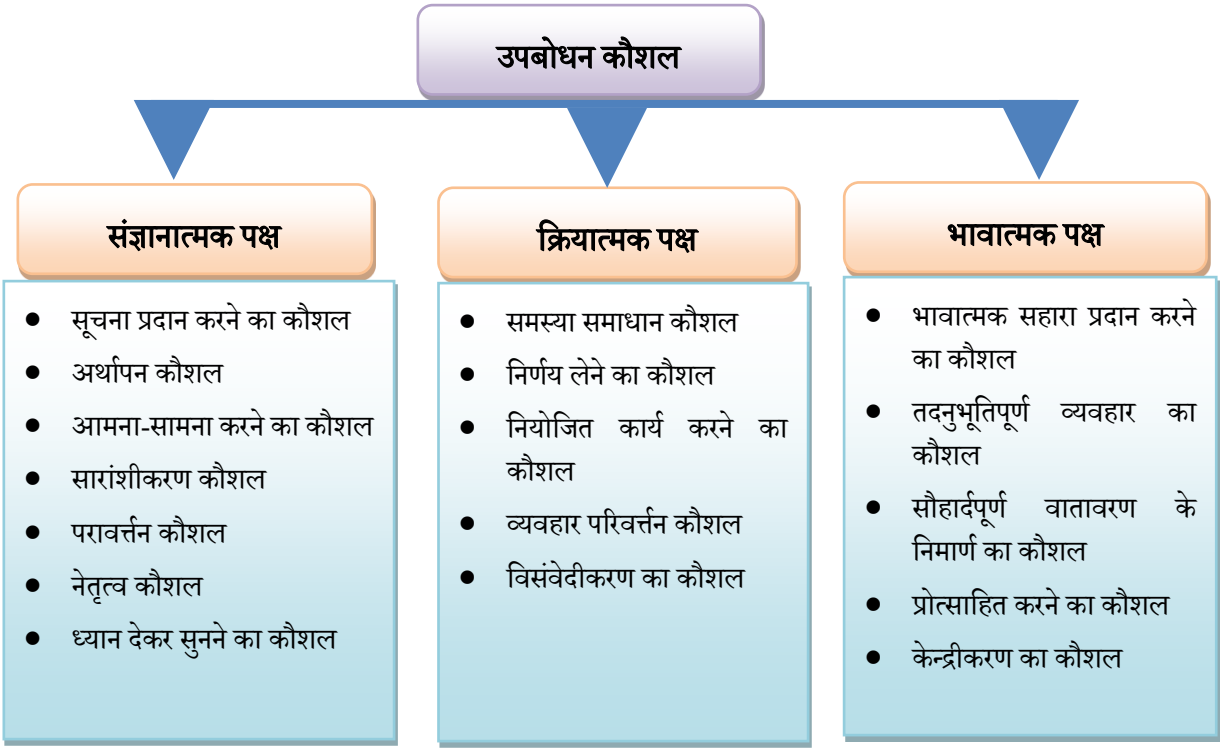

उपर्युक्त कौशलों में से कुछ महत्त्वपूर्ण कौशलों का वर्णन नीचे किया जा रहा है।

1. **सौहार्दपूर्ण वातावरण के निर्माण का कौशल**- इससे तात्पर्य ऐसे वातावरण से है जो परामर्श प्रक्रिया के प्रारंभिक चरण के दौरान उपबोधक द्वारा बनाया जाता है। जिसके माध्यम से उपबोध्य सहज महसुस करता है और उपबोधक से मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित होता है।
2. **अवधान/सर्तकता कौशल**-सौहार्द स्थापित करने के लिए उपबोधक को उपबोध्य की आवश्यकताओं, मिजाज, भावनाओं को समझने के लिए ध्यान को पूरी तरह से उपबोध्य के क्रियाओं पर केन्द्रित किए रहना होता हैं
3. **श्रवण कौशल**-उपबोधक को उपबोध्य द्वारा कहीं जा रही बातों को अत्यंत सतर्कतापूर्वक, सक्रिय होकर व रूचि व धैर्य के साथ सुनना चाहिए।

4. **अभिव्यक्ति कौशल**-उपबोधक में अपने विचारों को प्रभावपूर्ण ढंग से अभिव्यक्त करने का कौशल होना चाहिए जिससे कि उपबोध्य उसकी बातों को ध्यानपूर्वक सुनें। उपबोधक को बोलते वक्त शरीर संचालन, आवाज में उतार-चढ़ाव, भाव मुद्रा व मुखमुद्रा आदि का प्रभावशाली उपयोग करना आना चाहिए।
5. **तदनुभूति**-तदनुभूति से तात्पर्य होता है किसी की अनुभूति प्राप्त करना। डायमंड (1949) तदनुभूति को व्यक्त करते हैं कि दूसरे की सोच, भावना और कार्यण को अपनी कल्पना में उतारना और इसी प्रकार के संसार की संरचना करना जैसा कि वह करता है। यह परामर्श प्रक्रिया का एक महत्त्वपूर्ण कौशल है। एक अच्छे उपबोधक में यह कौशल होना चाहिए कि वह उपबोध्य की भावनाओं को स्वयं महसुस करने लगे
6. **वस्तुनिष्ठ निरीक्षण का कौशल**-उपबोधक में वस्तुनिष्ठता से निरीक्षण करने का कौशल होना चाहिए। परामर्श के क्रम में उपबोधक को पक्षपाती नहीं होना चाहिए।
7. **आमना-सामना या सम्मुखीकरण का कौशल** -एक अच्छे उपबोधक में यह कौशल होना चाहिए कि वह उपबोध्य को जीवन के सच से सामना करने हेतु तैयार कर सके।
8. **परामर्श के तकनीकों एवं उपकरणों के प्रयोग का कौशल**-एक अच्छे उपबोधक में परामर्श की प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाने हेतु आवश्यकतानुसार उपयुक्त उपकरण के प्रयोग करने का कौशल होना चाहिए। उपबोधक को वस्तुनिष्ठ, विषयनिष्ठ प्रक्षेपी तीनों प्रकार के उपकरणों के प्रयोग में कुशल होना चाहिए।

9.4.2 एक अच्छे परामर्श हेतु उपबोध्य की भूमिका

परामर्श परस्पर साझी प्रक्रिया है तथा यह प्रभावशाली तभी होती है जब उपबोधक एवं उपबोध्य के बीच पारस्परिक समझ हो। तभी वे आपस में सूचनाओं को बाँटते हैं व विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि चूंकि परामर्श प्रक्रिया से संबंधित समस्त व्यवस्था उपबोध्य के चारों ओर ही केन्द्रित होती है। अतः उपबोधक की समस्त योग्यताएँ एवं कौशल, अध्ययन एवं प्रशिक्षण केवल उसी दशा में सार्थक सिद्ध होते है ज बवह उपबोध्य को इस योग्य बना सके कि वह अपनी समस्याओं का समाधान स्वयं कर सके। इसी प्रकार उपबोध्य से संबंधित सूचनाओं के संकलन से संबंधित समस्त विधियाँ भी उपबोध्य के विभिन्न पक्षों से ही संबंधित होती है। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि उपबोध्य की आवश्यकताओं मानसिक, शारीरिक, संवेगात्मक स्थितियों, सामाजिक समायोजन पर आधारित संबंधों आदि के बारे में जितनी ही अधिक जानकारी प्राप्त होगी उतनी ही अधिक सफलता परामर्श की प्रक्रिया को सम्पन्न करने में प्राप्त हो सकेगी। इस क्रम में रूथ-स्ट्रेग के विचार के अनुसार उपबोध्य की अवधारणा, कार्य हेतु उसकी तत्परता, उसका अन्तर्द्वन्द, दबी ईच्छाएँ, अनिश्चित अपराध भावना, उसके आचरण के अन्तः स्रोत इत्यादि बातों की समझ सफल परामर्श का आधार है। उपबोध्य की शारीरिक स्थिति एवं उपबोधक की भूमिका के प्रति उसका प्रत्यय भी महत्त्वपूर्ण घटक है।

इस प्रकार सारांश के रूप में, यह कहा जा सकता है कि एक अच्छे परामर्श की दो प्रमुख विशेषताएं हैं- प्रथम प्रभावशाली उपबोधक व द्वितीय सहयोगी व तत्पर उपबोध्य। जब उपबोधक एवं उपबोध्य परस्पर संबंधों की समुचित पृष्ठभूमि बनाने में सफल हो जाते हैं और उदेश्यों एवं लक्ष्यों के अनुरूप परामर्श का उपयोग करते हैं। तभी परामर्श की प्रक्रिया सार्थन व सफल मानी जा सकती है।

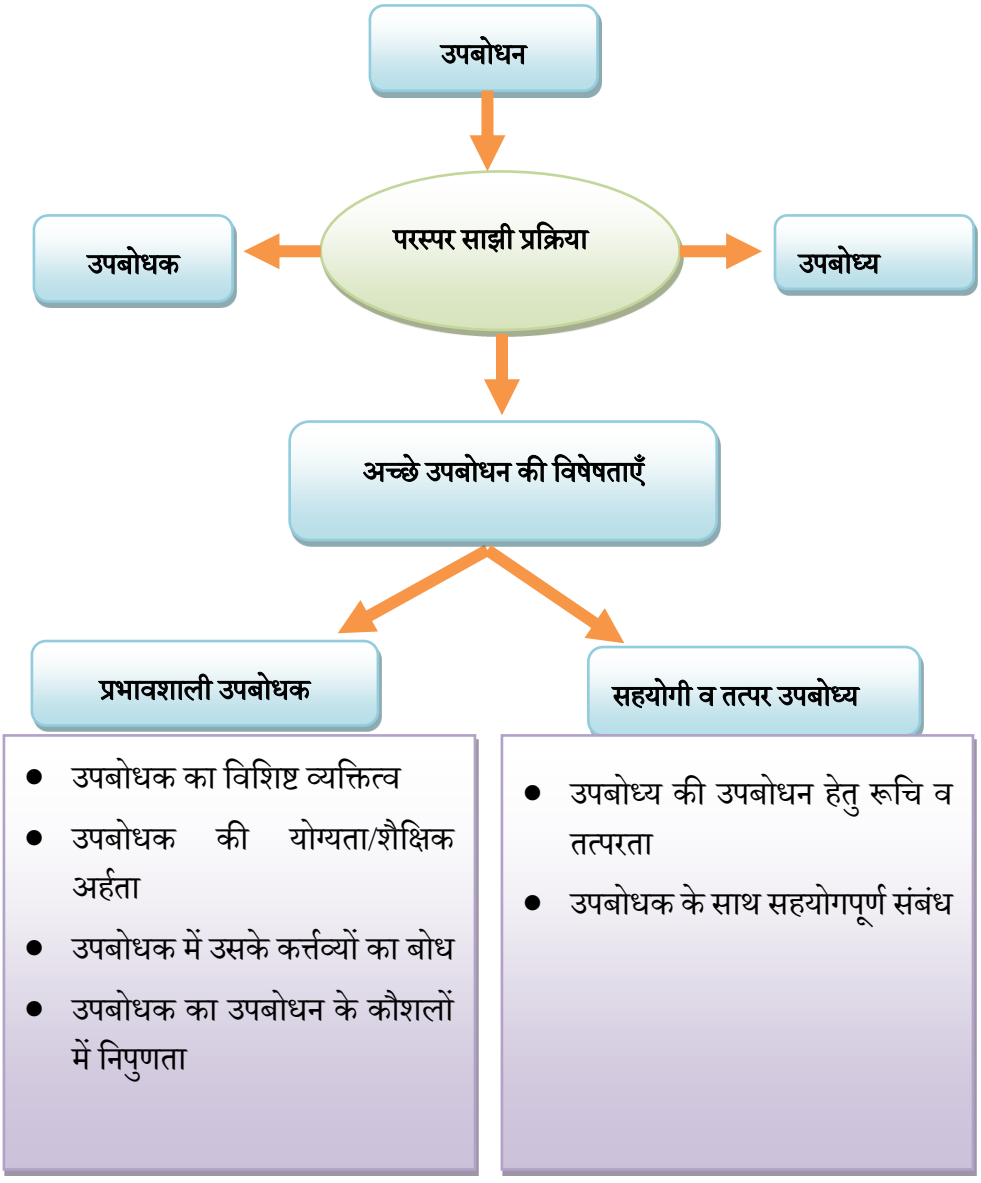

अभ्यास प्रश्न

14. अच्छे उपबोधक को किन्ही पाँच व्यक्तित्व संबंधी विशेषताओं का उल्लेख किजिए।
15. अच्छे परामर्श के किन्ही पाँच कौशलों का उल्लेख किजिए।
16. सौहार्दपूर्ण वातावरण से आप क्या समझते हैं?
17. तदनुभूति से क्या अभिप्राय है?
18. अच्छे परामर्श में उपबोध्य किस प्रकार मदद देते हैं?

9.5 समायोजन के लिए परामर्श

अब तक आप भली-भाँति जान चुकें है कि निर्देशन एवं परामर्श के क्षेत्र में 'समायोजन' शब्द अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। वास्तव में परामर्श व्यक्ति को जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में बेहतर ढंग से समायोजन करने में सहायता करने की प्रक्रिया है। हम समायोजन के अर्थ, समायोजन की आवश्यकता व व्यक्ति को समायोजित बनाने में परामर्श की भूमिका को विस्तार से समझने का प्रयास करेंगे।

9.5.1 समायोजनः अर्थ

हमारा जीवन समस्याओं का गढ़ है। पग-पग पर हमें समस्याओं का सामना करना पड़ता है। जो व्यक्ति जितने अच्छे ढंग से समस्या का सामना करते हुए आगे बढ़ता जाता है वह उतने ही अच्छे रूप से सफलता से प्रगति करते हुए आगे बढ़ता चला जाता है मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्त्ति के अतिरिक्त जीवन में हम बहुत कुछ चाहते हैं और यही चाह हमें पल-पल संघर्ष करने को प्रेरित करती है। परन्तु बहुत बार ऐसा भी होता है कि जो हम चाहते हैं जिसके लिए हम दिन-रात परिश्रम करते हैं उस उद्देश्य की प्राप्ति हम नहीं कर पाते हैं। उदाहरण के लिए एक बालक मेडिकल कॉलेज में प्रवेश पाने के लिए तरह-तरह की परीक्षाएं देता है। परन्तु अथक परिश्रम के बाद भी उसे सफलता नहीं मिलती। इस हालत में वह अपने लक्ष्य को ही परिवर्त्तित कर देता है तथा बी0 एससी0 में प्रवेश लेकर आगे एम0 एससी0 तथा प्राध्यापक बनने की बात को पूरा करने के लिए जुट जाता है। एक क्षेत्र में असफलता के बाद दूसरे किसी क्षेत्र का चुनाव करना, अपने लक्ष्य की ऊँचाई को अपनी योग्यता एवं परिस्थितियों के अनुसार घटा देना, इस प्रकार के संशाधित एवं परिवर्त्तित व्यवहार को ही समायोजन की संज्ञा दी जाती है। नीचे के चित्र द्वारा आप इसे भली भाँति समझ सकते हैं-

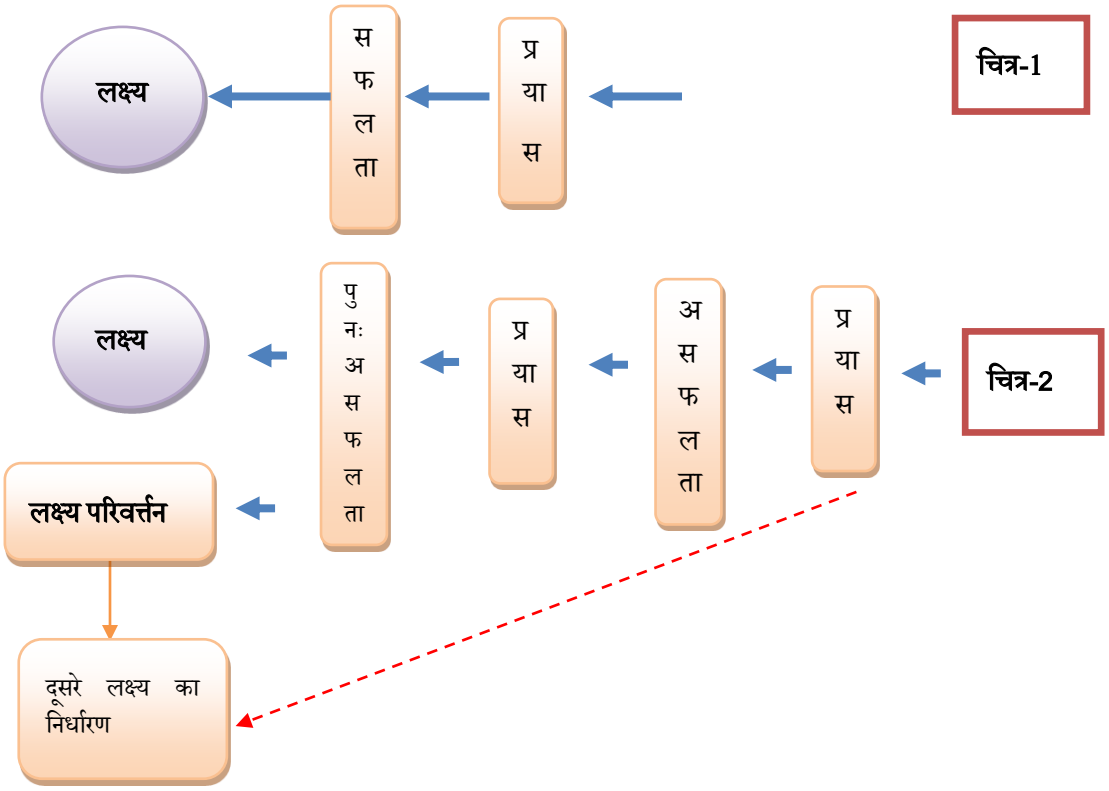

चित्र- 2 में यह दर्शाया गया है कि व्यक्ति द्वारा बार-बार प्रयास किए जाने पर भी जब वह पूर्व निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाता है तब वह लक्ष्य को परिवर्त्तित कर तथा दूसरे लक्ष्य का निर्धारण कर जीवन क्षेत्र में आगे बढ़ने का प्रयास प्रारम्भ कर देता है। इसप्रकार परिस्थिति के अनुसार अपने व्यवहार को निर्देशित करने की कला को समायोजन कहते हैं।

समायोजन के अर्थ को और स्पष्ट रूप से समझने के लिए हम विभिन्न मनोवैज्ञानिकों द्वारा दी गई निम्न परिभाषाओं का अध्ययन कर सकते हैं-

एल. एस. शेफर- "समायोजन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा कोई जीवधारी अपनी आवश्यकताओं तथा इन आवश्यकताओं की संतुष्टि से संबंधित परिस्थितियों में संतुलन बनाए रखता है।''

गेट्स, जेरसील्ड एवं अन्य-"समायोजन एक ऐसी सतत् प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक व्यक्ति अपने व्यवहार में इस प्रकार से परिवर्त्तन करता है कि उसे स्वयं तथा अपने वातावरण के बीच और अधिक मधुर संबंध स्थापित करने में मदद मिल सके।''

वोनहेलर-" हम समायोजन शब्द का अपने आपको मनोवैज्ञानिक रूप से जीवित रखने के लिए वैसे ही प्रयोग में ला सकते हैं जैसे कि जीवशास्त्री अनुकूलन शब्द का प्रयोग किसी जीव को शारीरिक या भौतिक दृष्टि से जीवित रखने के लिए करते हैं।''

उपर्युक्त परिभाषाएँ समायोजन के अर्थ को स्पष्ट कर हमे बताती है कि-

i. समायोजन आवश्यकता एवं संतुष्टि के मध्य संतुलन बनाए रखने की प्रक्रिया है।
ii. समायोजन परिस्थिति के अनुसार अपने व्यवहार को निर्देशित करने की प्रक्रिया है।
iii. व्यक्ति में जितनी अधिक समायोजन क्षमता होती है वह मनोवैज्ञानिक रूप से उतना स्वस्थ एवं सबल पाया जाता है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि जीवन में संतुष्ट एवं सुखी रहने की कुंजी समायोजन की प्रक्रिया के हाथों में है और समायोजन की यह प्रक्रिया बालक और उसकी परिस्थितियों के बीच झूलती रहती है। कभी बालक की योग्यता, क्षमताएँ तथा उसे मिलने वाला परामर्श परिस्थितियों पर हावी हो जाता है तो कभी परस्थितियों के आगे घुटने भी टेकने पड़ते हैं। समायोजन ऐसी ही प्रक्रिया और क्षमता का भाव है जो बालक को उसकी अपनी योग्यता और क्षमताओं के संदर्भ में उसकी अपनी परिस्थितियों के अनुसार उसे आगे प्रगति के मार्ग पर ले जाने में सहायता करती है। बालक के जीवन में यह प्रक्रिया कभी रूकने का नाम नहीं लेती है क्योंकि जीवन कभी रूकता नहीं है और परिवर्त्तनों के साथ-साथ ही समायोजन की प्रक्रिया को भी बदलते रहना पड़ता है। इसी बदलाव और अनुकूलन क्षमता में बालक का सर्वांगीण विकास उसकी प्रगति, संतुष्टि तथा खुशी का दारोमदार होता है।

9.5.2 समायोजन की आवश्यकता

व्यक्ति को जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में समायोजन की आवश्यकता होती है। मुख्य रूप से निम्नलिखित क्षेत्रों में समायोजन आवश्यक है-

1. व्यक्तिगत आवश्यकता ओं की संतुष्टि- मनुष्य के व्यक्तिगत आवश्यक्ताओं में शारीरिक आवश्यकताएं (भूख, प्यास, नींद, विश्राम आदि), भौतिक आवश्यकताएं (सुख, सुविधा पहुंचाने वाले वस्तु), सामाजिक व मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएं (स्नेह व प्यार पाने और देने, आदर व सम्मान प्राप्त करने आदि संबंधी) आती हैं। इन सभी प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्त्ति के मध्य संतुलन बनाकर रखे। इसके लिए उसे समायोजित होना आवश्यक है।
2. आकर्षक व्यक्तित्व के विकास हेतु- एक सुसमायोजित व्यक्ति ही आकर्षक व प्रभावशाली व्यक्तित्व का स्वामी होता है। आकर्षक व्यक्तित्व के विकास हेतु व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक व सांवेगिक विकास होना आवश्यक है। यहां उल्लेखनीय है कि सुसमायोजित व्यक्ति ही उचित समय पर उचित रूप से उचित संवेगों की अभिव्यक्ति करण है। इसी प्रकार व्यक्ति में जितनी अधिक समायोजन क्षमता होती है व मनोवैज्ञानिक रूप से उतना ही स्वस्थ एवं सबल होता है।

3. शैक्षिक विकास हेतु-छात्रों के शैक्षिक विकास हेतु उनका विद्यालय, शिक्षकों, सहपाठियों व पाठ्यक्रम के साथ उचित समायोजन बनाना आवश्यक है। जो छात्र ऐसा कर लेते हैं वे शैक्षिक प्रगति की राह में आगे बढ़ते चले जाते हैं।
4. समाजिक जीवन को समृद्ध बनाने हेतु-सामाजिक जीवन को समृद्ध बनाने हेतु व्यक्ति का दूसरे व्यक्तियों के साथ संबंध अच्छे व मधुर होने चाहिए। फिर चाहे परिवार के विभिन्न सदस्यों के साथ संबंध की बात हो या मित्र और संबंधियों के साथ संबंध की बात हो या पड़ोसियों तथा समुदाय के अन्य सदस्यों के साथ संबंध की बात हो, प्रत्येक संबंधों में व्यक्ति को मधुरता लानी चाहिए। सुखी व मधुर संबंध हेतु समायोजन आवश्यक है। दूसरे शब्दों में सुखी पारिवारिक व सामाजिक जीवन का मूलमंत्र समायोजन है। क्योंकि कभी-कभी कुछ लोग हमारी तरह के नहीं होते हैं। हमसे विपरित होते हैं। परन्तु हमें अपने अपने दैनिक जीवन में उनसे भी मेल मिलाप करना होता है। कहीं-न-कहीं उनसे मदद की आवश्यकता पड़ सकती है। अतः ऐसे व्यक्तियों के साथ भी हमें अच्छे संबंध बनाए रखने की आवश्यकता होती हे। यह कार्य हम तभी कर पाते हैं जब हमें समायोजन की कला आती हो।इस प्रकार व्यक्ति भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न अवसरों पर समायोजन कर सुखी पारिवारिक व सामाजिक जीवन बिता सकता है।
5. व्यावसायिक जीवन को समृद्ध बनाने हेतु-व्यक्ति अपने प्रयत्नों तथा मिलने वाले अवसरों के फलस्वरूप तरह-तरह के व्यवसाय अपनाते हैं। एक व्यक्ति अपने काम में बहुत अच्छा हो सकता है। लेकिन यदि वह अपने कार्य क्षेत्र के सामाजिक आबोहवा के साथ समायोजित नहीं है तो वह कभी अच्छी उपलब्धि प्राप्त नहीं रह सकता है। अतः व्यावसायिक प्रगति हेतु आवश्यक है कि व्यक्ति का कार्य करने की परिस्थितियों, समय, वेतन आदि से संतुष्टि तथा सहकर्मियों के साथ मधुर संबंध हो। इसके लिए व्यक्ति को अपने व्यावसायिक परिस्थितियों के साथ समायोजित होना आवश्यक है।

9.5.3 समायोजन के लिए परामर्श की भूमिका

एक व्यक्ति उस समय तक या उतनी ही सीमा तक पूरी तरह समायोजित रहता है जब तक कि उसकी मूलभूत आवश्यकताओं की उसकी अपनी दृष्टि से पूर्त्ति होती रहे अथवा उसे उनके पूरे होने की आशा बनी रहे। जैसे ही उसे यह आभास होने लगता है कि उसकी इन आवश्यकताओं की पूर्त्ति में बाधा आ रही है वह निराश होकर कुसमायोजन का शिकार बन जाता है। एक कुसमायोजित व्यक्ति विभिन्न प्रकार की व्यवहार तथा समायोजन संबंधी समस्याओं से ग्रस्त होकर अपने तथा दूसरों के विकास या प्रगति में बाधा बनने लगता है।

जीवन संघर्ष और समस्याओं का दूसरा नाम है। लेकिन कभी-कभी व्यक्ति इसे समझ नहीं पाते हैं और घबरा जाते हैं। अतः आवश्यकता होती है कि व्यक्ति में परिस्थितियों का सामना करने के लिए आवश्यक सहायक समझ विकसित की जानी चाहिए ताकि वे समस्याओं का सामना कर उनका उचित

समाधान ढूंढते हुए वे ठीक प्रकार से समायोजित रह सकें। कोशिश यही होनी चाहिए कि व्यक्ति अपनी समस्याओं से अपने आप ही निपटे। व्यक्ति में ऐसी कार्यकुशलता विकसित करने के लिए परामर्श आवश्यक होता है। अतः व्यक्ति में समायोजन की क्षमता के विकास हेतु आवश्यक सहयता प्रदान करने के लिए शैक्षिक, व्यक्तिगत तथा व्यावसायिक परामर्श की व्यवस्था की जानी चाहिए।

व्यक्तिगत जीवन में समायोजन हेतु परामर्श की भूमिका

1. शारीरिक कमी, अस्वस्थता या दुर्बलता के कारण हीनता व निराशा से ग्रस्त होकर कुसमायोजन की ओर बढ़ते जा रहे व्यक्ति में उपबोधक सकारात्मक ऊर्जा का संचार करके उसे समायोजित बनाने में सहायता प्रदान करता है।
2. चिंता, क्लेश, निराशा, कुण्ठा जैसे नकारात्मक सोचों से ग्रस्त व्यक्तियों में सकारात्मक सोचों का विकास करता है।
3. व्यक्ति के वैवाहिक संबंधों, अन्य पारिवारिक संबंधों व सामाजिक संबंधों को सुदृढ़ व मधुर बनाने में उपबोधक सहायता प्रदान करता है।
4. संवेगात्मक रूप से समायोजित बनाने में उपबोधक व्यक्ति की सहायता करता है।
5. व्यक्ति को उसकी अच्छाइयों तथा कमयों के बारे में जानकारी देकर उसके योग्यता के स्तर से परिचित करवाता है।

शैक्षिक जीवन में समायोजन हेतु परामर्श की भूमिका

1. उपबोधक छात्रों को उनकी योग्यताओं, अभिक्षमताओं, अभिरूचिों, कमियों के बारे में अधिक जानकारी प्रदान करके उन्हें स्वयं को समझने में सहायता प्रदान करता है।
2. छात्रों को उनकी आवश्यकताओं व योग्यताओं के अनुसार सर्वाधिक उपयुक्त पाठ्यक्रमों का चयन करने में सहायता प्रदान करता है।
3. छात्रों में वांछनीय अभिवृत्तियों व व्यवहार-विन्यासों को विकसित करने में सहायता प्रदान करता है।
4. अन्य लोगों से बेहतर संबंध बनाने में व उस परिवेश जिसमें वे रहते हैं, को समझने में सहायता करता है।
5. प्रतिभाशाली, मंदबुद्धि तथा विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थियों की पहचान करने व उनमें उचित समायोजन की क्षमता का विकास करने में सहायता करता है।

व्यावसायिक जीवन में समायोजन हेतु परामर्श की भूमिका

1. उपबोधक व्यक्ति को उनके योग्यता रूचि, क्षमता के अनुसार उपयुक्त रोजगार के चयन में सहायता करता है।
2. व्यावसायिक साथियों, अधिकारियों के साथ सुदृढ़ व मधुर संबंधों के निर्माण में व्यक्ति की सहायता करता है।

3. व्यक्ति को उसकी शक्तियों व कमजोरियों का ज्ञान प्रदान करने में सहायता प्रदान करता है।
4. व्यक्ति को दिन-ब-दिन बदलती परिस्थितियों व नवीन परिवर्त्तनों से परिचित करवाने व उसके अनुसार स्वयं को परिवर्त्तित करने में सहायता प्रदान करता है।

सरांश के रूप में हम कह सकते हैं कि परामर्श व्यक्ति में उत्तम समायोजन की क्षमता को विकसित करने हेतु सहायता प्रदान करने की प्रक्रिया है। उपबोधक व्यक्ति को व्यक्तिगत कमियों का उपचार करने, जीवन की यर्थाथता को पहचानने व उनके अनुकुल व्यवहार को निर्देशित करने हेतु सहायता प्रदान करता है।

अभ्यास प्रश्न

19. परिस्थिति के अनुसार अपने व्यवहार को परिवर्त्तित एवं संशोधित कर लेने की प्रक्रिया को .....कहते हैं।
20. आवश्यकताओं के पूर्ण ना होने पर व्यक्ति निराश होकर ..... का शिकार हो जाता है।
21. व्यक्ति को जीवन में समायोजन करना क्यों आवश्यक है?
22. व्यक्ति को व्यावसायिक रूप से समायोजित बनाने में उपबोधक कैसे सहायता प्रदान करता है।
23. शैक्षिक क्षेत्र में समायोजन स्थापित करने में उपबोधक छात्रों को किस प्रकार सहायता प्रदान करता है?

9.6 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप यह जान चुकें हैं कि समूह परामर्श व व्यक्तिगत परामर्श की दो महत्त्वपूर्ण विधियाँ हैं। परामर्श को सदैव से 'उपबोध्य केन्द्रित' प्रक्रिया माना जाता रहा है। व्यक्तिगत परामर्श इसी अवधारणा पर आधारित है। इसमें उपबोध्य उपबोधक के सामने बैठकर अधिक सक्रिय होकर अपने व्यक्तिगत जीवन से संबंधित निजी समस्याओं के समाधान हेतु सहायता प्राप्त करता है। समूह परामर्श एक नवीन अवधारणा है, जिसमें व्यक्तियों का समूह उपबोधक के साथ मिलकर अंतर्वैयक्तिक समस्याओं को दूर करने की कला सीखते हैं। व्यक्तिगत परामर्श व समूह परामर्श के अपने-अपने लाभ व सीमाएँ हैं। दोनों में कुछ समानताएँ व कुछ विभिन्नताएँ हैं। वास्तव में कुछ परिस्थितियों में समूह परामर्श अधिक प्रभावशाली होता है, वहीं कुछ परिस्थितियों में व्यक्तिगत परामर्श अधिक उपयोगी माना जाता है। उपबोध्य के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए उपबोधक का अच्छा व प्रभावशाली होना आवश्यक है। परामर्श की प्रभाविता, बड़ी सीमा तक उपबोधक के व्यक्तित्व और अन्य विशेषताओं तथा उपबोध्य के तत्परता व सहयोगपूर्ण व्यवहार संबंधी विशेषताओं पर आधारित रहती है। व्यक्ति द्वारा परिस्थितियों के अनुसार अपने व्यवहार को परिवर्त्तित व संशोधित

करने की प्रक्रिया को समायोजन कहते हैं। व्यक्ति के सर्वांगीण विकास हेतु समायोजन एक अनिवार्य प्रक्रिया है। परामर्श व्यक्ति को जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में बेहतर ढंग से समायोजन करने में सहायता प्रदान करती है। इस इकाई के अध्ययन से आप परिस्थितिनुसार समूह परामर्श व व्यक्तिगत परामर्श के प्रयोग के महत्त्व को अभिव्यक्त कर सकेंगे। आप प्रभावशाली परामर्श हेतु उपबोधक व उपबोध्य की भूमिका को व्यक्त कर सकेंगे तथा आप समायोजन की आवश्यकता को समझते हुए इस दिशा में परामर्श की भूमिका का बखान कर सकेंगे।

9.7 शब्दावली

8 **समूह परामर्श :** परामर्श की वह विधि जिसमें व्यक्तियों का एक छोटा समूह उपबोधक के साथ मिलकर समस्या का समाधान करना सीखता है, समूह परामर्श कहते हैं।

9 **समूह गतिकी:** समूह के सदस्यों के द्वारा परस्पर एक दूसरे से अन्तःक्रिया के फलस्वरूप उनके व्यवहार में होने वाले परिवर्त्तन को समूह गतिकी कहते हैं।

10 **व्यक्तिगत उबोधन:** परामर्श की वह विधि जिसमें उपबोधक केवल एक उपबोध्य को परामर्श प्रदान करता है, व्यक्तिगत परामर्श कहते हैं।

11 **परामर्श कौशल:** परामर्श की प्रक्रिया को प्रभावषाली व सक्रिय बनाने के लिए उपबोधक द्वारा परामर्श प्रदान करने के क्रम में प्रयोग किए जाने वाले क्रियाओं, प्रक्रियाओं एवं व्यवहारों के समूह को परामर्श कौशल कहते हैं।

12 **संज्ञानात्मक कौशल**: परामर्श की प्रक्रिया को प्रभावषाली बनाने के लिए उपबोधक द्वारा प्रयोग किए जाने वाले मस्तिष्क की क्रियाओं से संबंधित कौशल को संज्ञानात्मक कौशल कहते हैं।

13 **भावात्मक कौशल:** परामर्श की प्रक्रिया को प्रभावषाली बनाने के लिए उपबोधक द्वारा प्रयोग किए जाने वाले उसके भावनाओं से संबंधित क्रियाओं एवं व्यवहारों के समूह को भावात्मक कौशल कहते हैं।

14 **क्रियात्मक कौशल**: परामर्श की प्रक्रिया को प्रभावषाली बनाने के लिए उपबोधक द्वारा प्रयोग किए जाने वाले कार्यों एवं कलाओं को क्रियात्मक कौशल कहते हैं।

15 **परावर्त्तित चिन्तन:** पूर्व अनुभवों का पुनर्गठन करके किसी समस्या के समाधान करने हेतु नवीन विधि की खोज के लिए किए गए चिंतन को परावर्त्तित चिंतन कहते हैं।

16 **सारांशीकरण:** मुख्य मुद्दों को संक्षेप में लाने की प्रक्रिया को सारांषीकरण कहते हैं।

17 **तदनुभूति:** किसी व्यक्ति के सांवेगिक भावों को दूसरे व्यक्ति द्वारा दिल से महसुस करने लगने की प्रक्रिया को तदनुभूति कहते हैं।

18 **समस्या समाधान:** लक्ष्य की प्राप्ति में बाधक प्रतीत होनेवाली कठिनाईयों पर विजय प्राप्त करने की प्रक्रिया को समस्या समाधान कहते हैं।

19 **समायोजन**: व्यक्ति द्वारा अपनी योग्यता एवं परिस्थितियों के अनुसार अपने व्यवहार को संषोधित परिवर्त्तित करने की प्रक्रिया को समायोजन कहते हैं।

9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. समूह परामर्श वह प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत व्यक्तियों का एक छोटा समूह उपबोधक के साथ मिलकर वैयक्तिक और अंतर्वैयक्तिक समस्याओं को दूर करने की कला सीखते हैं।
2. समूह परामर्श प्रक्रिया के चरण हैं-
   i. समय व स्थान का निर्धारण
   ii. सदस्यों को आपस में परिचित कराना
   iii. उदेश्यों एवं लक्ष्यों का स्पष्टीकरण
   iv. उपबोधक द्वारा वार्त्तालाप के शीर्षक की प्रस्तावना
   v. सदस्यों द्वारा अपने-अपने विचारों को रखना।
   vi. विचार-विमर्श करना
   vii. निष्कर्ष
   viii. अगले सभा के संबंध में निर्णय लेना
3. समूह परामर्श के दो लाभ-
   i. यह मिव्ययी है
   ii. इससे व्यक्तियों को अपनी अभवृत्तियों, आदतों तथा निर्णयन को समानीकृत करने में सहायता मिलती है।
4. व्यक्तिगत परामर्श के उद्देश्य हैं-
   i. व्यक्ति में आत्म समझ का विकास करना।
   ii. व्यक्ति में समायोजन की योग्यता का विकास करना।
   iii. व्यक्तिगत जीवन से संबंधित समस्याओं के संदर्भ में निर्णय लेने की क्षमता का विकास करना।
   iv. व्यक्ति को अपने अंतःद्वन्दों व नकारात्मक भावनाओं पर विजय प्राप्त करने हेतु तैयार करना।
   v. व्यक्ति में सकारात्मक मनोवृत्ति का विकास करना।
   vi. व्यक्ति में सामाजिक, सांवेगिक व आध्यात्मिक लब्धि का विकास करना।
5. व्यक्तिगत परामर्श व समूह परामर्श के मध्य दो अंतर-
   i. व्यक्तिगत परामर्श में उपबोधक केवल एक उपबोधक के साथ आमने-सामने बैठकर परामर्श देता है। लेकिन समूह परामर्श में उपबोध्य उपबोध्यों के छोटे समूह (6-10 उपबोध्यों) को एक साथ परामर्श प्रदान करता है।

ii. व्यक्तिगत परामर्श में उपबोध्य केवल सहायता की प्राप्ति करता है जबकि समूह परामर्श में उपबोध्य दूसरों को सहायता भी प्रदान करता है।

6. समूह परामर्श में निम्न दो नैतिक मूल्यों का ध्यान रखा जाना चाहिए-
   i. समूह के सदस्यों में नैतिक जिम्मेवारियां होनी चाहिए जैसे सदस्यों के प्रति ईमानदारी, बोपनीयता को बनाए रखना, समय बद्धता आदि।
   ii. समूह का कोई सदस्य बिना पूर्व सूचना दिए समूह को नहीं छोड़ सकता है।
7. समूह परामर्श की सीमाएँ हैं-
   i. समूह परामर्श में व्यक्तिगत और निजी समस्याओं को उजागर नहीं किया जा सकता है।
   ii. समूह परामर्श के दौरान स्थिति को नियंत्रित करना उपबोधक के लिए कठिन कार्य है।
   iii. इसमें सदस्यों के अवधान को प्राप्त करने हेतु सृजनात्मक तकनीकों का उपयोग नहीं किया जाता है।
8. गलत
9. गलत
10. सही
11. गलत
12. सही
13. गलत
14. अच्छे उपबोधक की पाँच व्यक्तित्व संबंधी विशेषताऐं
   i. संवेदनशीलता
   ii. अवबोध
   iii. धैर्य
   iv. रूचि व तत्परता
   v. सुसमायोजित व्यक्तित्व
15. अच्छे परामर्श के पाँच कौशल
   i. सौहार्दपूर्ण वातावरण के निर्माण का कौशल
   ii. तदनुभूति
   iii. अभिव्यक्ति कौशल
   iv. श्रवण कौशल
   v. वस्तुनिष्ठ निरीक्षण का कौशल
16. इससे तात्पर्य ऐसे वातावरण से है जो परामर्श प्रक्रिया के प्रारंम्भिक चरण के दौरान उपबोधक द्वारा बनाया जाता है जिसके माध्यम से उपबोध्य सहज समहुस करता है और उपबोधक से मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित होता है।

17. तदनुभूति से तात्पर्य होता है किसी की अनुभूति प्राप्त करना। डायमंड (1949) तदनुभूति को व्यक्त करते हैं कि दूसरे की सोच, भावना, कार्यण को अपनी कल्पना में उतारना और इसी प्रकार के संसार की संरचना करना जैसा कि वह करता है।
18. रूथ-स्टेंग के विचार के अनुसार उपबोध्य की अवधारणा, कार्य हेतु उसकी तत्परता, उसका अन्तर्द्वन्द, दबी इच्छाएँ, अनश्चित अपराध भावना, उसके आचरण के अन्तःस्रोत इत्यादि बातों की समझ सफल परामर्श के आधार है।
19. समायोजन
20. कुसमायोजन
21. व्यक्ति को जीवन में समायोजन करना आवश्यक है –
    i. व्यक्तिगत आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए
    ii. आकर्षक व्यक्तित्व के विकास के लिए
    iii. शैक्षिक विकास के लिए
    iv. समाजिक जीवन को समृद्ध बनाने के लिए
    v. व्यावसायिक जीवन को समृद्ध बनाने के लिए
22. व्यक्ति को व्यावसायिक रूप से समायोजित बनाने में उपबोधक निम्न प्रकार से सहायता प्रदान करता है-
    i. उपबोधक व्यक्ति को उनके योग्यता, रूचि, क्षमता के अनुसार उपयुक्त रोजगार के चयन में सहायता करता है।
    ii. व्यावसायिक साथियों, अधिकारियों के साथ सृदृढ़ व मधुर संबंधों के निर्माण में व्यक्ति की सहायता करता है।
    iii. व्यक्ति को उसकी शक्तियों व कमजोरियों का ज्ञान प्रदान करने में सहायता प्रदान करता है।
23. शैक्षिक क्षेत्र में समायोजन स्थापित करने में उपबोधक छात्रों को निम्न प्रकार से सहायता प्रदान करता है-
    i. उपबोधक छात्रों को उनकी योग्यताओं, अभिक्षमताओं, अभिरूचियों, कमियों के बारे में अधिक जानकारी प्रदान करके उन्हें स्वयं को समझने में यहायता प्रदान करता हैं
    ii. छात्रों को उनकी आवश्यकताओं व योग्यताओं के अनुसार सर्वाधिक उपयुक्त पाठ्क्रमों का चयन करने में सहायता प्रदान करता है।
    iii. प्रतिभाशाली, मंदबुद्धि तथा विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थियों की पहचान करने व उनमें उचित समायोजन की क्षमता का विकास करने में सहायता करता है।

9.9 संदर्भ ग्रन्थ

1. शर्मा, आर0ए0 तथा षिखा चतुर्वेदी (2010) "शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देषन तथा परामर्श", आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ।
2. मिश्रा, मंजू (2007) "शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देषन'', ओमेगा पब्लिकेशन्स, न्यू देलही।
3. अग्रवाल, जे0सी0 (1989) "एजूकेषन वुकेशनल गाइडैन्स एण्ड कॉन्सिलिंग", देलही दुआवा हाउस।
4. जायसवाल, सीताराम (1887) "शिक्षा में निर्देशन और परामर्श", विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
5. नायक, ए0के0 एण्ड भी0 के राव (2004) "गाइडेन्स एण्ड कैरियर कॉन्सिलिंग", ए0पी0 एच पब्लिषिंग कॉरपरेषन, न्यू देलही।
6. मंगल, एस0 के (2011) "शिक्षा मनोविज्ञान" पी एच एल लरनिंग प्राइवेट लिमिटेड, न्यू देलही।
7. बंगाली, एम. (1984) "गाइडेन्स एण्ड कॉन्सिलिंग", सेठ पब्लिशर्स, बॉम्बे।
8. क्रो एण्ड क्रो "इंट्रोडक्सन टु गाइडेन्स'', सेकेण्ड, एडीषन, युरेषिया पब्लिषिंग को., न्यू देलही।
9. जयसवाल, मोनिका (1968) "गाइडेन्स एण्ड कॉन्सिलिंग", प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ।
10. राव. एस. एन. (1992) "कॉन्सिलिंग एण्ड गाइडेन्स", टाटा मेकग्राहिल, न्यू देलही।
11. "इंट्रोडक्सन टु गाइडेन्स एण्ड कॉन्सिलिंग"(2009) बी0एड0 के छात्रों के लिए स्व अध्ययन सामग्री, स्कूल ऑफ एजूकेषन, इंदिरा गांधी नेशनल ओपेन यूनीवर्सिटी, न्यू देलही।
12. "निर्देशनः विधियाँ एवं तकनीक"(2010) एम0एड0 के छात्रों के लिए स्वअध्ययन सामग्री, स्कूल ऑफ एजूकेषन, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, न्यू दिल्ली।
13. गुप्ता, एस0पी0 एवं अल्का गुप्ता (2012) "उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान", शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद

9.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. समूह परामर्श एवं व्यक्तिगत उपबोधक का समीक्षात्मक मूल्यांकन कीजिए।
2. समूह परामर्श के अर्थ एवं उद्देष्यों को स्पष्ट करते हुए इसके विभिन्न चरणों एवं अवस्थाओं का विस्तार से वर्णन कीजिए।
3. व्यक्तिगत परामर्श से आप क्या समझते हैं। समूह परामर्श से तुलना करते हुए इसके महत्त्व एवं उद्देश्यों पर दृष्टिपात कीजिए।
4. प्रभावशाली परामर्श की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
5. समायोजन से आप क्या समझते हैं? समायोजन की आवश्यकता एवं समायोजन की क्षमता के विकास में परामर्श की भूमिका का सविस्तार वर्णन कीजिए।